बीसवीं सदी के अन्तिम दशक के उपन्यासों में स्त्री-विमर्श का अध्ययन

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
डी० फिल० (हिन्दी) उपाधि हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध
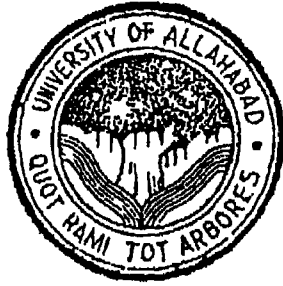
निर्देशन
प्रो० सत्य प्रकाश मिश्र
हिन्दी-विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

प्रस्तुति
मीना शुक्ल
शोध छात्रा

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद
दिसम्बर - 2002

विषयानुक्रमणिका

प्राक्कथन

प्राक्कथन

आज के समय मे स्त्री–विमर्श एक बडे रचनात्मक आन्दोलन के रूप मे साहित्य और सस्कृति की दुनियॉ मे छाया हुआ है। इससे प्रेरित होकर गुरूवर प्रो सत्य प्रकाश मिश्र की प्रेरणा से हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय के निर्देशन मे मैने इस अर्थात बीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक के उपन्यासो मे स्त्री विमर्श का अध्ययन' शीर्षक शोध प्रबन्ध प्रस्तुत करने की विनर्म चेष्टा की है। अन्तिम दशक तक आते–आते हिन्दी में स्त्री–विमर्श एक महत्वपूर्ण विषय के रूप मे प्रतिष्टित होने लगा था। प्रारम्भ मे यह एक आन्दोलन जैसा प्रतीत हुआ पर शीघ्र ही सभी को अनुभव होन लगा कि इस विमर्श की जडे सभ्यता और सस्कृति की गहन पृष्ठभूमि मे आरम्भ से ही विद्यमान थी और साहित्य मे स्त्री का सरोकार कोई छोटा सराकार नही है। इस विषय को स्थापित करने के लिए मैने शोध प्रबन्ध को छ अध्याय मे प्रस्तुत किया है।

प्रथम अध्याय विषय के परिपार्श्व' के अर्न्तगत स्त्री विमर्श क्या है और अपने अधिकारो के प्रति स्वय स्त्रियो का सघर्ष और हिन्दी साहित्य मे स्त्री विषयक चिन्तन तथा महिला लेखिकाओं ने अपने कथा साहित्य मे स्त्री को किस प्रकार चित्रित किया है इसका वर्णन है।

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत बीसवीं शताब्दी के महिला लेखक का विवेचन किया गया है। स्त्री लेखिकाओ द्वारा लिखे गये उपन्यास कहानी कविता और आलोचना एव अन्य गद्यविधाओं की बात की गयी है।

तृतीय अध्याय 'शताब्दी का अन्तिम दशक' और हिन्दी उपन्यास है। अन्तिम दशक के उपन्यासों मे क्या नयी बात सामने उभर कर आयी तथा पुरूषो और स्त्रियो द्वारा लिखे गये उपन्यासो का अलग–अलग विवरण है। साथ ही इस दशक में पुरूषों का स्त्रियो के

प्रति क्या दृष्टिकोण है? उन्होने अपने कथा साहित्य मे स्त्री विषयक कौन सी बात की है? तथा उसके किस रूप को अधिक चित्रित किया है। इसका विशद् वर्णन है।

चतुर्थ अध्याय मे अन्तिम दशक मे लिखे गये उपन्यासो का कथ्य उनकी स्त्री विषयक दृष्टि अर्थात स्त्रियो को लेकर उनका चिन्तन क्या है। अन्तिम दशक के उपन्यासो मे स्त्री से सम्बन्धित कौन–कौन सी समस्याये उठायी गयी है? उपन्यासो की भाषा–शैली (शिल्प) आदि का वर्णन है।

पॉचवा अध्याय पूर्णत स्त्री विमर्श से सम्बन्धित है। स्त्री द्वारा लिखे गये उपन्यासो मे उनकी बौद्धिकता, विद्रोह, जागरूकता अधिकार और कर्तव्य के प्रति उसकी सजगता आदि का उल्लेख किया गया है। साथ ही सामाजिक न्याय की भावना परिवार के प्रति दृष्टिकोण तथा विभिन्न सस्थानो के बारे मे उसकी दृष्टि। इन सभी बातो की चर्चा की गयी है।

छठा अध्याय निष्कर्ष के रूप मे है। क्यो स्त्री आज तक शोषित है तथा उसकी इस दशा के पीछे कौन से कारण उत्तरदायी है और वह कब अपनी इस शोषित छवि से मुक्त हो पायेगी आदि बातो का वर्णन किया गया है।

इस शोध प्रबन्ध की प्रस्तुती मे इलाहाबाद विश्वविद्यालय के आचार्य और अध्यक्ष प्रो0 राजेन्द्र कुमार एव विभाग के अन्य गुरूजनो की प्रेरणा सहायक रही है। विशेषत मेरे निर्देशक गुरूवर आचार्य सत्यप्रकाश मिश्र की अनुकम्पा और निरन्तर उत्साहित करने की प्रवृत्ति ने मेरा मार्ग दर्शन किया। सच तो यह है कि उनके पग–पग पर कृपापूर्ण निर्देशन के विना यह सम्भव ही नही था। 'तम से ज्योति' की इस यात्रा में उनका आशीर्वाद एव कुशल मार्ग–दर्शन मेरा पाथेय रहा है। उनके प्रति आभार एव कृतज्ञता प्रदर्शन मेरे लिए शब्दो के माध्यम से कर पाना सम्भव नही है। उनके श्रीचरणों में मै प्रणाम करती हूँ।

इसक अतिरिक्त हिन्दी विभाग गोरखपुर विश्वविद्यालय गोरखपुर के लब्ध प्रतिष्ठ विद्वान एव कवि प्रो अनन्त मिश्र का आभार प्रकट कर उनके स्नेह के महत्व का कम नही करना चाहती हूँ क्याकि उनकी विद्वत्ता से ही मेरी दृष्टि को ज्योति मिली है। अत उनके स्नेहासिक्त अपनत्व को सादर नमन करती हूँ। डा0 अनुपम मिश्र (टिल्लू भइया) की मैं हृदय से आभारी हूँ, जिनका स्नेहिल और उत्साह वर्धक सम्वल न मिलता तो सम्भवत लेखकीय शिथिलता स्वाभाविक थी। परम श्रद्धेय गुरूवर एव प्रगतिशील आलोचक प्रो रामदेव शुक्ल के प्रति कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ जिन्होने अपने समीक्षात्मक तेवर से मेरी दृष्टि को परिष्कृति करने का पुनीत कार्य किया। गुरूवर प्रो0 विश्वनाथ तिवारी ने समय समय पर अपने ज्ञान से मुझे लाभान्वित किया है उनके (एडवोकेट इलाहाबाद हाईकोर्ट) प्रति आभार प्रकट न करना भूल होगी।

इस कृतज्ञता ज्ञापन की श्रृखला मे श्री विपिन त्रिपाठी और श्री सारनाथ शुक्ल (चाचा जी) के सहयोग को विस्मृत करना कर्तव्य बोध से पलायन होगा। इन्होने सदैव स्वामी विवेकानन्द के जीवन दर्शन अवेकेन ए राइज एण्ड वेट नाट टिल द गोल दे रीच का स्मरण दिलाते हुए प्रोत्साहित किया है। स्वदेश श्रीवास्वत (अक्षरा उत्कृष्ट साहित्य प्रतिष्ठान) की आभारी हूँ, जिन्होने समय–समय पर विषय से सम्बन्धित सामाग्री की खोजबीन मे सहायता प्रदान की। सहपाठी आरती सिह ने भी सकारात्मक भूमिका निभाई है।

पूज्य पिताजी श्री प्रतापनारायण शुक्ल एव माँ श्रीमती पुष्पा शुक्ल के आशीर्वचनो एव प्रेरणा के प्रति आभारी हूँ जो मेरे समस्त प्रयासो से कही न कही जुड़े ही रहे है अत उनके श्री चरणो मे प्रणाम अर्पित करते हुए सन्तोष का अनुभव कर रही हूँ। रेनु शुक्ल एव रजना शक्ल धन्यवाद की पात्र है जिन्होने सदैव मेरा उत्साहवर्धन करते हुए लक्ष्योन्मुख एव जागरूक बनाये रखा।

अध्याय–1

(1) विषय का परिपार्श्व

यह ससार का अत्यन्त वैज्ञानिक अत्यन्त समाजवादी और अत्यन्त न्याय सगत समाज बन भी जाय तो भी एक बुनियादी किस्म का जातिवाद बना रहेगा। क्योकि इस समग्र सृष्टि मे स्त्री और पुरूष दोनो दो जातियो के रूप मे हमेशा विद्यमान रहेगे। यह सही है कि ये एक–दूसरे के पूरक हैं और इसलिए सृष्टि के पुरस्कर्ता भी फिर भी दोनो के पृथक अस्तित्व को नकारा नही जा सकता। जैसे–जैसे समाज बदला है जीवन का परिप्रेक्ष्य अपना केन्द्र परिवर्तित करता रह है। परिवाद और राष्द्र की जगह धन कमाने की अभिलाषा मनुष्य की चेतना के केन्द्र मे आयी है और अर्थवाद ने जहॉ स्वायत्ता और स्वाधीनता की सृष्टि की वहीं इसके चलते स्त्रीं और पुरूष के बीच उत्तरोतर द्वन्द की स्थिति भी पैदा होने लगी। एक जमाने मे जब शक्ति ही प्रधान थी और लोगो की कबीलाई जिदगी थी तब देह की सरचना के आधार पर पुरूष प्रधान समाज विकसित होने लगा। जब तक परिवार ग्रामीण तथा आदिम परिवेश मे थे तब तक स्त्री पुरूष के बीच का तनाव उतना मुखर न हो सका था।

धीरे–धीरे प्रकृति से दोहन करने मे अधिक समर्थ होने के नाते पुरूष परिवार के केन्द्रवर्ती और शक्ति सम्पन्न ईकाई के रूप मे प्रतिष्ठित हाने लगे और स्त्रियो का दर्जा दोयम होता गया। शिशु को गर्भ मे धारण करने और दूसरी नैसर्गिक शारीरिक अवस्थाओ के कारण धीरे–धीरे स्त्री जाति पर पुरूषो का आधिपत्य बढने लगा और इस प्रकार कालान्तर मे स्त्रियॉ पुरूषो की उपनिवेश होती गयी। स्त्री–पुरूष के बीच जब तक मधुर सम्बन्ध बने रहते थे तब तक तो पुरूष जाति उसका शोषण नही करता था पर विपरीत परिस्थितियो मे स्त्रियो का शोषण भी

होने लगा। इस प्रकार की अवधारणा भी धर्म और सस्कृति के क्षेत्रो मे अपनी जड जमाने लगी कि स्त्री भी एक तरह की उपभोग्य सामग्री है वह रत्न और दूसरे अलकरणो के समान सग्रहणीय व्याज्य अथवा आक्रमणीय है। दुनिया भर के इतिहास मे आदिम युग को छोडकर मध्यकालीन सामती व्यवस्थाओ मे स्त्रियो का जीवन पुरूषो के रहमोकरम पर स्थापित होने लगा और पितृसत्तात्मक समाज का ढॉचा लगभग हर समाज मे बनने लगा। इस व्यवस्था के चलते उच्चवर्ग और मध्यवर्ग मे स्त्री घरो मे कैद हो गयी और निम्नवर्ग मे वह या तो शक्तिशाली पुरूषो की सेवा करने की यन्त्र बन गयी अथवा विभिन्न पुरूषो के द्वार पर अपने मातृत्व की दुहाई देने वाली शरण मॉगती एक जीती–जागती लाश। इतिहास का यह एक कूर मजाक ही है कि अपने उदर से शक्तिशाली योद्धाओ विद्वानो कलाकारो और अन्य अनेक प्रकार के महान लोगो को जन्म देने वाली स्त्री उन्ही लोगो द्वारा बनाई गयी व्यवस्था मे हाशिये पर आती गयी।

एक समय ऐसा भी आया जब अभिजात्य वर्ग मे स्त्रियॉ महलो के अन्दर कैद हो गयी और वे प्राय असूर्यम्पश्या हो गयी । अर्थव्यवस्था के पीछे पुरूष की प्रधान भूमिका और स्त्री देह की स्वाभाविक कोमलता जन्य असमर्थता ने कालान्तर मे स्त्रियो को उपभोग की सामग्री और दास बनने के लिए बाध्य कर दिया। ये परिस्थिति कमोवेश पश्चिम और पूरब दोनो ही समाजो मे पाई जाने लगी। जब तक आदिवासी और कबीलाई जिन्दगी का स्वरूप था तब तक तो स्त्री और पुरूष लगभग समान स्तर पर प्रतिष्ठित थे क्योकि सत्ताओ और सभ्यताओ का दौर नहीं शुरू हुआ था। बाद मे राजशाही और सामती व्यवस्था का जन्म हुआ। स्त्रियॉ दास–दासियो के समान हो गयी। पशु धन के समान स्त्री–धन भी सामतो की प्रभुसत्ता के असबाब रूप मे परिवर्तित होने लगा। भारतीय सन्दर्भ मे मध्यकाल तक आते–आते विजेता सस्कृति का प्रार्दुभाव हुआ।

जिसमे धन की लूट के साथ–साथ स्त्री की लूट की प्रवृत्ति भी बढी। घूस या तोहफे के रूप मे भूमि द्रव्य आदि देने–लेने की प्रवृत्ति मे स्त्रीं को भी लेन–देन की बस्तु माना जाने लगा। प्राचीन युग की कृति महाभारत मे स्त्री को भी जुए मे हार जाने का आख्यान मिलता है। उसके पहले भी रामायण', पुराण' आदि मे इस प्रकार की कथाए प्राप्त होती है जिसमे स्त्रियो का बलात् अपहरण यौन शोषण अथवा उनका विपणन होता रहा। पसिद्ध औपन्यासिक कृति– मेयर ऑफ द कैस्टर ब्रिज मे हार्डी ने उल्लखित किया है कि कैसे उसका नायक अपने पत्नी सूसन' को जुए मे हार कर लौटता है। तात्पर्य यह है कि लम्बे समय तक स्त्री–पुरूष के बीच स्त्री को वस्तु की तरह समझने का कूर सामाजिक परिप्रेक्ष्य विद्यमान रहा।

स्त्री के प्रति जागरूक विमर्श का उदय दुनिया मे आधुनिकता के आने के बाद हुआ । औद्योगिक कान्ति के बाद सामतवादी चेतना का लोप होने लगा और पूँजी प्रथा उद्योग को मनुष्य और उसकी शक्ति की तुलना मे ज्यादा महत्व प्राप्त होने लगा। जाहिर है कि पूँजी स्त्री–पुरूष मे भेद नही कर सकती और यहीं से स्त्री और पुरूष के सामानता का प्रश्न सारी दुनिया मे उठने लगा। स्त्री की मुक्ति की चर्चा होने लगी, उसके शोषण की बात चलने लगी, उसके व्यक्तित्व और उसके मानवीय महत्व का सज्ञान बुद्धजीवीं समाज मे उठाया जाने लगा। इसलिए कुछ चितक स्त्री–विमर्श को आधुनिक चितन का एक आयाम भी मानते है।

बुनियादी तौर पर स्त्री–विमर्श समाज–शास्त्र का विषय है। समाज के वर्गो और उसके हितो का सम्यक विचार तब प्रारम्भ हुआ जब उत्पादन के साधनो और उसके फलो के बॅटवारे का प्रश्न जटिल होते समाज मे दिन व दिन गहराने लगा। पहले प्राकृतिक सपदा के विपणन का कोई व्यापक प्रबन्ध नहीं था, जहाँ जो चीजे होती थी, वहाँ इस्तेमाल होती थी।

~~होती थी~~ और उनका आधिक्य वही व्यर्थ हो जाता था। सभ्यता के विकास के साथ–साथ विभिन्न भौगोलिक सीमाओ मे बधे लोगो के परस्पर मिलन के कारण कमी के क्षेत्रो मे बहुलता के क्षेत्रो की चीजे आने लगी और उसका दाम मिलने लगा इसमे अनेक प्रकार के विचौलिये शामिल होने लगे। इस तरह विपणन और व्यापार की सस्कृति का जन्म हुआ जिसमे मनुष्य भी ससाधन के रूप मे प्रयोग मे आने लगा। इस शोषण की सस्कृति ने अपने से कमजोर व्यक्ति का इस्तेमाल करना सिखाया जिसका परिणाम स्त्रियो के भी शोषण के रूप मे सामने आने लगा। इस परिदृश्य का एक पहलू यह भी है कि पूँजीवादी सस्कृति के पहले सामतवादी व्यवस्था मे भी सत्ताओ मे रहने वाले लोग स्त्री के देह का उपयोग राजनीतिक स्वार्थों के लिए समय–समय पर करते रहे। बडे–बडे राजाओ सामतो द्वारा स्त्रियो को अपनी रानियो के अतिरिक्त रखैल के रूप मे रखने दासियो का यौन–शोषण करने तथा विरोधियो को नष्ट करने के लिए विषकन्याओ का इस्तेमाल करने का प्रचलन प्राय उस व्यवस्था मे आम प्रचलन था। धीरे–धीरे सभ्यता के बढने के साथ–साथ नारी जाति को भी एक वस्तु मानने की प्रथा चल निकली। वह शिक्षा और दूसरे सामाजिक सास्कृतिक उत्तरदायित्वो से अलग–थलग कर दी गयी। वह शोभा की वस्तु बन गयी। अपहरण, बलात्कार और विवश परिस्थितियो मे यौन शोषण की नियति स्त्री के ललाट मे विधाता की लिपि की तरह समाज ने लिखना शुरू कर दिया। दुनिया भर के धार्मिक ग्रन्थो ,साहित्यिक पुस्तको मे किंचित सम्मान के बावजूद स्त्रियो का अस्तित्व पुरूषो के विना लगभग शून्य की तरह चित्रित किया जाने लगा–

'मन विन देह नदी विन वारी ।
वैसे नाथ पुरूष विन नारी ।।

जैसी उक्तियॉ समूचे मध्यकाल की प्रमुख उक्तियॉ बन कर उभरने लगी । दुनिया भर का इतिहास भूगोल अगर छोड भी दे तो केवल भारत की मध्यकालीन मनीषा स्त्री जाति का पग–पग अपमान करती प्रतीत होती है। अन्यथा अधमते अधम अधम पुनि नारी' जैसे कथन साहित्य व्यापी नहीं बनते । नारी को नरक का द्वार कहा गया उसे माया माना गया उसे झूठ का पिटारा बताया गया है।

किन बातो के परिप्रेक्ष्य मे ये बाते कही गयी है उसके तफ्सील मे न जाकर निष्कर्ष रूप मे यह माना जा सकता है कि बहुत दिनो से स्त्री के प्रति इस समाज मे आदर का भाव या तो नही है या कम है। काम पडने पर औरत मॉ है प्रिया है प्राणेश्वरी है सबकुछ है पर काम निकल जाने के बाद स्त्री फुटबाल है जिसे पुरूषो का समाज सदा अपने ठोकरो से नैहर से पीहर और पीहर से नैहर मारता रहा। उसका अस्तित्व या तो पिता के कारण है या पति के कारण या पुत्र के कारण। तात्पर्य यह कि उसका कोई स्वतन्त्र अस्तित्व नही है। इन सब की परिस्थितियो ने स्त्री को स्वय के बारे मे सोचने को मजबूर किया और उनका साथ सेवेदनशील पुरूष समाज ने भी दिया। जिसके कारण सम्पूर्ण ससार मे स्त्री को लेकर उसके अस्तित्व को लेकर ,उसके स्वातन्त्रय को ध्यान मे रखकर विचार विमर्श आरम्भ हो गया। साहित्य मे स्त्री–विमर्श इन्ही सब बातो की देन है।

भारतीय परिवेश मे भी स्त्री की शिक्षा बढने के साथ नारी सगठनो का उदय मानवाधिकार , समाज कल्याण से सम्बन्धित लोगो का ध्यान स्त्रियो की दुर्दशा पर गया और लगातार आज भी यह विषय चुनौती के रूप में समाज के बुद्धजीवियो के सामने है।

विश्व भर मे सरकारी और गैरसरकारी नारी जागरूकता के केन्द्र सगठन और मोर्चे बन रहे हैं। और यह रेखाकित किया जा रहा

है कि पैतृक–पुत्र परिवार की सकीर्ण सीमाओ के परे भी स्त्री का व्यक्तिगत और सामाजिक अस्तित्व है यह बात पूरे जोश के साथ कही जा रही है कि स्त्री भी पुरूष के समान मनसा वाचा कर्मणा स्वतन्त्र हो सकती है ।

स्त्री–विमर्श का मूल स्वर नारी शक्ति के पुनर्प्रतिस्थापन का प्रश्न है। वह मात्र किसी की कुछ है नही बल्कि पुरूष सवेदना और सम्बन्ध आश्रित उसके मुक्त अस्तित्व को पुनर्प्रतिष्ठित करने मे स्त्री–विमर्श एक सास्कृतिक आन्दोलन है जिसका प्रभाव सम्पूर्ण साहित्यिक चितन पर हो रहा है। नारी मुक्ति का प्रश्न आधी–दुनिया की मुक्ति का प्रश्न है यह भी स्त्री–विमर्श का एक हिस्सा है। अभी तक पुरूष प्रधान समाज मे स्त्री को स्वतन्त्र व्यक्तित्व की प्राप्ति नही हुई है। स्त्री–विमर्श इस व्यक्तित्व की खोज करता है और इसके सामने आने वाली समस्याओ की जटिलताओ का पर्दाफाश करता है।

स्त्री–विमर्श ने जिस प्रकार पितृसत्तात्मक मूल्यो, अवधारणाओ को चुनौती दी है उसके विरूद्ध सघर्ष करते हुए उन मुल्यो को खारिज किया है उससे स्त्री की समाज मे बदलती हुई स्थिति उभर कर सामने आई है। स्त्री–विमर्श ने उन पितृक मूल्यो वर्जनाओ मापदडो पर जवर्दस्त सदेह करते हुए उन पर प्रश्न चिन्ह आपत्तियॉ लगाते हुए उसे समस्याग्रस्त बनाया है। इसी ने सदियो से चली आ रही स्वत्वहीनता खामोशी को तोडा है तथा अपनी चुप्पी को गहरे मानवीय अर्थ दिये हैं। स्त्री विमर्श ने ही पितृसत्तात्मक मूल्यो दोहरे नैतिक मापदडो , अन्तर्विरोधो को समझने , पहचानने की अर्न्तदृष्टियॉ प्रदान की हैं।

सीमोन द वोउवार ,केटमिलट , इरीगैरो ,वैटीफरीडन आदि ने स्त्री विमर्श के प्रश्न को उठाकर विश्वचितन मे एक नई बहस को जन्म दिया । पितृक मुल्यो को पहली वार समस्या ग्रस्त ठहराया।

पहली बार स्त्री–विमर्श मे ही इस वास्तविकता का रहस्य खुला कि हमारे मानवमूल्य मानवमूल्य न होकर पितृसत्तात्मक मूल्य ही है क्योकि उनका चरित्र पितृक है जहॉ स्त्री का मूल्यो के नाम पर खुला दमन एव उत्पीडन है इस स्थिति को उलटने का श्रेय फ्रान्स की महान लेखिका सीमोन द वोउवार को जाता है जिन्होने द सेकेन्ड सेक्स लिखकर स्त्री मुक्ति के लिए नये रास्ते खोले । महादेवी वर्मा की श्रखला की कडिया' इसी दिशा मे स्त्री विमर्श है।

आज तक हाशियो पर धकेले गये दलित उत्पीडित स्त्रियॉ अब उपने अधिकारो के प्रति जागरूक हो गयी हैं। हाशियो को तोडती हुई वे अब चुप्पी मौन को गहरे शब्द–अर्थ देने लगी है। स्त्री–विमर्श ने ही वर्चस्व एव प्रभुत्व को चुनौती दी है। यह ऐसे मूल्यो को दमनकारी खतरनाक माना है जो स्त्री को उपनिवेश बनाता है। इसमे पारिवारिक मूल्यो तथा उसके सामतीय सरचना को भी लेकर बहस छिडी है जिसमे स्त्री कैद है।

आजतक का समूचा साहित्य अधूरा है क्योकि उसमे दुनिया की आधी आबादी की मुक्ति से जुडे हुए प्रश्न नही है अत वह साहित्य मानवीय कैसे हो सकता है वह आधी दुनिया का ही साहित्य रहा है उसमे स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की है। नारी–विमर्श ने उन निरकुश मूल्यो को जॉचने परखने का जोखिम उठाया है जो उसे निरतर अनुशासित और अधीन बनाते है। स्त्री के जीवन मे बदलाव के लिए जब विवेकानन्द से प्रश्न किया गया था तो उनका उत्तर भी स्त्री–विमर्श से सम्बन्धित था– तुम औरतो की मुश्किल आसान करने वाले हो कौन? क्या तुम प्रत्येक विधवा और हरेक स्त्री के जीवन को नियमित करने वाले सर्वज्ञ हो? उन्हे अपनी मुश्किलो से खुद ही निपटने दो । यही स्त्री विमर्श का बुनियादी नुक्सा है। जब स्त्री खुद अपनी मुश्किलो से निपटने

लगेगी उसी प्रक्रिया मे वो चेतन होकर अपने भीतर छिपी अपार सभावनाओ को तलाश लेगी। स्त्री की इसी जागरूकता ने पहली बार पितृक प्रतिमानो सोचने की दृष्टि पर जर्वदस्त प्रश्न चिन्ह लगाये उन्हे वुरी तरह से रद्द किया। यही से स्त्री–विमर्श की शुरूआत होती है। इस शताब्दी के अन्तिम दशक मे स्त्री–लेखिकाओ की ऐसी प्रखर जागरूक पीढी भी सामने आयी है। जिसने परम्परित ढग के पितृक समर्थन स्त्री–लेखन के विरूद्ध स्त्री–विमर्श को नये आयाम दिये। अन्तिम दशक की लेखिकाओ की समझ पर्याप्त प्रखर है इसलिए स्त्री–विमर्श लेखन मे अब वे पुरूषो द्वारा खडी की गयी समस्याओ चुनौतियो वर्जनाओ के बारे मे स्वतन्त्र दृष्टि से विचारने लगी है।

नारीबादी चितन को परिणति पर पहुँचाया द सेकेन्ड सेक्स की फ्रान्सीसी लेखिका सीमोन द वोउवार ने। इसमे लेखिका ने जीवशास्त्र मानवशास्त्र समाजशास्त्र दर्शनशास्त्र अर्थशास्त्र साहित्य कला और सस्कृति जैसी ज्ञान–विज्ञान की विभिन्न शाखाओ की जानकारियो के साथ स्त्री सम्बन्धी अनुभवो के योग से स्त्री सम्बन्धी विमर्श को अत्यन्त व्यापक फलक पर पूरी प्रमाणिकता के साथ उपस्थित किया है। अपनी इस कृति मे लेखिका ने अत्यन्त विदग्धताऔर सटीकता से इस सच को स्थापित किया है कि यह दुनिया पुरूषो की है, स्त्री उसमे अन्या की तरह है, वह इस सृष्टि कथा की गौण पात्र है, प्रधान पात्र तो पुरूष है। इतिहास के विभिन्न मोडो पर वह पुरूष द्वारा कभी देवी तो कभी दानवी रूप मे प्रतिष्ठित की जाती रही। मानवी के रूप में, एक मानव व्यक्ति के रूप मे उसे जगह पाना शेष है।

जर्मनी के विश्व प्रसिद्ध दार्शनिक मैक्समूलर ने द हिस्ट्री ऑफ एन्सिएन्ट सस्कृत लिटरेचर नामक ग्रन्थ मे लिखा है कि भारत मे वैदिक काल मे नारी को परिवार और समाज मे अत्यधिक

महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था और जीवन के हर क्षेत्र मे पुरूष के समान ही प्रगति के समान अवसर उपलब्ध थे। स्त्री को पराधीन बनाने बाली मनोबृत्ति का आरम्भ तो मध्य एशिया की कुशाण जाति से होता है।

पाश्चात्य विद्वान जानस्टुअर्ट मिल ने अपनी पुस्तक सब्जैक्शन ऑफ वुमैन ने स्पष्ट किया है कि स्त्रियो को पुरूषो से बढ चढकर बताये जाने के गीत तो सर्वत्र गाये जाते हैं पर यह सब कुछ उन्हे प्रसन्न रखने के लिए ही होता है जब कि व्यवहार मे ठीक इसके विपरीत दृष्टिगोचर होता है।

नारी जागृति एव स्वतन्त्रता के लिए प्रयास सदा से होते रहे है चूकि यह मानवोचित अधिकारो को लेकर अठाया गया प्रश्न था अत विश्व के किसी भी देश मे यह चिन्गारी फूट पडी माध्यम भले ही कोई एक महिला बनी हो किन्तु यह आन्दोलन पूरे विश्व को अपने चपेट मे लेकर ही रहा। जिसका परिणाम यह हुआ कि सदियो तक घृणा तिरस्कार अपमान का घूँट पीती नारी पुरातन मान्यताओ, पर परम्पराओ, रीति–रिवाजो के विरूद्ध आवाज तो उठा रही है।

समानता के अधिकारो के लिए पहली बार रोम की महिलाओ ने सन 43 वी सी मे शखनाद किया था। उनका प्रतिनिधित्व सुप्रसिद्ध रोमन वकील की पुत्री होटैनेसिया' कर रही थी। उन्होने राष्ट् के सर्वोच्च पदाधिकारी के सामने एक ही प्रश्न रखा कि नारी को पुरूष की अपेक्षा हीन और तिरस्कृत दृष्टि से क्यो देखा जाता है? क्षमता एव कार्य दक्षता मे वह पुरूषो के साथ बराबरी कर सकती है फिर क्यो उसे शिक्षा एव प्रशासनिक कार्यो मे आगे नही बढाया जाता है उनके पिता स्वय इस विषय के प्रतिपादक थे। यद्यपि उन्हे उस समय आशिक सफलता मिली किन्तु सम्पूर्ण विश्व मे नारी जागृति लाने के लिए यह चिन्गारी सिद्ध हुई।

उसी समय क्रिस्टिन डीपी सेन नाम की विदुषी महिला अपने लेखो एव कविताओ के माध्यम से लोगो के मन मे यह भाव जगा रही थी कि महिलाओ को ऊँचा उठाये विना शिक्षित सभ्य एव सुसस्कृत बनाये बिना राष्ट्र का उत्थान असम्भव है। दैनिक पत्र–पत्रिकाओ मे नारियो का आह्वान किया कि वे अपपढ एव अयोग्य न रहे अपितु शिक्षा–विज्ञान चिकित्सा के क्षेत्र मे आगे जाने का प्रयास करे।

ब्रिटेन की प्रखर तेजस्वी एव स्पष्ट वक्तव्य देने वाली मेरी मान्टेग्यु के लेखो ने तो महिलाओ मे नव–जागृति का प्राण ही भर दिया। उनका विश्वास था कि धार्मिक, नैतिक, सामाजिक, राजनैतिक आदि किसी भी दृष्टिकोण से नारी को हीन नही कहा जा सकता । नारी एव पुरूष मे वौद्धिक, शारीरिक एव मानसिक सामर्थ्य एक समान है। उनका कहना था कि प्रकृति ने हमे पुरूषो से गया–गुजरा नहीं बनाया है। ईश्वर के यहाँ हमे पक्षपात नही मिलता है। पक्षपात तो पुरूषो ने किया है ताकि वे हम पर शासन कर सके इसलिए उसने हमे दीन–हीन पगु बनाया है। अत नारियो उठो ! जागो ! एव अपने अधिकारो के लिए लडो जब तक तुम्हे समानता का हक न मिल जाय।

सन् 1850 तक न्यूजीलैड मे महिलाओ को बोट देने उच्च शिक्षा ग्रहण करने एव प्रशासनिक कार्यों मे भाग लेने का अधिकार नही मिला था। फलत इसके लिए ब्रिटेन मे जन्मी महिला मेरी मूलर' ने समानता के लिए सघर्ष किया वे हर वर्ग की महिलाओ से मिलने उनके घर जाती एव उन्हे भावी सघर्ष की भूमिका बताती। बडे भावपूर्ण शब्दो मे उन्होने एक पर्चा प्रकाशित किया एन अपील टू द मैन ऑफ न्यूजीलैण्ड' इस पर्चे मे नारी की वर्तमान स्थिति एव पुरूषो द्वारा उस पर किये जाने वाले अत्याचारो का भावपूर्ण विवेचन था। इस पर्चे ने उस विचार क्रान्ति को जन्म दिया जिसके फलस्वरूप उच्च पदो पर आसीन पुरूष वर्ग स्वय

अधिकार दिलाने एव नारी की दशा सुधारने के लिए प्रयास करने लगे। अन्तत 1884 मे एक कानून बनाया गया जिसमे नारी को पुरूष के समतुल्य अधिकार देने की घोषणा की गयी।

जान स्टुअर्ट मिल की प्रसिद्ध रचना सब्जेक्शन ऑफ वूमेन' का जर्मन भाषा मे अनुवाद करने वाली जेन्नी हिरक की सहपाठी एलिक सेलमेन पहली महिला थी जिन्होने बर्लिन विश्वविद्यालय से महिलाओ की स्थिति पर लेख लिख कर पी एच डी की उपाधि प्राप्त की। उन्होने अपने लेख मे विश्व के सभी देशो मे नारी की स्थिति को स्पष्ट किया और बताया कि किस तरह उन्हे पुरूष से अधिक श्रम करने एव उत्पादन बढाने के बाद कम मूल्य एव सम्मान मिलता है। भारत की सती प्रथा, बाल–विवाह अनमोल विवाह, दहेज प्रथा एव छोटी बच्चियो का गर्भवती बनना जैसी कुप्रथाओ का मार्मिक चित्रण उनके लेख मे है।

सन् 1789 मे फ्रान्सीसी क्रान्ति ने भी नारी को अप्रभावित नही छोडा। समानता स्वतन्त्रता तथा मानवीय अधिकारो की रक्षा हेतु व्यापक जन क्रान्ति ने नारी की दशा सुधारने का अपना उद्‌देश्य बना लिया। इस सम्बन्ध मे प्रसिद्ध फ्रेन्च दार्शनिक एव क्रान्तिकारी कौन्डोसर्ट' ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई उन्होने द एडमीशन ऑफ वीमेन टू फूल सिटीजनशिप' नामक अपनी कृति के माध्यम से नारी मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत की। वे पहले विचारक थे जिन्होने नारी की ज्वलत समस्याओ का विस्तार पूर्वक पर्दाफाश किया और उन्हे अपनी दशा सुधारने के लिए स्वय आगे बढने के लिए प्रेरित किया। दूसरे विद्वान थे जान स्टुअर्ट मिल जिन्होने 'सब्जेक्शन आफ वीमेन' के माध्यम से इग्लैण्ड मे नारी मुक्ति आन्दोलन का सूत्रपात किया यद्यपि वहॉ इस अभियान की आधार शिला सन् 1792 मे ही मेरी वाल्स्टन क्राफ्ट नामक महिला द्वारा रखी जा चुकी थी। मेरी क्राफ्ट ने अपनी कृति 'ए विंडिकेशन ऑफ द राइटस ऑफ वीमेन ' के

माध्यम से शिक्षा व व्यवसाय के क्षेत्र मे स्त्रियो के समान अधिकार की घोषणा की। लेखिका के शब्द स्मरणीय है– मै दैहिक एव मानसिक शान्ति प्राप्ति करने के लिए साहस के साथ आगे बढाने का आह्वान स्त्रियो से करती हूँ। मै उन्हे यह समझाना चाहती हूँ कि हृदय की भावुकता भावो की नजाकत' और रूचियो की परिष्कृति जैसे सुन्दर मुहावरे जो उनके लिए गढे गये है वे प्राय उनकी दुर्बलता के पर्यायवाची विशेषण हैं।

मेरी काफ्ट के पश्चात उन्नीसवी सदी मे नारीमुक्ति आन्दोलन को तत्कालीन दार्शनिक और अर्थशास्त्री जान स्टुअर्ट मिल ने गति प्रदान की। लिग भेद के विरूद्ध उन्होने एक जवर्दस्त जेहाद खडा किया और स्त्री पुरूष के बीच बरती जाने वाली असमानता को समाज के सर्वागीण विकास मे बाधक बताया। उनसे प्रेरणा पाकर सन् 1903 मे राष्ट्रीय स्तर पर जगह–जगह विद्रोह उठ खडे हुए। इससे विमन्स सोशल एण्ड पालिटिकल युनियन की स्थापना हुई।

जून 1946 मे युनाइटेड कमीशन ऑन द स्टेट्स ऑफ विमेन की स्थापना हुई। इसका मुख्य उद्देश्य था प्रत्येक देश मे नारी को राजनैतिक अधिकर प्रदान करना । उन्नीसवी सदी का युरोप जहॉ नारी को मात्र सुकोमल, रमणी कामिनी आदि मानता था सर्वेक्षण बताते है कि अब वही वर्ग नारी समुदाय को सबसे अधिक सशक्त पक्ष मानने को बाध्य हुआ है । शिक्षा चिकित्सा व्यवसाय कला आदि क्षेत्रो मे उसकी महत्त्वपूर्ण भागीदारी शुरू हुई। 1960 के दशक मे नारीवाद या नारी मुक्ति आन्दोलन खास तौर से सयुक्त राज्य अमेरिका मे अपने एक नये रूप मे प्रकट हुआ।

हिन्दुस्तान में सदियो से होते आ रहे अपने शोषण और अत्याचारो के खिलाफ नारियो मे जागरण की चिन्गारी आजादी के कुछ पहले ही कौंधी थी। ईश्वर चद विद्यासागर द्वारा स्थापित वेहराम जी

माला–बावरी सघ विधवा विवाह और फिर बाल विवाह पर रोक लगाये जाने की मॉग को लेकर सामने आया। 1866 मे राजाराम मोहन राय ने सती प्रथा के विरूद्ध आवाज उठायी। औरतो के खोये हुए अधिकारो की पुनर्व्यवस्था मे बह्रम समाज की एक महत्वपूर्ण भूमिका रही।

अखिल भारतीय महिला सम्मेलन की स्थापना ने नारी मुक्ति आन्दोलन को एक सही दिशा प्रदान की । इस मच की नींव एक अग्रेज महिला मारग्रेट ड्र् कजिन्स ने 1926 ई मे डाली थी। 5 फरवरी 1926 को बडौदा की महारानी चिम्मनबाई गायकवाड की अध्यक्षता मे महिला सम्मेलन के तत्वाधान मे राष्ट्रीय पैमाने का अधिवेशन आयोजित हुआ। महारानी बडौदा ने 1921 मे पोजीशन आफ वीमेन इन इण्डियन लाइफ लिखकर पहली बार भारतीय महिलाओ के 1–दर्द को स्वर दिया 2–नारी मुक्ति आन्दोलन की पुरानी नेत्रियो मे सिस्टर निवेदिता बेगम भोपाल सरोजनी नायडू, विजयलक्ष्मी पण्डित कमला देवी चट्टोपध्याय ,हसा मेहता सुषमा सेन आदि के नाम उल्लेखनीय है।

आजादी के पूर्व के नारी आन्दोलन का कमजोर पक्ष यह भी था कि वह समाज मे औरतो की वेहतर स्थिति की प्राप्ति के लिए चलने वाला एक सुधारबादी आन्दोलन था। यह आन्दोलन गिने–चुने राजघरानो या सुविधा सम्पन्न महिलाओ के हाथ मे रहा आम नारी प्राय इससे अछूती रही। भारत मे आजादी के वाद तेजी से शिक्षा का प्रचार हुआ और देश मे औरतो का एक ऐसा वर्ग उभरा जिसने आधुनिकता का स्वाद चखा। जो शिक्षित था और सवाल उठाता था, प्रश्न करता था कि आखिर उसके वास्तविक अधिकार क्या है? पुरूषो के दर्द का भार वे कब तक सहती रहेगी? परन्तु आठवे दशक के आरम्भ मे एक तूफान की तरह सारे देश में नारी आन्दोलन उभरे हैं। इस आन्दोलन के लिए भौगोलिक परिस्थितियॉ

तो तैयार थी ही पश्चित के नारी मुक्ति आन्दोलन का भी इस पर पर्याप्त प्रभाव था।

पश्चिम मे जब औरते पुरूषो के बराबर हक की मॉग लेकर सडको पर उतरी थी तब उन्होने प्रसाधन के साधनो का वहिष्कार किया केश कटवाये मुक्त यौन सम्बन्धो की मॉग की तो समाज मे नैतिक मूल्यो मे तेजी से गिरावट आयी जिसके कारण नेत्रियो ने अपने आन्दोलन का रूख ही बदल दिया और अपने अतीत की ओर पुन मुखातिब हुई तथा सस्कारो और अधविश्वासो को ही अपने अनुकूल मानने लगी। इसका असर यह था कि हिन्दुस्तान मे भी यहॉ–वहॉ नारियो ने पुरूषो के खिलाफ ऐसे प्रदर्शन किये तथा बराबरी के अधिकारो के मॉग को लेकर पुरूष को अपना दुश्मन करार दिया ।

नवम्बर 1988 के अन्तिम सप्ताह मे महाराष्द्र के पवनार (वर्धा) स्थित ब्रह्रम विद्यामदिर के परिसर मे द्वितीय विश्व महिला सम्मेलन सम्पन्न हुआ। इसमे कुल वारह देशो की 650 महिला प्रतिनिधियो ने भाग लिया इस सम्मेलन का अन्त इस निष्कर्ष के साथ हुआ कि इन तीन गुणो (निर्भयता सामूहिकता और भावनात्मक एकता) को बढाने के लिए हमें द्विज बनना होगा। यह द्विजत्व आयेगा शरीर से उपर उठने से । विनोवा जी ने अपने बोधि चिन्ह मे जिन तीन शक्तियो का जिक किया है, उनमे लक्ष्मी ,सरस्वती तथा शक्ति के गुणो की उपासना करनी होगी।

सही अर्थो मे नारी मुक्ति का सवाल नारी को एक माल के रूप मे तब्दील हो जाने के कारण उठाया जा सकता है? केवल मुक्ति का कीर्तन करने से क्या लाभ? वह केवल हमे भटकाता है। 'इस दृष्टि से काली कट (केरल) मे सम्पन्न महिला आन्दोलन पर चौथा राष्द्रीय सम्मेलन विशेष रूप से उल्लेखनीय है। 28 से 31 नवम्बर 1990 तक चलने वाले इस सम्मेलन मे देश के अलग–अलग इलाको मे सकिय कान्तिकारी नारी

सगठनो से लेकर स्वायत्त नारी समूहो से सम्बद्ध 1700 से ज्यादा महिलाओ ने साझेदारी की।

सम्मेलन के अन्तिम दिन पारित प्रस्तावो मे एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव यह भी था कि आने वाला (8 मार्च) अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस साम्प्रदायिकता विरोधी दिवस के रूप मे मनाया जा तथा पूरा साल साम्प्रदायिकत हिंसा के खिलाफ और सम्प्रदायिक सवाल के लिए मुहिम चलायी जाय। [1]

मेरे कहने के अनुसार इस तरह के सार्थक सुझाव देश मे विखरे छिट–पुट क्रान्तिकारी नारी सगठनो द्वारा व्यक्त किये जाने पर कही न कही देखने को मिल जाते हैं।

आधुनिक नारी आन्दोलन की शुरूआत सितम्बर 1981 मे ख्वातीन महाज (वीमेन्स एवन्शन फोरम) के जन्म से मानना चाहिए।

ख्वातीन महाज की नीव सितम्बर 81 मे करॉची के कुछ व्यवसायिक मध्यमवर्गीय औरतो द्वारा रखी गयी। इनका उद्देश्य पाकिस्तानी औरतो के लिए उनके मानवीय अधिकारो की प्राप्ति और उनका विकास इन अधिकारो मे सम्मिलत है– शारीरिक सुरक्षा, विवाह , व मातृत्व के मामले मे स्वतन्त्र चुनाव का हक और भेद भाव के उन्मूलन।

सयुक्त राष्ट्र सघ के तत्वाधान मे नैरोबी मे सम्पन्न 1975 से 1985 तक मनाये गये महिला दशक के समापन समारोह मे नारी मुक्ति की व्यापक चर्चा की गयी। मिस्र की चिकित्सक नवल–उल–सादवी ने महासचिव के कहे गये वाक्य को यह कहते हुए कुछ आगे तक और खींच दिया कि– स्वर्ग मे भी पुरूषो को हमसे ज्यादा अधिकार होगे और हमे वहॉ जाकर भी अपनी लडाई लडनी होगी।

---

[1] प्रस्तुति लोक दस्ता' मार्च–अप्रैल 1991 'नारी मुक्ति का सघर्ष' डा0 अमर नाथ पृ स 135

सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर चलने वाले दो समानान्तर सम्मेलनो मे स्त्रियो के साथ बरते जाने वाले भेद–भाव के लिए अमरीकी सरकार को खासतौर पर कठघरे मे खडा किया गया। तीसरी दुनिया की महिला प्रतिनिधि इस विषय पर बहुत मुखर रही जिन्होने 'रीगन' सरकार को स्त्री और पुरूष जातियो मे फर्क करने के लिए सबसे बडा दोषी करार दिया। नैरोबी रवाना होने के ठीक पहले एक सवाददाता सम्मेलन मे रीगन की 44 वर्षीया पुत्री 'मारीन' ने नारी अधिकारो पर व्यापक चर्चा की थी लेकिन नैरोबी पहुँचने पर अपने कथनी और करनी मे यह कहते हुए अन्तर स्पष्ट कर दिया कि– हम स्त्रियो की समस्याओ को राजनीति से अलग करके देखेगे क्योकि उससे समय बर्बाद होगा और असली मुद्दो पर विचार–विमर्श का समय नही निकाल पायेगे।

विभिन्न सरकारो के झूठे–सच्चे वादे सामने आये। उपलब्धि के नाम पर स्त्रियॉ अपने अधिकरो के बारे मे पहले से ज्यादा जागरूक हुई हैं मगर इसका श्रेय किसे दिया जाना चाहिये यह तय करना मुश्किल है। सदियो की खामियो को एक दशक मे दूर करने की असभव बात को बार–बार दोहराया गया और स्त्रियो के जीवन मे जो थोडा–बहुत बदलाव आया है उसे हर सरकार ने रगीन चश्मे से देखने की कोशिश की।[1]

अमेरिका की प्रसिद्ध महिला नेत्री ग्लोरिस्टाइनम की नैरोबी के इस सम्मेलन पर टिप्पणी थी कि– वह प्रतिवद्ध स्त्रियो का नही एक नितान्त सरकारी किस्म का सम्मेलन है जिस सम्मेलन मे हमारे देश की स्त्री प्रतिनिधि मण्डल की प्रमुख बनकर रीगन की पुत्री गयी हो उसे और

---

[1] 'दिनमान' 11–17 अगस्त पृ सं 23

क्या कहेगे? अधिकतर प्रतिनिधि मडलो की प्रमुख देश के राज प्रमुख की बीबी या बेटी हो तो खुलकर बात क्या होगी। [1]

एक विचारक ने कहा कि बडे–बडे मजबूत आदमी भी इस कलह मे गर्क हो गये उन्होने आत्महत्याये कर ली। एक क्रान्तिकारी ने कहा कि यदि लेनिन के साथ भी लडकियॉ होती और वे हिन्दुस्तानी समाज मे होते तो सारी क्रान्ति धरी रह जाती। एक व्यग्यकार ने इस पर व्यग्य लिखा–स्त्री चाहे घर को स्वर्ग बना दे चाहे तो घरवालो को स्वर्गवासी। जबाब मे दूसरा धारदार व्यग्य लिखा गया कि जन्मपत्री लडके से नही लडके की मॉ से मिलाना चाहिये।

लेकिन इसे जरा गहराई से देखा जाय तो पता लगे कि तत्र ने सारी धुर्तता नारियो के मत्थे मढ दी हैं बडे आराम से निष्कर्ष निकाल लिया गया कि यदि स्त्री सुशील कर्त्तव्य परायण पतिव्रता सेवा–सुश्रूषा करने वाली चुप महान शान्त यानी देवी होती तो स्वर्ग बना बनाया था। लेकिन यह देवतापन कितनी धुर्तताओ का रस हैं।[2]

अत नारी मुक्ति के सवाल को केवल वैज्ञानिक दृष्टि ही सही सन्दर्भो मे पेश कर सकती है हम लोगों को वैज्ञानिक दृष्टि अपनानी पडेगी एक सच्चा इमानदार इसान बनकर ही हम इस सवाल को उठा सकते है और उसका हल ढूढ सकते है। हमे अपनी दृष्टि खुली रखनी होगी दिमाग साफ रखना होगा आधुनिक युग मे बडे–बडे कल कारखानो के खुलने के बाद देखा गया कि नारी समाज का एक बडा हिस्सा (मुख्यत गरीब वर्ग से ही) इन कल–कारखानो मे काम पाने लगा एक

---

[1] 'दिनमान ग्लोरिया स्टाइनम से अमेरिका मे मृणाल पाण्डेय द्वारा लिया गया साक्षात्कार वामा' सितम्बर 85 पृ स 15

[2] नारी स्थिति सर्वेक्षण और मूल्याकन में प्रदीप सक्सेना का लेख पृ0 17

बार सामाजिक उत्पादन के काम मे नारी समाज की हिस्सेदारी शुरू हो गयी इससे नारी की सामाजिक मुक्ति का रास्ता दिखाई देने लगा उसने अपनी जीविका अर्जित करके आर्थिक स्वाधीनता की ओर कदम उठाया।

वर्तमान पूँजीवादी समाज मे भी हम देखते है कि ऊपरी तौर पर नारी–पुरूष की स्वाधीनता की आड मे नारी का कितना कठोर शोषण किया जाता है? एक तरफ अभिजात्य वर्ग की कुछ महिलाओ को 'हिरोइनो' के रूप मे खडा किया जाता है, व्यक्तिगत रूप मे उन्नति का अवसर पाकर शिक्षित और आगे बढी हुई महिलाओ को दिखाकर यह कहा जाता है कि देखिये ये नारी समाज कितना आगे बढ रहा है , वह कितना स्वाधीन हो रहा है दूसरी ओर मजदूर किसान और मध्यम वर्गीय परिवार का व्यापक नारी समाज अपार शोषण का शिकार है।

वर्ग विरोध और वर्ग–शोषण के साथ नारी–शोषण की कहानी एतिहासिक रूप से जुडी है। सर्वहारा वर्ग के जरिये पूँजीवाद के उन्मूलन तथा समाजवाद की स्थापना के साथ ही नारी समाज की सम्पूर्ण मुक्ति सम्भव हो सकेगी ।

जहॉ भी समाजवादी कान्तियॉ हुई वहॉ नारी जाति की वास्तविक मुक्ति सम्भव हुई । इसलिए आज शोषण–विहीन समाज व्यवस्था को अपनी मुक्ति की मजिल समझकर सारे विश्व के पूजीवादी सामती देशो की मेहनतकश नारियॉ शोषण के जुए को उतार फेकने के लिए सघर्षरत है। इतिहास की धारा उस गन्तव्यकी ओर आगे बढ रही है जहॉ वर्ग और वर्ग–विरोध से भरे हुए पुराने पूजीवादी व्यवस्था का स्थान एक ऐसी समाज व्यवस्था लेगी जिसमे प्रत्येक का स्वतन्त्र विकास ही सबके स्वतन्त्र विकास की शर्त होगी। [1]

---

[1] कलम मार्क्स विशेषाक अप्रैल 1994 कनक मुखर्जी का लेख पृ0 138

सोवियत सघ की यात्रा से लौटने के बाद श्री राज्यम सिन्हा ने अपनी पुस्तक सोवियत नारी की कहानी की भूमिका मे लिखा है–

सोवियत सघ के अनुभव से यह सिद्ध हो गया कि स्त्री और पुरूष की सामाजिक समानता केवल समाजवादी समाज मे सम्भव है , जहॉ व्यक्तिगत सम्पत्ति को समाप्त कर दिया गया है तथा देश के मेहनत कश लोग सरकार का सचालन करते है। ऐसे शासन तत्र मे स्त्रियॉ अक्षरश बहुरगी फूलो के रूप मे खिल पडती हैं और अपने चारो ओर उल्लास और सुगन्ध फैलाती है इन सारी चीजो को ऑखो से देख पाना मेरे लिए एक महान सौभाग्य था। [1]

नारी को अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्व के निर्माण के लिए इन सामती मूल्यो एव जड सस्कारो के खिलाफ सघर्ष करना होगा। अधविश्वास व्रत–उपवास पूजापाठ छुआ छूत जैसी कुरीतियो की पोषक नारी ही होती है इन्हे इनसे मुक्ति पानी होगी। नारी मुक्ति की शर्त है परिवार के स्तर पर पुरूष के शोषण के खिलाफ आवाज उठाना । हमारे देश का मेहनतकश पुरूष समाज जहॉ पूजीवादी व्यवस्था के पोषक शोषक वर्ग द्वारा ही शोषित है वहॉ नारी दोहरे शोषण की शिकार है एक तो स्वय भी पुरूष के साथ शोषको द्वारा दुसरे परिवार के स्तर पर अपने घर के पुरूषो द्वारा। नारी मुक्ति सघर्ष की एक शर्त यह भी है कि वह पूजीवादी व्यवस्था के खिलाफ है। वास्तव मे नारीं की वास्तविक मुक्ति शोषक पूजीपति वर्ग की इस व्यवस्था को जड से उखाड कर फेकने और उसकी जगह समाजवादी व्यवस्था को स्थापित करने पर ही सम्भव है।

---

[1] सोवियत नारी की कहानी श्री राज्यम सिन्हा पृ0 131

जिसके लिए मेहनतकश जनता के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर नारी समाज को भी एकजुट होकर व्यापक सघर्ष छेडना होगा।

नारी मुक्ति का सवाल सबसे पहले आर्थिक आत्म निर्भरता की मॉग करता है। पूजीवादी देशो की भॉति भारत मे भी स्त्री प्राय दोयम दर्जे की नागरिक मानी जाती है। पति के रहते उसकी सम्पत्ति मे पत्नी का कोई अधिकार नहीं और पति की मृत्यु के बाद भी सम्पत्ति का मालिक पुत्र होता है। इन दोनो के आभाव मे ही सम्पत्ति पर स्त्री का अधिकार होता है। दूसरी ओर घर मे औरतो को घर गृहस्थी का काम करना पडता है उसका उन्हे एक पैसा भी नही मिलता जबकि बाहर काम करने वाले पुरूषो से ज्यादा उत्तरदायित्व और कठिन परिश्रम घर के काम मे होता है। (जुलाई 85 मे नैरोबी मे नारी दशक के सन्दर्भ मे आयोजित महिला सम्मेलन मे घर मे काम करने के बदले वेतन देने की मॉग उठी थी) नारी मुक्ति का सवाल राष्ट्र के निर्माण मे नारी के स्वतन्त्र सक्रिय योगदान का सवाल है। आज देश मे ऊॅचे पदो पर पहुॅच कर और कुशलता पूर्वक अपने कर्त्तव्य का निर्वाह करके नारियो ने यह सेवित कर दिया है कि वह हर तरह के दायित्व को निभाने मे सक्षम है।

2—हिन्दी साहित्य का सन्दर्भ और स्त्री विमर्श ,सक्षिप्त दृश्यालेख

हिन्दी साहित्य के सन्दर्भ मे आधुनिक काल जब से प्रारम्भ हुआ तभी पुर्नजागरण के प्रभाव से स्त्री विमर्श तकनीकी रूप मे न सही पर व्यवहारिक रूप मे आरम्भ हो गया। भारतेन्दु ने अपनी यात्राओ के सिल—सिले मे जो सभाये की , चाहे बलिया मे चाहे बस्ती मे उन्होने देश के जागरण के उपलक्ष्य मे स्त्रियो की शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया और इस आशय की बात कही कि स्त्री इस देश की आधी आबादी है और आधी आबादी मे जागरूकता लाये बिना सामाजिक जागरूकता की बात

वेमानी है। भारतेन्दु और उनके मण्डल के लोखको ने स्त्री सम्बन्धी जागरूकता का श्रीगणेश मात्र किया था आधुनिक हिन्दी साहित्य के द्वितीय चरण मे विशेषकर हिन्दी नवजागरण का बहुत कुछ अन्य सन्दर्भो के अतिरिक्त स्त्री के जागरण और उसके राष्ट्रीय आन्दोलन तथा सामाजिक आन्दोलन मे हिस्सेदारी लेकर व्यवस्थित हो रहा था। स्वय द्विवेदी जी और और उस समय के दूसरे गद्य–लेखक अपनी टिप्पणियो मे स्त्री के साथ सामाजिक न्याय की चेतना को उल्लखित करने का कार्य करने लगे। कान्तिकारियो की जमात मे स्त्रियो की हिस्सेदारी आरम्भ हो गयी । स्वदेशी आन्दोलन काग्रेस पार्टी और विभिन्न सामाजिक सस्थाओ सम्मेलन सगोष्ठियो मे स्त्री और शूद्र जो दोनो ही उपेक्षित थे एक बार फिर से विमर्श के प्रकाश मे आने लगे। बगाल मे शरत चन्द चट्टोपध्याय और हिन्दी क्षेत्र मे प्रेमचद, प्रसाद जैसे लेखक स्त्री को महत्व देने वाली चेतना को अपने साहित्यिक उपक्रम मे समायोजित करने लगे। अशिक्षा विधवा विवाह, अर्न्तजातीय प्रेम वेमेल विवाह और दूसरे नारी सन्दर्भी प्रकरणो को निबन्धो नाटको और कथानको का विषय बनाया जाने लगा। सच तो यह है कि भारतीय परिवेश मे स्त्री विमर्श का प्रथम गुणात्मक हस्तक्षेप राजाराम मोहनराय के सती प्रथा विरोधी आन्दोलन से ही विशेष रूप से घटित हुआ। भारतीय समाज अपनी सास्कृतिक यात्रा मे स्त्री को देवी मानने के बावजूद आधुनिक काल के पहले तक उसके साथ होने वाले अमानवीय और विषम व्यवहार के प्रति उतना चितित नहीं था जितना आधुनिक काल मे वह चितित हुआ।

वस्तुत आधुनिकता का एक आयाम मानवीय प्रज्ञा के सतत् वर्तमान ने स्त्री के प्रति एक स्वाभाविक तर्क सगत , वस्तुनिष्ठ और समान धर्मी चेतना का इतिहास है। आधुनिकता तर्कशीलता पर आधारित है और तर्क स्त्री–पुरूष मे गैर बराबरी अथवा स्त्री के प्रति सौतेला व्यवहार कर

ही नही सकता। दोनो ही महत्वपूर्ण है। दोनो का समाज और परिवार के निर्माण मे युग्पति योगदान है। इसलिए भारतेन्दु युग से ही स्त्री को मध्यकालीन सोच से अलग करने की कोशिश रचनाकारो ने शुरू कर दी यह एक प्रतिक्रिया भी थी क्योकि सामती व्यवस्था मे स्त्री शोभा और भोग की वस्तु थी। अलकार या मुद्रा की तरह उसका विपणन और व्यापार होता था। वह पुरूष की तृप्ति और अग विशेष होने की योग्यता रखती थी। उसके लिए युद्ध हो सकता था पर उसके लिए न्याय समाज मे नही था। इसका परिणाम समाज को दूषण की ओर ले गया। आधुनिकता के उन्मेष के साथ–साथ इस विचार धारा पर अकुश लगना आरम्भ हो गया और अग्रेजो की चलाई हुई शिक्षा पद्वति के परिणाम स्वरूप स्कूल कालेजो से भी निकली लडकियो के भीतर कुछ ऐसी कसमसाहट उठी कि स्त्री भी स्वाधीनता और व्यक्तित्व की सुरक्षा का प्रश्न वुद्धिजीवी समाज को उन्माथित करने लगा। दूसरे शब्दो मे ये एक प्रकार से पढी लिखीं स्त्रियो को अपनी पहचान और प्रतिष्ठा बनाये रखने के आन्दोलन के रूप मे समाज के भीतर रूपायित हुआ और आज उसके अनेक आयाम स्त्री–विमर्श के रूप मे सामने आने लगे हैं। इसे दूसरे शब्दो मे सामतकाल के गठित लोकतन्त्र का स्त्री सन्दर्भी चैतन्यता भी कह सकते है या पुरूष मूलक समाज स्त्री की उपेक्षा की प्रतिक्रिया भी इसे कह सकते है। पर यह नितान्त प्रतिक्रिया ही नहीं है। क्योकि इस रूप मे इसका स्वरूप ऋणात्मक ज्यादा हो जाता है। यह एक प्रकार की जरूरी प्रगति शीलता भी है जो समाज के विवेक को प्रतिष्ठित करती है अन्याय का प्रतिकार करती है स्वाधीनता और सम्प्रभुता के बुनियादी मानवीय विकास रथ को समुचित जगह पर पहुँचाने मे सहायक भी होती है ।

स्त्री स्वतन्त्रता की गूज सबसे पहले सीमोन द वोउवार के द सेकेंड सेक्स मे ही सुनाई पडी थी उनका कहना था कि – सच्चाई

तो यह है कि पुरूष के मूल्यो की बराबरी मे या उनके खिलाफ औरत ने कभी स्त्री–मूल्यो को स्थापित करने की चेष्टा नही की। यह तो पुरूष है जो सत्ता मे रहने के कारण अपनी सुविधाओ को बनाये रखने के लिए मूल्यो की भिन्नता औरत पर थोपता है। पुरूष ने औरत के लिए दुनिया बनाने का अधिकार अपने पास रखा। लेखको के बारे मे वे कहती हैं– प्रत्येक लेखक अपनी–अपनी कलम से स्त्री के बारे मे एक महान सामूहिक मिथक की ही रचना कर रहा है। उनकी दृष्टि मे मिथ मानो उन मिथ्या वस्तुओ का जाल होता है जिसमे स्थापित मूल्यों पर आस्था रखने वाले व्यक्ति सहज मे फॅस जाते है। लेखिका का निष्कर्ष है कि साहित्य मे स्त्री एक वस्तुगत सत्य की जगह काव्यमय सत्य की तरह प्रतिष्ठित है।

जयशकर प्रसाद की कमायनी मे नारी के काव्यमय स्वरूप के साथ यानी उसके काव्यमय सत्य के साथ उसके वस्तुगत सत्य का सतत् द्वन्द्व दिखाई पडता है। इस दृष्टि से लज्जा सर्ग मे लज्जा और श्रद्धा का सवाद ध्यान आकर्षित करता है। श्रद्धा मानो अत्याधिक नारीवादी दृष्टि को स्वर देती हुई कहती है– यह आज समझतो पाई हूँ मै दुर्बलता मे नारी हूँ अवयव की सुन्दर कोमलता लेकर मै सबसे हारी हूँ आत्मोसर्ग और समपर्ण जैसे नारी से जुडे मूल्यो के बारे मे उसका विचार है –

इस अपर्ण मे कुछ और नही
केवल उत्सर्ग छलकता है,
मै दे दूँ और न फिर कुछ लूँ
इतना ही सरल छलकता है।

श्रद्धा का उक्त कथन नारी जीवन की त्रासदी का जिसमे उसकी शारीरिक त्रासदी से लेकर मूल्यगत त्रासदी तक शामिल है सच्चा अकन है।

शरतचन्द्र का अत्यन्त महत्वपूर्ण उपन्यास है शेष प्रश्न । इसका केन्द्रीय चरित्र है कमल जो अत्यन्त स्वाभिमानी और युक्ति की निर्मम तथा कठिन कसौटी को ही अपने विचारो का प्रमाण मानने वाली है। अपने स्वतत्र विचारो के कारण लोगो से लाछित होती हुई भी वह अपने प्रति लोगो का अत्यन्त आकर्षण रखती है। वह एक अन्य चरित्र नीलिमा से कहती है— हमे चाटु वाक्यो मे नाना अलकार पहना कर जिन लोगो ने यह प्रचार किया था कि मातृत्व मे नारी की चरम सार्थकता है उन लोगो ने समस्त नारी जाति को धोखा दिया था। जीवन मे किसी भी अवस्था मे क्यो न पडना पडे इस मिथ्या नीति को हर्गिज न मानना।

स्त्रियो के आत्मोत्सर्ग के बारे मे उसका कहना है— यह प्रवृत्ति है पर यह उनके भीतर की पूर्णता से नही आती है सिर्फ शून्यता से और उठती है हृदय खाली करके , यह तो स्वभाव नही आभाव है। सार्थकता का जो आइडिया बचपन से ही लडकियो के दिमाग मे आप लोग (पुरूष) भरते आये हैं उसकी रटी हुई बातो को तो ही वे दर्प के साथ दुहरा कर सोचा करती है कि शायद वही सत्य है [1] कमल के इन विचरो मे अत्याधुनिक नारीवादियो के विचरो की झलक मिल जाती है। मातृत्व , समपर्ण और उत्सर्ग जैसे नारी मूल्य नारी के स्वभाव से नहीं नारी जीवन के आभाव से उपजे है। –

प्रेमचन्द पूर्व युग के उपन्यासकारो की दृष्टि नारी को लेकर के रीतिकाल की श्रृगारिक भावनाओ से ओत–प्रोत थी। इस युग के उपन्यासकारो के नारी पात्र महज कठपुतली मात्र थे। नारी की स्वतन्त्रता नारी की शिक्षा और विधवा विवाह जैसे प्रश्नो को धर्मभीरू जनता बडी

---

[1] कसौटी–अप्रैल जून 1999

शकालु निगाहो से देखा करती थी इतना ही नही घर की स्त्रियॉ स्वय पर्दे मे रहना अधिक पसद करती थी।

आदर्श हिन्दू उपन्यास की नायिका प्रियवदा अपने पति प्रियनाथ से कहती है– हम परदे मे रहने वालियो को ऐसा सुख नही चाहिए हम अपने घर के धन्धे मे ही मगन हैं। इस तरह खुले मुँह बाहर फिरना अपना गोरा–गोरा मुँह दूसरो को दिखाते फिरना पर पुरूष से हॅस–हॅस कर बाते करना आखिर किस काम का । ऐसे सुख से तो घर मे घुसकर मर जाना ही अच्छा है।

सुशीला विधवा की सुशीला स्त्रियो को उपदेश देते हुए कहती है– पति के मर जाने पर सबसे बढकर तो धर्म तो यही है कि उसकी चिता मे भस्म होकर पति का साथ दे। परन्तु आजकल ऐसा जमाना नही रहा, इसलिए जब तक जिये व्रह्मचर्य ब्रत का पालन करे। व्रह्मचर्य ब्रत का पालन करने वाली विधवाए मरने पर स्वर्ग मे पति को प्राप्त करती है। और फिर दम्पत्ति का साथ कभी नहीं छूटता।

इस युग की नारियॉ अपने सौन्दर्य के प्रति काफी अशिशप्त दिखाई देती है। आदर्श दम्पति की नायिका सुन्दरी एक जगह कहती है– निपूती रूप भी मेरा शत्रु बन गया है , जिधर भी जाती हूँ उधर इसके कारण एक न एक नई आपदा खडी हो जाती है। वास्तव मे स्त्रियो का सौन्दर्य आटे का दिया है। आटे के दिये को घर मे रखो तो चूहे खा जाते है। बाहर निकलो तो कौवे चोच मारते है। इस समय तक स्त्रियो के अपने शोषित होने का एहसास होने लगा था किन्तु वे इसके विरूद्ध आवाज न उठा सकती थी।

प्रेमचन्द युगीन उपन्यासो मे नारी कुछ हद तक जागरूक दिखाई देती है। प्रेमचन्द आदर्शवादी परिकल्पना के हिमायती थे। इस युग की नायिकाए केवल घर की चार दिवारी तक ही सीमित नहीं थी बल्कि वे

सामाजिक एव राजनीतिक जीवन से अपना घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने मे सफल हो गयी। वे परदे मे रहने वाली नही है। इस युग मे विधवा विवाह का स्पष्ट अर्थो मे समर्थन मिलता है। वेश्या प्रेम और विधवा प्रेम की मान्यताए स्वीकृत की गयी। पिछले युग की नायिकाओ की अपेक्षा वे अधिक विकसित है। प्रेमचन्द विचारो से तो प्रगतिशील थे परन्तु वे काफी समय तक अपनी परम्पराओ का मोह त्याग नही सके। सुमन का विवाह सदन सिह से वे इसलिए नही करा पाये हैं क्योकि वेश्या विवाह को अच्छा मानते हुए भी वे समाज मे विद्रोह उपस्थित नहीं कराना चाहते थे। हॉ इस काम को विश्वम्भर नाथ शर्मा कौशिक ने अपने उपन्यास मॉ' मे जरूर किया है। जब बन्दीजन वेश्या की दोनो पुत्रियो का विवाह हो जाता है अत इस समय तक नायिकाए उन्नति के पथ पर अग्रसर होती रही उनमे प्रगतिशीलता का सचार होता रहा।

प्रेमचन्दोत्तर काल मे अनेक औपन्यासिक नवीन प्रवृत्तियो ने जन्म लिया। इन नवीन प्रवृत्तियो मे फ्रायड का मनोविश्लेषणवाद व्यक्तिवाद समाजवाद और अस्तिववाद शामिल है। उपन्यासकारो का ध्यान इन नवीन प्रवृत्तियो की ओर गया और एक नई नारी ने जन्म लिया जो सापेक्ष तो थी परन्तु उसमे युग से लडने और जीवित रहने की क्षमता भी थी। लेकिन इस प्रसग मे एक बात उल्लेखनीय है कि नारियो पर इन नवीन प्रवृत्तियो ने ही प्रभाव नही डाला अपितु इसमे भारतीय समाज की परिवर्तित परिस्थितियो का भी बहुत बडा हाथ है। भारत मे नैतिक एव सास्कृतिक मर्यादाये खण्डित हो रही थी दोषपूर्ण शिक्षा प्रणाली के चलते स्त्रियॉ गलत दिशा की ओर प्रयाण कर रही थी। उनका अहभाव उभर कर सामने आ रहा था। रामेश्वर शुक्ल' अचल के उपन्यास चढती धूप' की नायिका ममता इन्ही भावनाओ की परम् अभिव्यक्ति करती है।

आज यदि समर्पिता सहनशीलता को समाज स्त्री का सर्वोत्तम गुण बताता है तो यह उसकी स्त्री विरोधी दृष्टि है और स्त्रियो को वेवकूफ बनाने का उपाय। स्त्री इसी सवेदनहीनता सास्कृतिक आडम्बरो की शिकार है। साहित्य जगत मे तो लेखक ने अपनी कल्पना के अनुसार स्त्री स्वरूप का निर्धारण किया है। स्त्री ने स्वय अपने बारे मे अपनी भावना अपने इतिहास अपनी इच्छा अनिच्छा के बारे मे कुछ नहीं नहीं कहा और न ही' उससे पुछा गया। पुरूष की सर्वधित चेतना अधिपत्य की भावना स्त्री देह के प्रति पूँजीकरण की प्रवृत्ति ने न केवल साहित्य जगत मे भी स्त्री की नुमाइदगी का प्रयास किया बल्कि उसके अनुभवो की प्रमाणिकता पर भी अपना मत–अमत जाहिर करता है।

प्रतिरोध का स्वर जब पहली बार उठता है तो बहुत ही अपरिचित और अकेला लगता है, अप्रिय भी। स्त्रियो के अन्दर अपनी राधीन स्थिति की चेतना और छटपटाहट बहुत पहले शुरू हो गयी थी। सोलहवीं शताब्दी की रचनाकार मीराबाई पहली विद्रोही थीं। उन्होने अपने पदो मे विनम्र और प्रेम के साथ असहमति और अस्वीकार को भी अभिव्यक्ति दी। मीरा बार–बार यह जताती हैं कि जो मुझे प्रिय है उसकी चाकरी करना मुझे स्वीकार है परन्तु जो मुझे प्रिय नही है उसके महल दुमहले भी मेरे किस काम के।

जिस देश काल मे मीरा ने स्वाधीनता का जयघोष किया वह अभी इतने स्त्री–स्वातत्र के लिए तैयार नही था। यह तैयारी 19वी सदी तक भी नहीं हो पायी। जब 1882 मे पजाब की एक अज्ञात हिन्दू औरत की लिखी हुई सीमान्तनी उपदेश' पुस्तक प्रकाशित हुई । उन्नीसवी सदी मे स्त्रियो के प्रति समाज मे नियमगत घेराबदी, स्त्री–पुरूष के लिए दुहरे मानदण्ड और मनुवादी दृष्टिकोण पर इस अज्ञात हिन्दू औरत ने जमकर प्रहार किये हैं। सीमान्तनी उपदेश' की लेखिका ने अपना नाम अन्त तक

उजागर नही किया है। हिन्दी की पहली कहानी पर विचार करते समय जब दुलाईवाली कहानी का उल्लेख होता है तब भी रचनाकार का नाम बग महिला' मात्र मिलता है। बाद मे खोजबीन कर राजेन्द्र बाला घोष नाम सामने आता है। इसका अर्थ यह निकलता है कि उन्नीसवी सदी मे स्त्री को लिखने की स्वाधीनता नही थी। इस हिसाब से देखा जाये तो 1947 से आज तक के समय मे हमारे समाज ने परिवर्तन मे विस्मय जनक त्वरा दिखाई है। आज स्त्रियॉ वेधडक लिखती हैं। और लिखे हुए पर नाम की मुहर भी लगाती है। धीरे–धीरे उनके लिए अपनी बात कहने की परिस्थिति बनी है। पुरूष समाज को कई तकलीफ देह–सच्चाइयो से पहली बार परिचित होना पडा है। देवी मॉ सहचरि प्राण कहने भर से स्त्री आश्वस्त हाने वाली नही है उसे समान रूप से इसान का दर्जा चाहिए। यह छअपटाहट अज्ञात हिन्दू औरत की पुस्तक मे भी व्यक्त हुई है।[1]

स्त्रियॉ अब नारी जाति के लिए न्याय के सघर्ष को तीखा बना रही है। स्त्री अस्मिता के प्रश्न अब स्त्री–विमर्श का मुख्य विषय है। इसलिए स्त्री की अस्मिता के प्रश्न को लेकर अब स्त्री–लेखन मे जवर्दस्त सघर्ष छिडा हुआ है। अब स्त्रियॉ पुरूषबादी वर्चस्ववाद को तोडने के लिए स्त्री अनुभवो को व्यक्त करने लगी हैं। पहले लेखिकाए स्त्री की जो पारम्परिक दीन–हीन छवि प्रस्तुत करती थी अब स्त्री–विमर्श ने उस पारम्परिक स्थिति को बदल दिया है। अब वर्चस्व का समर्थन नही खुले शब्दो मे प्रतिरोध हाने लगा है। इस परिवर्तन को सुधीश पचौरी सूचना का फैलाव और उत्तर आधुनिकता मानते है।

---

[1] (सहारा 18 मइ 2002 पृ 9)

पिछले कुछ वर्षो मे साहित्य मे भी स्त्री एक नये रूप मे उभर कर सामने आयी है। हलाकि औरतो के पक्ष मे रचे गये कहानी उपन्यास लेख और कविताओ मे दी गयी दलीले लम्बे समय की यात्रा करके यहाँ तक पहुँची है और अब उस मुकाम पर आ गयी है जिस पर हमारा रूढिवद्ध समाज चिढ कर बौखलाने लगा है। समाज के मुखिया पुरूष ने पहाड की तरह यही सोचा कि धरती पर छाया किये हुए है, वह नही सोचना चाहता कि वह भूमि पर बोझ है। वस इसीलिए जब स्त्री ने अपना घूँघट उठाया और पूरे वजूद के साथ खडी हो गयी तो समाज की व्यवस्था चरमरा उठी। पुरूष सत्तात्मक समाज स्तब्ध रह गया। एक पूरी स्त्री अजूबा सी । उन्होने तो इस औरत को टुकडो मे देखा था , कही से उधाडना चाहा तो अपनी इच्छा से। यह तो इतिहास मे पहली बार घट रहा है कि स्त्री पितृ सत्ता को नकार रही है, उस सत्ता द्वारा आरोपित भूमिकाओ के प्रति सवाल उठा रही है। वह वस्तु से व्यक्ति बनने की प्रकिया मे है।[1]

नारी अब कालीदास की नायिका तुलसी की सीता सूर की राधा जायसी की पदमावती निराला की रत्नावली पत की ज्योत्सना या अप्सरा प्रसाद की श्रद्वा और भारती की कनुप्रिया नही है। सामाजिक आर्थिक तथा सास्कृतिक स्थितियॉ सदर्भ सविधान–सभी बदल रहे है बदल गये है। आज की स्त्री अपना व्यक्तित्व खुद गढती है और वह निडर होकर आगे की ओर अग्रसर हो रही है। जहॉ पहले की लेखिकाए परम्परावद्ध होकर लेखन कार्य करती थी वहॉ अब स्थितियॉ एकदम बदल गयी है। जहॉ ने स्त्रियो ने निर्भीकता से सदियो से चली आ रही परम्परा

---

[1] औरत अस्तित्व और अस्मिता) अरविंद जैन भूमिका पभा खेतान पृ014

को तोडा है वही अपने लेखन मे स्त्री जागरूकता की एक नई कान्ति को दिखाया है। मन्नू भण्डारी कृष्णा सोबती उषा प्रियवदा छठे दशक से लिखती आ रही और अब भी लिख रही है। अन्य महिलाओ मे ममता कालिया सूर्यबाला मृणाल पाण्डेय नमिता सिह राजी सेठ मृदुला गर्ग मैत्रेयी पुष्पा चित्रा मृद्गल मजुल भगत नासिरा शर्मा अलका सरावगी गीताजलिश्री प्रभाखेतान, दीप्तिखण्डेलवाल, शशिप्रभा शास्त्री शिवानी आदि के नाम उल्लेखनीय है।

कृष्णा सोबती वीसवी शताब्दी की महत्वपूर्ण लेखिका है। इन्होने अपने लेखन मे स्त्री की देह को मनुष्य देह की तरह रखकर मन बचन से उर्ध्वगामी यात्रा के लिए उपन्यास रचे जिनमे स्त्री ने अपने होने की बकायदा घोषणा की। वहॉ वह बस्तु से व्यक्ति बनने की प्रकिया मे है। सोबती जी का एक उपन्यास सुरजमुखी अधेरे के 1972 मे प्रकाशित हुआ था। इस उपन्यास मे बचपन मे ही बलात्कार की शिकार हुई उन बेटियो की सघर्षगाथा है जिन्हे मॉ–वाप भाई बहन दोस्त रिश्तेदार और समाज कहता रहता है कलमुॅखी तू मर क्यो नही गयी ? और जिनके लिए सवाल अस्मत का नहीं अस्मिता का है।

प्रसिद्ध लेखक राजेन्द्र यादव के अनुसार सूरज–मुखी अधेरे के मे कृष्णा जी की नारी एक खतरनाक दिशा की ओर मुडती दिखाई देती है। डार से विछुडी मे आदमी ने औरत को चीज की तरह इस्तेमाल किया था यहॉ औरत आदमी को एक दूसरी दृष्टि से इस्तेमाल करती है।[1]

सूरजमुखी अधेरे के' मुख्यपात्र रत्ती के बचपन से बलात्कार की कहानी है जिसमे रत्ती एक लम्बी लडाई लडती है हारती है पर हार मानती नहीं। हर बार सिर उठा आगे बढती है। रत्ती ने सिर्फ सिर

---

[1] औरों के बहानें राजेन्द्र यादव पृ स्र 43

उठा अपने लिए लडाई लडी है कडुआहट के जहर से अपने को अपना दुश्मन नही बनाया। दोस्त नही मिला तो भी दोस्ती को दुश्मनी नहीं समझा। कृष्णा जी का चाहे मित्रो मरजानी हो या दिलोदानिश हर जगह उनकी स्त्री निडर और बेबाक पुरूषो की दुनिया मे अपर स्वर गुजा देने वाली हैं।

मैत्रेयी पुष्पा ने तो वीसवी सदी के हिन्दी लेखन मे नारी के अबलत्व और उसकी निरीह रागमयता के अधस्वीकार और वेशर्त समर्पण को नकारते हुए राष्ट्रकवि और कमायनीकार दोनो को ही काफी पीछे छोड दिया है। पिछले दशक से स्त्रियो ने अपनी उपस्थिति के द्वारा एक नई क्रान्ति को जन्म दिया है। राजेन्द्र यादव जी ने उत्तर स्त्री कथा के माध्यम से स्त्री विमर्श पर एक नई शुरूआत की थी जिसके द्वारा स्त्री लेखन मे एक नया सघर्ष आ सका। उनका माना है कि – सच्चाई यह है कि यह सत्ता के केन्द्रो के टूटने या वैकल्पिक केन्द्रो के उभरने का युग है। सुरक्षित और सगठित धार्मिक राजनैतिक केन्द्रो द्वारा हाशियो पर धकेल दिये गये अल्पसख्यक दलित और स्त्रियॉ अलग–अलग केन्द्र बनकर अब इस तरह सामने आ रहे हैं कि अनदेखा करना अब सम्भव ही नहीं रह गया है। इनमे सबसे जटिल और सश्लिष्ट स्थिति स्त्री उभार की है। बाकी सारे उभार लगभग हॉरिजैटल या लम्बाई और चौडाई के अनेक स्तरो पर फैले है लेकिन स्त्री तो ऊपर से नीचे तक सब जगह गुँथी है। बर्टीकल भी है हॉरिजैंटल भी। आज तक तो वह अपनी स्थिति को ही नियति मानकर सुख सतोष खोजती थी बधनो मे बॅधी बधनो की स्वामिनी सी बनकर ही शहीदी गौरव निचोडती रही है। परम प्रबुद्ध भाव से पुरूष वर्चस्व को ही सिर झुकाकर स्वीकार करने वाली सुरभिपाडेय की अहिल्या हो या नासिरा शर्मा की 'शाल्मली' सास्कृतिक तस्वीरी चौखटे मे सजी–सवरी वैठी अपनी श्रेष्ठता मे शिवानी की कुलीन सुन्दरियॉ हो या दी

हुई नैतिक सीमाओ से हर मुठभेड बचाती राजी सेठ की दार्शनिक बारीकियॉ जीती हुई चौकन्नी नायिकाए ।[1]

कृष्णा सोबती हिन्दी की एक ऐसी सशक्त नारीवादी लेखिका है जिन्होने अपने लेखन मे स्त्री की बदलती हुई स्थिति उसकी यातनाओ सघर्षो को स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य से प्रस्तुत किया है। स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य के विना कोई भी लेखिका अथवा लेखक स्त्री ससार की यातनामयी दुनिया उसके दु खो को नही पहचान सकती।

कृष्णा सोबती के लेखक मे स्त्री की एक अलग छवि ही उभर कर सामने आयी है। डार से विछडी, मित्रो मरजानी' ऐलडकी' सूरजमुखी अधेरे के कृतियो मे उनकी नारी वादी चेतना प्रखर रूप मे उभर कर सामने आयी है। पचास साठ, सत्तर के दौर मे जो स्त्री लेखन हुआ उसने स्त्री चेतना के विकास मे कोई विशेष महत्वपूर्ण भूमिका नही निभाई । कृष्णा सोबती के उपन्यासो मे औरत कतरा–कतरा जिदगी जीती पिरती अपनी अस्मिता के लिए सघर्ष करती है। आज तक स्त्री के साथ समाज ने मानवीय ढग से व्यवहार नही किया और न ही उसे पूर्ण मनुष्य के रूप मे स्वीकृति दी है। इसीलिए उसके साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा है। स्त्री के प्रति इसी तरह के हिंसक अमानवीय वर्वरतापूर्ण व्यवहार को कृष्णा सोबती ने अपनी लेखनी मे दिखाया है तथा इसके लिए पितृक सत्ता को दोषी ठहराया है जो उसके प्रति हिसक दृष्टिकोण रखता आया है।

सोबती के स्त्री चरित्र उन तमाम खोखली पितृक लक्ष्मण रेखाओ को तोडे है जिन्होने सदियो से स्त्री को यौनाचरण सामाजिक

---

[1] (औरत उत्तरकथा पृ 71)

आचरण नैतिक आचरण की पितृक मर्यादाओ मे बुरी तरह से जकडा हुआ था। कृष्णा सोबती के स्त्री पात्र क्षत–विक्षत है अधेरे के सूरज मुखी है जो घने अधेरो से लडते–लडते लहुलुहान हो चुकी हैं। सम्बन्धो की लॉक को तोडते–तोडते अपमानित हो रही है लेकिन अपनी अस्मिता की खोज की तीव्र आकाक्षा तो उनमे है ही। वे अपने स्वत्व अस्मिता के प्रश्नो को लेकर जवर्दस्त सघर्ष कर रही है।

कृष्ण सोबती मन्नू भण्डारी गगनगिल मृदुलागर्ग महाश्वेता देवी की रचनाओ मे स्त्री लेखन की एक अलग पहचान सामने आयी है। यह बदलाव इसी दशक मे सर्वाधिक आया है क्योकि इनके लेखन मे स्त्री के अधिकारो के प्रति सजगता आकामकता तीखापन तथा पितृक समाज की कडी आलोचना हुई है। पिछले चार दशको मे स्त्री–लेखन विभिन्न पडओ और परिवर्तनो से गुजरता हुआ यहॉ पहुचा है। नब्बे के दौर का स्त्रीलेखन साठ के दौर के स्त्री लेखन से भिन्न है। आजादी के पहले का स्त्री लेखन सुभद्रा कुमारी चौहान महादेवी वर्मा (श्रृखला की कडिया) आजादी के बाद का लेखन और शताब्दी के इस अतिम दशक के लेखन मे गुणात्मक परिवर्तन साफ लक्षित होता है। हमे महादेवीं वर्मा सुभद्रा कुमारी चौहान कृष्णा सोबती के साहित्य मे स्त्री की एक भिन्न छवि दिखाई देती है। महादेवी वर्मा जी ने चौथे दशक मे श्रृखला की कडिया' भारतीय नारी की समस्या का विवेचन करने वाली पुस्तक लिखकर सिद्ध किया कि वे नारी के सतप्त और अभिसप्त जीवन के प्रति कितनी चिंतित, इमानदार और प्रतिवद्ध थी। उन्होने श्रृखला की कडियॉ लिखकर उन गुलामी की असख्य जजीरो को तोडने का जोखिम उठाया था। उन्होने लिखा है – जो जाग चुका है वह अधिक समय तक सोते हुए का अभिनय नही कर सकता। हमारी जाग्रत बहिनो मे से कुछ ने विद्रोह आरम्भ कर दिया है और कुछ उसके लिए सुयागदूढ रही हैं। जो देश की

भावी नागरिको की विधाता है उनकी प्रथम और परम गुरू है जो जनम भर अपने आप को मिटाकर दूसरो को बनाती रहती है वे केवल तभी तक आदरहीन मातृत्व तथा अधिकार शून्य पत्नीत्व स्वीकार करती रह सकेगीं जब तक उन्हे अपनी शक्तियो का बोध नही होता। बोध होने पर वे वन्दिनी बनाने वाली श्रृखलाओ को स्वय तोड फेकेगीं। [1]

दुनिया के इतिहास मे जहॉ भी कही स्त्री के स्वामित्व के अधिकारो की बात उठी है तो वह एक प्रखर स्त्री चेतना द्वारा ही। उन स्त्रियो मे अपने अधिकारो के प्रति जवर्दस्त चेतना थी। इसीलिए उन्होने वे तमाम बराबरी के अधिकार भिक्षावृति से न पाकर सघर्ष करके अर्जित किये। इसके लिए उन्हे बहुत बडी कीमत भी चुकानी पडी। महादेवी वर्मा ने इस बारे मे ठीक ही लिखा है– हमे न किसी पर जय चाहिये न किसी से पराजय न किसी पर प्रभुता। केवल अपना वह स्थान वे स्वत्त्व चाहिये जिसका पुरूषो के निकट कोई उपयोग नही है परन्तु जिनके विना हम समाज का उपयोगी अग नहीं बन सकेगी। [2]

भारतीय नारी न प्रभुता की इच्छुक है न ही प्रभुत्व की बल्कि वह तो अपना खोया हुआ स्वत्व और अस्तित्व चाहती है। कृष्णा सोबती का लेखन हो अथवा महाश्वेता देवी का मन्नभडारी का लेखन हो अथवा गगन गिल का चित्रामुद्गल का लेखन हो अथवा मेहरून्निसा परवेज का उसमे स्त्री मुक्ति के लिए जो फीडबैक आ रही है वही स्त्री समाज की चेतना का विकास कर सकेगी। स्त्री लेखिकाओ की सबसे बडी भूमिका यह है कि वे शोषित दलित और पीडित स्त्रियो के लिए खिल रही हैं।

---

[1] (श्रृखला की कड़ियॉ महादेवी बर्मा पृ 24)

[2] (वही – पृस 26)

जैसे–जैसे स्त्री लेखन रचनात्मक स्तर पर और आलोचनात्मक स्तर पर स्त्रियो के लिए जबर्दस्त फीडबैक चेतना जगाने का काम करेगा उसी प्रकिया मे स्त्री की दासता से मुक्ति होगी। स्त्री लेखन से ही। स्त्री–विमर्श को एक नई दिशा मिली है। पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित पठिकाओ की प्रतिकियाये इसका साक्षात प्रमाण है कि स्त्रियो की चेतना मे बहुत तेजी से अपने अधिकारो स्वत्व, अस्तित्व अस्मिता के बारे मे जागरूकता वढी है उनकी सोच मे परिवर्तन आने लगा है। अब वे यथास्थिति मे नही जीना चाहती। उनके भीतर प्रश्न जिज्ञासाए शकाए प्रतिकियाये जागने लगी है। इसका श्रेय साहित्य को ही जाता है। पिछले कुछेक वर्षो मे जिस तरह का लेखन स्त्री लेखिकाओ ने किया है वह इतना सशक्त कान्तिधर्मी और चेतना सम्पन्न है कि उससे स्त्री समाज की चेतना और विकसित होगी। वह स्त्री हितो की सुरक्षा करने वाला उन्हे साहस, आत्म विश्वास विवेक विश्व चेतना प्रदान करने वाला सिद्ध होगा।

अध्याय–2

बीसवीं शताब्दी का स्त्रीलेखन

हिन्दी मे नारी लेखन की सीमाओ विशेषताओ को आदि पर विचार करने से पहले साहित्य मे इस तरह के वर्गीकरण की सार्थकता निरर्थकता औचित्य अनौचित्य को लेकर उठे प्रश्नो का सामना करना पडता है। यथा–क्या स्त्रियॉ एक वर्ग के रूप मे एक जैसा या विशेष तरह का लेखन करती हैं ? क्या महिला साहित्यकारो द्वारा सृजित साहित्य को घेराबन्द कर एक वर्गगत या प्रवृत्तिगत पहचान देना उचित है? सीधे–सीधे शब्दो मे क्या साहित्य को लिग, वर्ण जाति आदि आधारो पर वर्गीकृत करना उचित है? और ऐसा किया जा सकता है?

निसदेह इन प्रश्नो का उत्तर नकारात्मक ही होगा। क्योकि सैद्धान्तिक दृष्टि से साहित्य मे इस तरह से वर्गीकरण औचित्यपूर्ण नहीं माना जा सकता है। डा0 निर्मला जैन कहती है– दरअसल वुनियादी सवाल यह है कि किसी भी रचना की पडताल गुमनाम कृति के रूप मे की जानी चाहिये या ट्रेडमार्क वस्तु के रूप मे। वस्तुत रचनाकार की न जाति होती है न धर्म और न वर्ग। [1]

इसी तर्क के आधार पर कई लोगो का मानना है कि नारी लेखन जैसा एक वर्ग घोषित करना कोई सार्थकता नही रखता। कृति से कृतिकार के विचार जगत और अनुभव लोक का साक्षात्कार होता है न कि उसकी जाति लिग आदि का। इसलिए कई महिला रचनाकारो की कृतियॉ यदि गुमनाम रूप मे प्रस्तुत कर दी जाय (जिसमे स्वय लेखिका की ओर से उसके नारी होने का कथन न हो) तो लेखकीय पहचान असम्भव नहीं

तो कठिन अवश्य हो जायेगा। ऐसे मे नारी लेखन का एक वर्ग बनाना कहॉ तक उचित है?

एक दूसरी सोच नारी लेखन की वर्गीय स्वीकृति को सार्थक मानती है। तर्क यह है कि अभिव्यक्ति सत्य सामर्थ और पूर्ण तभी हो सकती है जब अनुभव या अनुभूति निजी हो। तात्पर्य यह है कि निजी अनुभवो का एक ऐसा अछूता दायरा भी है जिस पर केवल एक स्त्री ही पूरी सच्चाई के साथ सृजनात्मक रूप से लिख सकती है। कुछ अनुभव अवश्य ही ऐसे हैं जिन्हे केवल एक भुक्त भोगी ही अभिव्यक्त कर सकता है। एक पुरूष लेखक भले ही अपनी सवेदनात्मक तरलता के चलते नारी की नियति को समझ ले परन्तु न तो वह बलात्कार की कुठा से परिचित हो सकता है और न ही प्रसव पीडा का अनुभव कर सकता है। यद्यपि यह सत्य है कि उसके भी ऐसे बहुत से अनुभव हो सकते हैं जिनसे स्त्री परिचित न हो। परन्तु अनुभव तो दोनो के ही भिन्न है। डा0 प्रभा खेतान मानती हैं कि – वह स्त्री कहॉ किन धरातलो पर कैसे बचित होती है इसको जितने सृजनात्मक रूप से वह सामने रख सकती है पुरूष नहीं रख सकता। दलित के हक मे बोलता हुआ पुरूष भी स्त्री के दलन से न परिचित है न भुक्तभोगी। [1]

और साथ ही– मानवीय पीडा को अभिव्यक्ति करने वाला लेखक स्त्री के प्रति जाने–अनजाने अपने पुरूषोचित दुराग्रहो से मुक्त नही हो पाता। [2]

ऐसे मे नारी के निजी अनुभव क्षेत्र पर पूरी सच्चाई के साथ लिखने का सामर्थ्य केवल एक नारी मे ही हो सकता है। डा0 प्रभा खेतान

---

[1] दो उपनयास ओर नारी का आतमसघष्र उा0 प्रीाा खेतान हस जून 94 पृ 63
[2] (वही पृ स 66)

स्पष्ट रूप से कहती है कि स्त्री लेखन और पुरूष लेखन मे फर्क होता है और रहेगा क्योकि स्त्री और पुरूष आज भी इस पितृ सत्तात्मक समाज मे जैविक आर्थिक सामाजिक धरातल पर भी दोनो भिन्न है। [1]

सच तो यह है कि केवल जैविक आर्थिक और सामाजिक धरातल पर ही नही वरन मानसिक धरातल पर भी दोनो भिन्न होते हैं। विडम्बना यह है कि जहॉ पुरूष की मानसिकता नितान्त मौलिक होती है वही नारी की मानसिकता पुरूष प्रदत्त होती है अर्जित होती है और वह उसे ही प्राकृतिक समझने लगती है। स्त्री और पुरूष के बीच प्राकृतिक अन्तर केवल जैविक है परन्तु पुरूष सत्तात्मक ने दमन के लिए स्त्रियोचित व्यवहार के जो प्रतिमान निर्धारित किये वे लम्बे समय तक अर्जित करते रहने के कारण स्त्री का स्वभाव हो गये। पुरूष सत्ता के द्वारा जो स्थान जो उपाधि स्त्री को दिया जाता है वही उसकी मानसिक बनावट का प्रधान नियामक होता है ऐसे मे नारी की मानसिक पीडा और विवशता को एक नारी लेखिका ही अच्छी तरह खोल सकती है न कि मानसिक उपनिवेश का कर्ता धर्ता पुरूष।

प्रभा खेतान स्त्रीलेखन के विषय मे कहती हैं– औरत अपने लेखन मे जितना कहती है उससे कहीं अधिक वह खामोश रहती है उसका बहुत कुछ अनकहा रह जाता है। स्त्री का यह अनकहा 'जगत' उसकी अज्ञानता का सूचक नही (ऐसा नही कि वहॉ केवल अभिव्यक्ति की समस्या है) बल्कि मुझे तो लगता है कि कुछ क्षेत्रो मे वह जान बूझ कर खामोश रहती है। स्त्री यह भली भॉति जानती है कि पितृसत्ता की

---

[1] (वही पृ स 67)

दमनकारी शक्ति उसे कितनी छूट दे सकती है कितनी नही। सदियो से उत्पीडित होती हुई स्त्री साहित्य जगत मे भी कुठित है।[1]

इस समय तक स्त्रियाँ उपन्यास कहानी निबन्ध तथा अन्य गद्य विधाओ मे भी लिखना शुरू कर चुकी थी।

आज भी महिला लेखन मे स्त्री वर्ग की शिकायतो उसके प्रकट और अप्रकट क्रोध छुपे हुए आक्रोश तथा जीवन के प्रति उसके विशिष्ट दृष्टिकोण को ज्यादा शिद्दत से अभिव्यक्ति किया जाता है। रोजमर्रा की जिदगी महिलाओ की अपनी स्वतन्त्रता निज स्वत्व आदि का सटीक वर्णन जितना महिला लेखन मे होता है। उतना पुरूष लेखन मे नही ।

चित्रा मुद्गल का तो यहॉ तक स्वीकाराना है कि लेखन लेखन होता है नर मादा नही। लेकिन स्त्री लेखन ने निश्चित रूप से कुछ ऐसे तीखे ज्वलत अन्तर्विरोधो विरोधाभासो प्रश्नो को सामने रखा है जिससे स्त्री लेखन की एक अलग पहचान बननी शुरू हुई हैं। कृष्णा सोबती मन्नु भडारी गगनगिल मृदुला गर्ग महाश्वेता देबी की रचनाओ मे स्त्री लेखन की एक अलग पहचान सामने आयी है। यह वदलाव सर्वाधिक इसी दशक मे आया हैं क्योकि इनके लेखन मे स्त्री के अधिकारो के प्रति सजगता अक्रामकता, तीखापन तथा पितृक समाज की कडी आलोचना हुई है।

हमारे यहॉ दो तरह का स्त्री लेखन होता रहा है। पहली तरह के लेखन मे स्त्री की परम्परागत छवि ही उभरी थी। उस लेखन मे पितृसत्तात्मक नियमो की पहचान कमजोर थी और (अर्न्तविरोधो पर चोट

---

[1] औरत अस्तित्व और अस्मिता अरविन्द जैन भूमिका प्रभाखेतान पृ0 11

भी अकामक नही थी। परन्तु पिछले चार दशको से स्त्री लेखन मे विकास एव परिवर्तन हुआ है, गुणात्मक बदलाव आया है उनका लेखन पितृसत्तात्मक नारी विरोधी नियमो और कानूनो की धज्जियॉ उडाने मे कामयाब हुआ है। यही कारण है कि नब्बे के दशक का लेखन अस्सी सत्तर या साठ के दौर से भिन्न लेखन है।

आजादी के पहले के स्त्री लेखन और आजाद के बाद का लेखन और शताब्दी के इस अन्तिम दशक का लेखन किस गुणात्मक चेतना को लाक्षित करता है इसका परिचय हमे ममता कालिया कृष्णा सोबती आदि की स्त्रियो को देखने से पता चलता है। पुरूष लेखक जिस विषय पर कलम चलाते हुए झिझकते है उसका स्त्री लेखिकाए बहुत ही बेबाकी से वर्णन करती है। फिर चाहे— मृदुला गर्ग का चितकोबरा' हो या कृष्णा सोबती का मित्रो मरजानी'।

स्त्री लेखिकाए उन तमाम पितृक असभ्य नियमो—कानूनो से टकरा रही हैं अपने अधिकारो के प्रति पूरी तरह से सजग हुई हैं तथा उनके लेखन मे भी स्त्री चेतना उभर कर सामने आ रही है। प्राय' यह कहा जाता है कि स्त्री लेखन मे स्त्री—पुरूष सम्बन्धी परिवार के विखराव की ही अभिव्यक्ति होती है पर क्या यह सच नही है कि परिवार और स्त्री पुरूष के सम्बन्ध भी हमारे जीवन का कटुयथार्थ है? वह अपने लेखन मे घर परिवार—स्त्री पुरूष सम्बन्धो के पीछे सदियो से काम कर रहीं पितृक अनुशासन तानाशाही को समझ और दिखा रही है। परिवार का स्त्री के लिए एक अपना ही तानाशाही अनुशासन है पितृक व्यवस्था है, नियम और कानून हैं जिसने स्त्रियो को बुरी तरह से जकडा हुआ है।

महादेवीं वर्मा ने श्रृखला की कडिया' लिखकर उन गुलामी की असख्य जजीरो को तोडने का जोखिम उठाया था। स्त्री के अधिकारो के प्रति शिक्षा का प्रसार ही स्त्री मे चेतना ला सकता है।

इतना सब कुछ होते हुए भी उनके लेखन का समाज पर उतना प्रभाव नहीं पडा जितना पडना चाहिये। इसका मुख्य कारण है कि स्त्री का दमन, उत्पीडन करने वाली दमनकारी उत्पीडन करने वाली ताकतो के विरूद्ध स्त्री लेखन ने सघर्ष नही किया तथा एक तरह का असतुलित प्रकार का ही लेखन सामने आता रहा जिसमे या तो दयनीयता थी या असाधारण विद्रोह।

नारी लेखन नारी मन की ही अभिव्यक्ति है। नारी ने नारी की गूगी पीडा को लिखा उजागर किया तथा उसके मौन को शब्द दिये। पुरूष लेखक के लिए रूमानी ख्याल, यादो की मूरत थी, बेशक नारी लेखन ने पुरूष लेखको के हाथ से उसकी सुन्दर बेजान गुडिया छीन ली है और रोती चीखती, विलखती नारी को सामने ला खडा किया है। [1] मेहरून्निसा परवेज ने निश्चित रूप से स्त्री लेखन की जरूरत को स्पष्ट किया है कि नारी के मौन को शब्द नारी ही दे सकती है। उसके दु ख को औरत ही समझ सकती है वह ही पहचान सकती है औरत के शरीर पर अकित घावो के निशानो को। पुरूष के लिए स्त्री अब तक क्या थी? नारी तुम केवल श्रद्धा हो रमणी, प्रेयसी, देह । रूमानी ख्याल यादो की सुन्दरी लेकिन स्त्री ने स्त्री की देह पर अकित घावो के निशानो को दिखाया है कि किस प्रकार वह उत्पीडित व उपेक्षित है।

साहित्य कोई सशस्त्र क्रान्ति नहीं कराता बल्कि मनुष्य को स्वतन्त्र ढग से जीने सघर्ष करने की आगे बढने की समस्या को समझने व उससे निपटने की शक्ति तो देता है एक नई दृष्टि प्रदान करता है।

---

[1] मेहरूनिनसा परवेज साहित्य वार्षिकी पृ 27

2–(क) <u>उपन्यास</u>

कृष्णा सोबती ने हिन्दी मे स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य से स्त्री के पक्ष मे जोरदार ढग से लिखा तथा पितृ सत्तात्मक समाज की तीखी आलोचना की। उनकी रचनाओ यारो के यार' मित्रो मरजानी', सूरजमुखी अधेरे के ऐ लडकी' दिलो दानिश' मे स्त्री की छवि एक नये रूप मे उभर कर आयी। कृष्णा सोबती की स्त्रियॉ पितृसत्तात्मक नैतिकता यौनाचरण का अनुकरण नहीं करती बल्कि अपनी कामेच्छाओ की पूर्ति हेतु उस पितृ सत्तात्मक शासन को तोडती नजर आती है।

मित्रो मरजानी' मे मित्रो के माध्यम से कृष्णा सोबती ने सदियो से उत्पीडित स्त्री के मनोविज्ञान को प्रस्तुत किया है कि वह कैसे नपुसक व्यक्ति के साथ अपनी यौनेच्छाओ को होम करती है। लेकिन क्यो? यही तीखा प्रश्न मित्रो मरजानी' का केन्द्रीय मुद्दा है।

सोबती ने मित्रो मरजानी, हम हशमत' ऐ लडकी, जिदगी नामा' यारो के यार', जैसी रचनाओ से स्त्री लेखन को समृद्ध किया है और इसमे उनका स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य पूरी तरह उभर कर सामने आता है।

मित्रो एक ऐसी स्त्री है जो अपनी यौनेच्छा को प्रकट करती है। वह अपने देहगत समस्याओ पर विचार करती है। जिसे आज तक शायद ही किसी ने किया हो। जब परिवार मे उसके मातृत्व पर प्रश्न उठाया जाता है तो वह खुले शब्दो मे अपने पति की यौन सम्बन्धी कमजोरी की ओर सकेत करती है कि यदि उसमे उर्जा है तो वह सौ कौरवों को जन्म दे सकती है– मेरा बस चले तो गिनकर सौ कौरव जन डालूॅ अम्मॉ अपने लाडले बेटे का भी तो आडतोड जुटाये। निगोडे उस पत्थर के बुत मे भी कोई हरकत तो हो। धनवती के बदन पर कॉटे उग

आये छि छि बहू। ऐसे बोल कुबोल नही उच्चारे जाते। [1] क्या स्त्री की कोई इच्छा नहीं होती? क्या वह अपनी इच्छाओ का गला घोटकर परिवार के ताने सुनती रहे? पहली बार स्त्री खुलकर अपने अनुभवो के साथ सामने आती है।

मित्रो जब अपने पति की कमजोरी को खुले शब्दो मे कहती है तो वह औरत कहती है छि छि स्त्रियॉ कभी ऐसे कुबोल नही उच्चारती। क्यो नही उच्चार सकती? पीडित स्त्री सच बोले तो कुबोल वाक्य यह है पितृक नैतिकता। मित्रो का चरित्र सामतवादी पितृसत्ता के लिए चुनौतीपूर्ण है, वह एक सजग नारी की प्रतीक है जो शोषण अन्याय चुपचाप नहीं सहन करती। स्वय लेखिका सोबती जी का मित्रो की रचना प्रक्रिया के बारे मे कथन है कि– पुरानी नीवो शहतीरो को हिलाने वाला मित्रो का सा जल जला उठ ही आये तो आप ही बन जाती है मित्रो मरजानी की –सी कहानी।" [2]

डार से विछुडी उपन्यासो मे कृष्णा सोबती जी ने एक ऐसी लडकी का मार्मिक चित्रण किया है जो अर्द्ध सामतवादी समाज मे बार–बार बेची जाती है। अन्त मे वही लडकी एक ऐसे परिवार मे बेच दी जाती है। जहॉ वह द्रोपती बना दी गयी है अर्थात उस बृद्ध महिला के चारो पुत्रो की पत्नी।

डार से विछुडी' कृति मे वह स्त्री स्वय को उस भयानक गहरे कुए में लटकती लज्ज के समान पाती है जिसका काम कभीं बाहर आना है तो कभी भीतर नीचे जाना है। अब वह एक नये नाम से सम्बोधित है। उसे एक नया सास्कृतिक अर्थो से भरा हुआ प्रतीकात्मक नाम दे दिया

---

[1] कृष्णा सोबती सोबती एक सोहबत मित्रों मरजानी पृ 65
[2] पृ – 388)

गया है द्रोपती 'द्रोपती' क्यो कि एक नाम ही नही है वह सास्कृतिक वर्चस्ववाद मे एक पितृसत्तात्मक समाज का चिन्ह, प्रतीक भी है।

प्रश्न तो यह है कि वह द्रोपती क्यो बनाई गयी है? द्रोपती बन कर उसे क्या करना है? नामकरण कितना प्रतीकात्मक किया है उस स्त्री ने ? इस नामकरण मे ही लेखिका ने सब कुछ कह दिया है।

कृष्णा सोबती का उपन्यास सूरजमूखी अधेरे के' बचपन से बलात्कार पर हिन्दी मे हीं नही अन्य भारतीय भाषाओ मे भी शायद पहला और अकेला सशक्त उपन्यास है। इस उपन्यास मे बचपन मे ही बलात्कार की शिकार हुई उन बेटियो की सघर्षगाधा है जिन्हे मॉ–वाप, भाई–बहन, दोस्त रिश्तेदार और समाज कहता रहता है कलमुँही तू मर क्यो नहीं गयी? और जिन के लिए सवाल अस्मत का नही अस्मिता का है।

प्रसिद्ध लेखक राजेन्द्र यादव के अनुसार सूरजमुखी अधेरे के मे कृष्णा जी की नारी एक खतरनाक दिशा की ओर मुडती दिखाई देती है। डार से विछडी' मे आदमी ने औरत को चीज की तरह इस्तेमाल किया था यहाँ औरत आदमी को एक दूसरी दृष्टि से इस्तेमाल करती है। [1]

इस उपन्यास की मुख्य पात्र रतिका एक ऐसी लडकी है जिसका जीवन बचपन की कटु स्मृतियो से भरा है। रत्ती के बपचन से बलात्कार की कहानी है जिसमें रत्ती एक लम्बी लडाई लडती है, हारती है पर हार नही मानती । हर बार सिर उठा आगे बढती है। बलात्कार जैसे जघन्य अपराध की शिकार लडकी स्वय धीरे–धीरे समाज मे ही नही अपने परिवार मे भी अछूत होती जाती है, सबकी निगाह मे 'घृणा' की

---

[1] औरों के बहानें राजेन्द्र यादव पृ43

पात्र। लगातार अपमानित होती ऐसी लडकी भला कब तक चुप रह सकती है और ऐसे दमघोटू माहौल मे निश्चित है कि वह या तो आत्म हत्या कर ले या फिर सबका डटकर मुकाबला करे। रत्तीं आत्महत्या नही करती। उसने जी कडाकर ऑसुओ को गले मे नीचे उतार अपने को समझा लिया चुप। एक एक को पकडकर पीट देना। यही वह निर्णय है जो रत्ती को जिदा रखता है और ऐसे ही रत्ती सम्मानपूर्वक जी भी सकती है।

रत्ती ने सिर्फ सिर उठा अपने लिए अपनी लडाई लडी है कडवाहट के जहर से अपने को अपना दुश्मन नहीं बनाया दोस्त नही मिला तो भी दोस्ती को दुश्मनी नही समझा।

सोबती ने मित्रो मरजानी हम हशमत, ऐ लडकी, जिदगीनामा यारो के यार जैसी रचनाओ से स्त्री लेखन को समृद्ध किया है और इसमे उनका स्त्रीत्ववादी परिप्रेक्ष्य पूरीतरह उभर कर सामने आता है–

ममता कालिया का उपन्यास बेघर (1971) प्रासगिक और चर्चा का विषय रहा है। 1971 के बाद राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर नारी मुक्ति आन्दोलन यौन क्रान्ति गर्भपात, के कानूनी अधिकार शिक्षा सामाजिक मूल्यो मे भारी बदलाव स्त्री चेतना का विकास मीडिया मे स्त्रियो की हिस्सेदारी और हस्तक्षेप आर्थिक आत्म निर्भरता टूटते बनते नए नैतिक मानदण्ड और चौतरफा दबाव के कारण महानगरो के उच्च मध्यम और नवधनाढ्य वर्ग मे कही कुछ–कुछ बदलता सा लगता है। लेकिन अभी भी अधिकाश मध्यमवर्गीय परिवारो की मानसिक बनावट और बुनावट मध्ययुगीन परम्परा और सस्कारो की यथास्थिति बनाये हुए है।

"हिन्दी मे 'बेघर' प्रथम उपन्यास है जो कौमार्य के मिथक की पुरुष समाज मे व्याप्त रूढ धारणाओ पर प्रश्न चिन्ह लगा गहरी चोट करता है। यह उपन्यास मध्यम वर्गीय समाज के मानसिक सस्कारो मे शिक्षित दीक्षित पुरूषो की परम्परागत सोच–समझ और स्त्री के प्रति,

भोगवादी सामती तथा अमानवीय व्यवहार के कारण ऐतिहासिक धार्मिक और सामाजिक पृष्ठभूमि में घर से वेघर की जाती रही सजीवनियो की अतहीन व्यथा कथा है जिसे अपने कथा समय मे नायक अनायक या प्रतिनायक परमजीत की– अचानक मौत के बाद घर की सारी सुखद धारणाओ के बाद एक अनाथ बेघर परम्परा का उत्तराधिकारी [1] माना गया है।

ममता कालिया द्वारा रचित दौड अपन्यास अन्तर्विरोधो से भरा है। नयी पीढी और पुरानी पीढी के बीच उभरे अन्तर्विरोधो को बडे सम्बेदनात्मक तरीके से चित्रित किया गया है। नयी पीढी जो डिग्रियॉ लेकर रात–दिन पैसे के पीछे भाग रही है वह अपने ही परिवार के वुजुर्गो से कैसे कटती जा रही है सवादहीनता की स्थिति मे वुजुर्गो की मानसिक हालत क्या हो रही है ममता जी ने बडे ही सहज किन्तु मर्मस्पर्शी ढग से उकेरा है। उपन्यास का भाषा प्रवाह भी अद्भुत है–

ममता कालिया

प्रेम कहानी' नामक उपन्यास मे ममता कालियॉ ने हिन्दुस्तानी चिकित्सालयो मे फैले भ्रष्टाचार अन्याय अनियमितता और क्रूरता की ओर उॅगली उठायी है।

प्रेम कहानी मे मारीशस के निर्माण मे भारतीय किसानो की सघर्ष गाथा की सक्षिप्त झलक देते हुए ममता ने यह सिद्ध करने की कोशिश की है कि जीवन सघर्ष से ही मानवीय मूल्य बनते हैं अपने इस उपन्यास मे उन्होने नयी जन शक्ति के विकास के सडे–गले अवरोधक

---

[1] (कथा समय विजयमोहन सिह (राधाकृष्ण प्रकाशन सस्करण 1993 पृ 105)

तत्वो की न केवल पहचान की है बल्कि उसके विकल्प की सस्कृति को उजागर करने का प्रयास भी किया है। ममता की बोल्ड बेबाक और बेझिझक भाषा न केवल समस्यागत यर्थाथ को प्रस्तुत करती है बल्कि जिदगी की रूढियॉ और चुके हुए आदर्शो पर रोचक शैली मे आक्रमण भी करती हैं।

इस उपन्यास मे मारीशस से आकर दिल्ली मे हाउस जाब करने वाले एक छात्र डाक्टर गिनेस की कहानी है जो प्रवासी हिन्दुस्तानी होने के कारण भारत की धरती तथा यहॉ बसने वाले खासकर गरीब लोगो से दिली तौर पर हमदर्दी रखता है। कथानायिका उसकी सहपाठी है जिसे वह प्यार करता है।

गिनेस केवल अपने व्यक्तिगत जीवन मे ही नही सामाजिक रूढियॉ तोडता है बल्कि अपने पेशेगत जीवन मे भी भारतीय समाज के टूटे और आर्थिक रूप से असहाय लोगो के बराबर उत्कर्ष और सवेदनशील रहता है। इतना ही नहीं अस्पताल मे उच्चपदस्थ डाक्टरो की तानाशाही उनके द्वारा किया जा रहा मरीजो का शोषण मरीजो के प्रति उनकी बेईमान वफादारी, अस्पताल के छोटे कर्मचारियो के प्रति उनका कूर व्यवहार इन सबकी पोल ममता कालिया अपने इस लघु उपन्यास मे खोलती हैं। प्रेम कहानी' की कलात्मकता मे शब्दो का सौन्दर्य और लहजे की रक्षा नही बल्कि उस सत्य की रक्षा के जादूगरी दर्शन होते हैं जो आदमी को कूर दुनियॉ से लडने के लिए सगठित करता है।

<u>जिदगीनामा'</u>

कृष्णा सोबती का यह उपन्यास जिसमे किसानी गद्य है औरतो की घर–दुआर की बाते हैं पुरूषो की खेतीबारी है और हलवाहे की समस्या है। जिदगी नामा' की औरते घरो, खेतो मे दिन–रात काम मे लगी रहने वाली, मर्दो के दुलार प्यार सहित लात–घूँसा सहने वाली हॉड

मॉस की ठोस औरते है जिनका अलग–अलग अपना चेहरा होते हुए भी एक और चेहरा है जो सबमे एक सा झलक मारता है। भले ही वे घर–बार के कामो मे हो या तीज त्योहारो मे वुल्लेशाह के गीत गाती हुई।

अनारों

घर की मजदूरिनो को लेकर लिखा गया मजुल भगत का लघु उपन्यास अनारो' काफी चर्चित रहा है। गॉव और शहरो मे अनारो जैसी दीन–हीन मजदूरिनो की कमी नही है। इनका दुख दर्द इनकी गरीबी इनका हॉड–तोड सघर्ष तथा इनकी बेजोड जिजीविषा इस उपन्यास मे जिस मार्मिकता स्वाभाविकता तथा मान स्वाभिमान के साथ व्यक्त हुई है वह अद्वितीय है।

मजुल भगत ने इस उपन्यास मे भारतीय नारी की मानसिकता का चित्रण किया है कि वह किस प्रकार शोषित होने मे भी सुख महसूस करती है। समान्य भारतीय औरत के दिल की बस एक ही चाह होती है– पति का एकनिष्ठ प्यार और उस पर उसका एकाधिकार बच्चे और उनकी अपनी समाज बिरादरी मे उत्साह सहित रिश्ते–नाते । वह उसके लिए हजार जतन करती है किसी भी मेहनत, मशक्कत की कीमत पर क्योकि यहीं उसकी 'इज्जत' है।

मजुल भगत ने अनारो' के माध्यम से घरेलू मजदूर जीवन स्थितियो की अपनी बारीक पकड से हमे चमत्कृत कर दिया है। परन्तु इसकी सबसे बडी विडम्बना यह है कि अपने परिवारिक अस्तित्व की रक्षा के लिए सघर्ष से पूरे नारी समाज पर पुरूष द्वारा लादी गयी सारी

कुरताओ और शोषण पर हर कही उसने अपनी स्वीकृति और सन्तुष्टि की मुहर लगाई है। [1]

कृष्णा सोबती का समय सरगम उपन्यास स्त्री– विमर्श के साथ–साथ पुरूषसत्ता को भी वेनकाब करता है। कृष्णा जी ने इस उपन्यास का जो विषय लिया है वह कुछ नये अदाज का है।

मन्नू भडारी की बहुत ही महत्वपुर्ण कृति है– आपका बटी इसमे स्त्री पुरूष के सम्बन्धो के मध्य बच्चे की समस्या को उठाया गया है। इस उपन्यास मे आधुनिक जीवन की विसगतियो मे मिस–फिट होने वाली नारी की वास्तविक स्थिति का बडा ही सम्यक चित्रण हुआ है। परम्परागत मूल्यो के प्रति विद्रोह स्वतन्त्र अस्तित्व का बोध अहवादिता अकेलापन आदि मुख्य समस्या है।

शकुन आधुनिक युग की नौकरी पेशा नारी का प्रतिनिधित्व करती है। आज की स्वावलबी नारी पुरूष का आधिपत्य स्वीकार नहीं करती वह स्वतत्र जीवन विताना चाहती है। शकुन ऐसी ही नारी है।

शकुन परम्परागत भारतीय नारी की छवि को तोडती हुई अजय से तलाक लेकर डा० जोशी से दूसरा विवाह करती है यदि पुरूष दूसरी शादी करके नई जिदगी शुरू कर सकता है तो वह भी कर सकती है। वह अपने अस्तित्व के प्रति अत्यन्त सजग है वह अपने को समाप्त नही कर सकी थी।

मन्नु भडारी की यह कृति 1971 मे प्रकाशित हुई थी। आपका बटी' उपन्यास आधुनिकता वोध से जुडी स्त्री पुरूष सम्बन्धो की विवेचना करने वाली व्यक्तिवादी कृति है। स्त्री पुरूष सम्बन्धो के मध्य बच्चे की

---

[1] (उपन्यास की शर्त जगदीश नारायण श्रीवास्तव पृ163)

समस्या को उठाया गया है। उपन्यास के मुख्य पात्र बटी और शकुन है। शकुन अपने पुत्र बटी के साथ अपने पति से अलग रहती है। वह एक कालेज मे प्रिसिपल है। सात वर्ष के उपरान्त शकुन और अजय मे तलाक हो जाता है। बटी बडा ही सवेदनशील वच्चा है। मम्मी पापा के झगडे को लेकर वह तनाग्रस्त रहता है। अजय दूसरी शादी कर लेता है शकुन सोचती है कि जब अजय नई जिदगी शुरू कर सकता है तो वह क्यो नही कर सकती। शकुन के सम्बन्ध डा० जोशी से घनिष्ठ होते हैं लेकिन वटी पर इसका बुरा प्रभाव पडता है वह अपनी माँ से दूर होता जाता है। शकुन डा० जोशी से विवाह कर लेती है। बटी इस सम्बन्ध को स्वीकार नही कर पाता। शकुन भीतर ही भीतर टूट सी जाती है। कलकत्ता पहुँचकर बटी फिर अकेलेपन से घिर जाता है और गुमसुम रहने लगता है। उपन्यास मे घटना बाहुल्य का अभाव है। कथ्य सवेदना और सरचना की दृष्टि से आपका बटी' आठवे दशक की महत्वपूर्ण उपलब्धि है।' [1]

<u>उषा प्रियवदा</u>

<u>पचपन खभे लाल दीवारे</u>

उषा प्रियवदा के इस उपन्यास मे परिस्थितियो से विवश एक नारी की मानसिक वेदना का चित्रण हुआ है। 27 वर्षीय सुषमा दिल्ली के एक महिला विद्यालय मे वार्डन के पद पर कार्यरत है। वह अपने माता–पिता से दूर अकेली छात्रावास के बगले मे रहती है। पिता रिटायर्ड हो चुके है तथा पक्षाघात से पीडित हैं। माता–पिता की सबसे वडी सन्तान होने के कारण परिवार के भरण–पोषण का भार सुषमा के कन्धो पर आ पडा है। माँ को सुषमा की अपेक्षा अन्य भाई–बहनो की चिन्ता है। सुषमा

---

[1] आठवें दशक के हिन्दी उपन्यास डा० राम विनोद सिह पृ0स9)

की छोटी बहन निरूपमा के विवाह के लिए काफी चिन्तित है लेकिन सुषमा के विवाह के वारे मे कभी नही सोचा। सुषमा अपने नीरस जीवन के प्रति माता–पिता को उत्तरदायी पाती है। एक दिन सुषमा की मुलाकात नील नामक युवक से नाटकीय ढग से होती है। धीरे–धीरे सुषमा नील की ओर आकर्षित हो जाती है। नील और सुषमा की दोस्ती को लेकर स्कूल मे तरह तरह की चर्चाए होती हैं। यह सब देखसुन कर सुषमा कुठित हो उठती है। विवश होकर वह नील से न मिलने का निश्चय करती है और उसके विवाह प्रस्ताव को ठुकरा देती है।

उषा प्रियवदा ने अपने उपन्यास अन्तर्वसी मे अप्रवासी भारतीयो का पाश्चात्य सस्कृति और वहाॅ के चका चौध से भरी जिदगी के टकराव का जिक्र किया है।

<u>रूकोगी नही राधिका–</u>

प्रस्तुत उपन्यास आधुनिक चेतना सम्पन्न भारतीय नारी की मनोदशा का चित्रण करता है। आज की नारी जीवन की विसगतियो को उन्होने बडी गहनता से आत्मसात किया है। परिवर्तित सन्दर्भो,नई परिस्थितियो तथा उलझन पूर्ण मन स्थितियो मे नारी के मिसफिट होने की प्रवृत्ति और आधुनिक तथा भारतीय सस्कारो के मध्य सूक्ष्म द्वन्द्व को उन्होने अपने उपन्यास रूकोगी नही राधिका?' मे बडी सफलता से चित्रित किया है।

रूकोगी नही राधिका की केन्द्रीय पात्र राधिका है। राधिका की मॉ बचपन मे मर गयी है। जब उसके पिता 12 वर्ष बाद युवती विद्या से विवाह कर लेते हैं तो राधिका विचलित हो उठती है। पिता से झगडा कर वह विदेशी पत्रकार डैन के साथ अमेरिका चली जाती है। वहाॅ पत्नीत्व के अनुकूल न पाकर डैन राधिका को छोड देता है राधिका अकेले मन की

पीडा से भर जाती है । तीन वर्ष पश्चात फाइन आर्ट की डिग्री लेकर वह भारत वापस आती है। लेकिन जिस अपनत्व की आशा लेकर वह भारत आयी थी वह उसे नही मिलता। अक्षय और मनीष उसकी जिदगी मे आते है। राधिका मनीष को अमेरिका से ही जानती है। अक्षय का ट्रान्सफर कलकत्ता हो जाता है। राधिका अपने भाई के साथ लखनऊ आ जाती है। वैभव के बीच रहते हुए भी वह बेचैन रहती है। विमाता विद्या के आत्महत्या करने पर राधिका और उसका भाई पिता से मिलने जाते है पिता चाहते है राधिका पहले की तरह उनके पास रहे लेकिन राधिका पिता को अकेला छोडकर चली जाती है।

<u>उसके हिस्से की धूप– मृदुला गर्ग–</u>

आधुनिकता के परिप्रेक्ष्य मे स्त्री–पुरुष सम्बन्धो का व्यक्तिवादी दृष्टिकोण से मूल्याकन करने का प्रयास लेखिका ने 'उसके हिस्से की धूप मे किया है। व्यक्ति केन्द्रिय कृति होने के नाते इस उपन्यास मे व्यक्तिवाद का स्वर प्रधान है। उसके हिस्से की धूप' मे एक ऐसी नारी का चित्रण हुआ है, जो नारी स्वातन्त्रय की घोषणा करती हुई आत्महित एव आत्मतुष्टि को प्रधानता देती है।

मनीषा एक सुशिक्षित नारी है। वह शिक्षाका होने के साथ–साथ लेखिका भी है। मनीषा ने अपनी मर्जी से जितेन के साथ अरेज मैरिज किया है। मनीषा स्वय को जितेन के साथ भावात्मक स्तर पर जोड नही पाती है। वह अपने और जितेन के बीच प्रेम की उष्णता का आभाव पाती हैं।

स्कूल के एक जलसे मे मनीषा की भेट मधुकर से होती है। मधुकर और मनीषा एक दूसरे से प्रेम करने लगते है अत किसी की परवाह न करते हुए वह तलाक लेकर मधुकर से विवाह कर लेती हैं। चार

वर्ष बाद वह एक बार फिर अपने पूर्व पति से सम्बन्ध स्थापित करती है। वह जितेन और मधुकर को लेकर अपने अस्तित्व की सार्थकता पर विचार करती हैं। और अन्त मे इसी निष्कर्ष पर पहुँचती है कि अपनी सार्थकता अपने भीतर ही खोजनी होगी।

<u>कठ गुलाब–</u>

बजर परिप्रेक्ष्य और बोझ अनुभव पर आधारित यह कथा कृति साहित्य की नयी समाज–शास्त्रीय व्याख्या है। इस उपन्यास की मूल समस्या श्रम और उत्पादन के स्रोतो से कटे और परोपजीवी लोगो के बजर की कहानी हैं जिनकी जिदगियो को अपनी सार्थकता बोसाई या कठगुलाब के प्रतीको मे ही दिखाई देता है।

<u>चितकोबरा–</u>

यह स्त्री की सेक्सुअलिटी' पर लिखा गया उपन्यास है। इस सन्दर्भ मे स्वय मृदुला गर्ग की टिपण्णी है। यु तो अनेक लेखिकाए स्त्री की सेक्सुअलिटी पर लिख रही हैं और अरसे से लिख रही है। इसी कड़ी मे मैने भी 1979 मे चितकोबरा' लिखा। [1] अनित्य और मै और मै' भी महत्वपुर्ण उपन्यास है।

<u>इदन्नमम् –</u> मैत्रेयी पुष्पा–

स्त्री विमर्श सत्ता और समर्पण पर आधारित यह उपन्यास 1974 मे प्रकाशित हुआ इस उपन्यास का पाठ करते समय 'मैला ऑचल', 'गोदान', रागदरबारी' मुरदाघर' और पतरी परिकथा' जैसे उपन्यासो का

---

[1] राष्ट्रीय सहारा मथन 'देह कभी आजाद नही हो सकती' पृ स 9)

स्मरण हो उठना स्वाभाविक बन जाता है। दरअसल यह उपन्यास स्त्रियो और बचितो की सघर्ष–कथा है। मैत्रेयी पुष्पा इदन्नमम् मे जिस आत्मीय लगाव और सवेदानात्मक गहराई से विध्यपर्वतीय अचल का चित्र प्रस्तुत करती हैं उसमे विश्वसनीयता भी है और कथात्मक सादगी भी।

इदन्नमम् सामती समाज के हिसक अन्तर्विरोधो और दोहरे चरित्र को जानने–समझने के साथ–साथ बदलते परिवेश मे अन्य विकल्पो की अनत सम्भावनाओ की तलाश मे निकली ग्रामीण अनपढ अगूठाटेक औरतो की (आत्म) कथा है। जिसे उनकी अपनी भाषा मे उनके सकल्पो का शपथपत्र भी कहा जा सकता है।

चाक–

चाक के बारे मे यह तथ्य महत्वपूर्ण है कि चाक उपन्यास एक स्त्री की लम्बी लडाई का वृतान्त है इसी अर्थ मे उसके मुक्ति सघर्ष की महागाथा।

चाक का दूसरा नाम है समय चक्र । चाक घूमेगा नही तो कुछ बनायेगा भी नही, वह घूमेगा और मिट्टी को बिगाड कर नया बनाएगा नये रूप मे ढालेगा।

अतरपुर गॉव को उसमें रहने वाली किसान पत्नी सारग को भी ढालकर नया बना रहा है चाक लेकिन बनाना एक यातना से गुजरना भी तो है। न चाहते हुए भी सारग निकल पडी है ढाले जाने की इस यात्रा पर । इसी यात्रा की कहानी है यह उपन्यास ।

झूलानट–

गॉव की साधारण सी औरत है शीलो न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड लगभग अनपढ। न उसने मनोविज्ञान पढा है न समाज शास्त्र जानती है। स्त्री–विमर्श और राजनीति का भी उसे पता नही है। यह उपन्यास एक स्त्री के अपने होने की उसकी जिजीविषा की और कठिन आत्मबल की अभिव्यक्ति करने वाला है। अलमाकबूतरी उनका महत्वपूर्ण उपन्यास है।

छिन्नमस्ता–

प्रभाखेतान– 1993 मे प्रकाशित इस उपन्यास के फ्लैप न2 पर लिखा गया हैं। यह उपन्यास प्रिया नामक एक ऐसी नारी का आख्यान है जो निरन्तर शेषित है समाज की जर्जर मान्यताओ से भी और पुरूष की आदिम भूख से भी टूट जाने की हद तक लेकिन वह टूटती नही बल्कि शोषक शक्तियो के लिए चुनौती बन कर एक नई राह पर चल पडती है और यहॉ से आरम्भ होती हैं उसकी बाहरी और आन्तरिक यात्राये सघर्षो का एक अटूट सिलसिला बीच–बीच मे वह शिथिलता अनुभव जरूर करती है लेकिन उसके सामने एक लक्ष्य है–समाज की जिन बर्बर मर्यादाओं और शक्तियो के सामने एक दिन वह मेमने की तरह मिमियाती रही थी वे देखे कि नारी सदा ही ऐसी निरीह नही रहेगी सक्षेप मे कहे तो प्रिया के माध्यम से लेखिका ने नारी स्वातत्रय की भावना का वास्तविक रूप उद्घाटित किया है

पीली ऑधी–

पीली ऑधी' राजस्थान के मारवाडी सेठ गुरमुख दास रूगटा की हवेली से लेकर कलकत्ता मे 'रूॅगटा हाउस' तक सयुक्त परिवार की तीन पिढियो के बसने, उजडने और टूटने विखरने की विकास कथा है कथा मे सम्बन्धो का सयुक्त परिवार नहीं बल्कि सयुक्त परिवार मे सड़ते

सम्बन्ध है। परम्परा पूँजी और पहचान के आत्म–सघर्ष मे छटपटाती स्त्री शक्ति अपनी मुक्ति के लिए अब एक नई परिभाषा भी गढती रचती है।

प्रभा जी पीली ऑधी रचने मे जिस जाने–पहचाने समाज की गहरी जॉच पडताल सूक्ष्मता से की है उसके किले मे घुस पाना ही कठिन हैं पोस्ट मार्टम तो बहुत दूर की बात है। अब तक इतनी बेवाकी और रचनात्मक ईमानदारी के साथ इतना कुछ नही कहा गया था।

इनके अन्य उपन्यास हैं– आओ पेपे घर चले ताला बन्दी' अग्निसम्भवा' अपने–अपने चेहरे और अल्बेयर कामू'।

कलिकथा' वाया बाईपास–अलका सराबगी

कलिकथा' वाया बाईपास 1925 मे जन्मे किशोर बाबू की कहानी है किस तरह दिल के बाइपास आपरेशन के बाद वे अपने कैशोर्य की दुनिया मे चले जाते है और उन्हीं दिनो की तरह उलझनो से जूझते कलकत्ता शहर मे पैदल चक्कर लगाते सडके मापने लगते है।'[1]

इसमें किशोर बाबू की तीन जिदगियो की कहानी है। पहली देश की आजादी तक यानी किशोर बाबू की बाइस साल की उम्र तक। दूसरी पूरे पचास साल तक की यानी 1997 तक और तीसरी बाईपास के बाद जिसमे तीनो जिन्दगियो मे आवाजाही बनी रहती है। कथा को समय मे कम–निरपेक्ष ढग से आगे–पीछे ले जाने की सुविधा उसके शिल्प के कारण सुलभ है।'[2]

'ऑवा'–चित्रा मुदगल–

---

[1] कलिकथा वाया 'वाईपास फ्लैप पृ 1

[2] कथा–कम अक्टूबर–दिसम्बर 2000 उत्तर शती के उपन्यास महिला कथाकारो के सन्दर्भ में पृ 44

मृणाल पाण्डेय का रास्तो पर भटकते हुए यदि एक ओर सामान्यत पत्रकारिता के सरोकारो की गभीर पडताल मे प्रवृत्त है तो दूसरी ओर वह स्त्री पत्रकार की निरन्तर कठिन होती जाती भूमिकोओ को भी समझने–समझाने की कोशिश करता है। ऐसा भी लग सकता है कि मजरी के रूप मे मृणाल के अपने अनुभव ही उपन्यास का एक बडा हिस्सा बनकर सामने आते हैं। इस अनुभव यात्रा मे व्यवस्था की परते धीरे–धीरे खुलती और उधडती चलती हैं।

इनके अतिरिक्त बीसवी शताब्दी के महिलाओ द्वारा लिखे उपन्यास निम्नलिखित है–

वचन के मोल' प्रिया' जीवन की मुस्कान' पथचारी' 'आवाज', 'सोहनी 'नष्ट नीड (उषा देवीं मिश्रा) अमलतास' नावे' सिढियॉ' परछाइयो के पीछे' क्योकि कर्करेखा' परसो के बाद ये छोटे महायुद्ध उम्र एक गलियारे की' सागर पार ससार' (शशिप्रभा शास्त्री) चौदह फेरे कृष्णकली भैरवी' विषकन्या' रति विलाप', करिये छिमा' मणिक (शिवानी) तत्सम' (राजी सेठ) वेगाने घर में' तिरछी बौछार (मजूला भगत), प्रिया', कोहरे, प्रतिध्यवनियॉ, वह तीसरा' (दीप्ति खण्डेलवाल) रेत की मछली' (कान्ता भारती) 'नरक दर नरक' पतरगपुराण' (मृणाल पाण्डेय), मेरे सन्धिपत्र', सुबह के इन्तजार तक', अग्नि पॉखी (सूर्यबाला) शेष यात्रा'(उषा प्रियवदा)

(ख) कहानी

आदमी और कहानी की दोस्ती शुरू हुए हजारो साल वीत गये और आज भी साहित्य की दूसरी विधाओ की तुलना मे कहानी से ज्यादा सवाद होता है।

चित्रा मुद्गल का आवॉ' बहुचर्चित उपन्यासो मे से एक है। लेखिका का यह एक महत्वाकाक्षी प्रयास है। जो एक ओर यदि नारी–विमर्श की गहरी पडताल के कारण एक उल्लेखनीय उपन्यास है तो दूसरी ओर इसलिए भी महत्वपूर्ण है क्योकि ट्रेड युनियन और मजदूर आन्दोलन से सम्बन्धित किसी महिला उपन्यासकार द्वारा लिखित यह हिन्दी का शायद पहला उपन्यास है।

ऑवा मे अधिकॉश नारी पात्र है जो पहले शोषित होती है, फिर जागरूक होकर शोषण का विरोध करती है लडती है शोषको का मुकाबला करती हैं, लेकिन हार नहीं मानती।

'माई' – गीताजलि श्री–

'माई मध्यम वर्गीय परिवार के माध्यम से सामाजिक आपात काल के प्रमाणिक और अविस्मरणीय अनुभवो का अनुवाद है। अर्थात मध्यमवर्गीय परिवार की कथा के माध्यम से सामाजिक अनुभवो की शाब्दिक अभिव्यक्ति है। माई समय और समाज का ऐसा प्रतिविम्ब है जो एक लम्बी बहस की मॉग करता है।

हमारा शहर उस बरस' भी इनका महत्वपूर्ण उपन्यास है इसमे साम्प्रदायिक समस्या को उठाया गया है।

'परछाई अन्नपूर्णा' क्षमा शर्मा

1996 मे प्रकाशित यह उपन्यास आत्महत्या के विरूद्ध जीवन से एक मुठभेड है। इस लघु कृति मे कामकाजी महिलाओ के सकट, सघर्ष और सामाजिक स्थितियों के सघर्ष मे एक गम्भीर बहस की गयी हैं।

'रास्तो पर भटकते हुए' मृणाल पाण्डेय

मृणाल पाण्डेय का रास्तो पर भटकते हुए यदि एक ओर सामान्यत पत्रकारिता के सरोकारो की गभीर पडताल मे प्रवृत्त है तो दूसरी ओर वह स्त्री पत्रकार की निरन्तर कठिन होती जाती भूमिकोओ को भी समझने–समझाने की कोशिश करता है। ऐसा भी लग सकता है कि मजरी के रूप मे मृणाल के अपने अनुभव ही उपन्यास का एक बडा हिस्सा बनकर सामने आते हैं। इस अनुभव यात्रा मे व्यवस्था की परते धीरे–धीरे खुलती और उधडती चलती हैं।

इनके अतिरिक्त बीसवी शताब्दी के महिलाओ द्वारा लिखे उपन्यास निम्नलिखित है–

वचन के मोल' प्रिया' जीवन की मुस्कान पथचारी' 'आवाज', सोहनी' 'नष्ट नीड' (उषा देवीं मिश्रा) अमलतास' नावें' सिढियॉ' 'परछाइयो के पीछे', क्योकि, कर्करेखा' परसो के बाद' ये छोटे महायुद्ध उम्र एक गलियारे की' सागर पार ससार' (शशिप्रभा शास्त्री) चौदह फेरे, कृष्णकली भैरवी, विषकन्या' रति विलाप', करिये छिमा' मणिक' (शिवानी) तत्सम' (राजी सेठ) 'वेगाने घर मे, तिरछी बौछार' (मजूला भगत), प्रिया' कोहरे', प्रतिध्यवनियॉ, वह तीसरा' (दीप्ति खण्डेलवाल) रेत की मछली (कान्ता भारती) 'नरक दर नरक' पतरगपुराण' (मृणाल पाण्डेय) मेरे सन्धिपत्र' सुबह के इन्तजार तक', अग्नि पॉखी' (सूर्यबाला) शेष यात्रा'(उषा प्रियवदा)

(ख) कहानी

आदमी और कहानी की दोस्ती शुरू हुए हजारो साल वीत गये और आज भी साहित्य की दूसरी विधाओं की तुलना में कहानी से ज्यादा सवाद होता है।

कुछ भी हो कहानी मे आदमी के दुख दर्द और सघर्ष है। तो कही न कही एक ऐसा कथा रस' भी है जो हमे लीन करता है। कहानी के साथ सैकडो साल आगे पीछे की यात्राये तो होती ही है। यह जो कहानी का सपने दिखाना है और हकीकत मे भी जुडे रहना है कहीं न कहीं इसी वजह से आज भी व्यक्ति कहानी से ताकत शक्ति लेता रहा है।

कहानी के क्षेत्र मे तो महिलाओ का दखल शुरू से रहा है यहॉ तक कि हिन्दी की पहली कहानी पर विचार करते समय जब दुलाई वाली' कहानी का उल्लेख होता है तो इसकी लेखिका के रूप मे बग महिला' का नाम आता है। इनका पूरा नाम राजेन्द्र बाला घोस' है। अर्थात हिन्दी साहित्य मे पहली मौलिक कहानी किसे माना जाय? इस बहस में दुलाई वाली कहानी शामिल है और इसकी लेखिका स्त्री है।

शिवानी, ममता कालिया, मृदुलागर्ग नासिरा शर्मा राजी सेठ, उषा प्रियवदा, मन्नू भण्डारी, चन्द्रकान्ता, प्रभाखेतान, मैत्रेयी पुष्पा सूर्यबाला मजुल भगत चित्रामुद्गल सरयू शर्मा उषा महाजन सिम्मी हर्षिता आदि वीसवीं शताब्दी की कुछ महिला कहानीकार हैं।

ममता कालिया की प्रतिदिन' जॉच अभी जारी है' काली साडी', आदि कहानियॉ एक ओर उपभोक्ता सस्कृत के निष्ठुर सत्य को खोलती है तो दूसरी ओर व्यग्य करने से भी नही चुकती है।

राजी सेठ का रचना ससार विस्तृत न होते हुए भी मानवीय सम्बन्धो की सूक्ष्म पडताल करता हुआ दिखता है 'सदियो से' कहानी मे दाम्पत्य की धवलता को प्रमाणित करने मे खट रही स्त्री की पीडा को शब्द दिये हैं। अभी तो तदुपरान्त' और विकल्प' जैसी कहानियो मे मानवीय मूल्यो से जुडे सवालो को खड़ा किया है।

उषा प्रियवदा के कहानी सग्रह है फिर वसत आया' जिन्दगी और गुलाब एक कोई दूसरा' और कितना बडा झूठ। इनकी अधिकाश कहानियॉ रूढियो मृत परम्पराओ तथा प्राचीन जड मान्यताओ पर हल्की–हल्की चोट करती हुई प्रतीत होती हैं। उषा प्रियवदा ने आर्थिक मूल्यो को आधार बनाकर भी कुछ कहानियॉ लिखी है। उनकी पेरम्बुलेटर कहानी इस दृष्टि की परिचायक है। इनकी मछलियॉ' कहानी में नारीमन की दुर्बलताओ का चित्रण मिलता है।

'वापसी कहानी परम्परागत मूल्यो मे पराजय की कहानी है। यह एक व्यक्ति को अपने ही द्वारा निर्मित अपने परिवार से वापसी की कहानी न होकर सारे पुराने मूल्यो से वापसी और एक नई दिशा मे चलने की कहानी है।

पिघलती हुई वर्फ अतीत से छुटकारा न पाने की कहानी है। इस अचेतन की ताडना इतनी तीव्र है कि वह व्यक्ति को सहज जीने भी नहीं देती। जिदगी और गुलाब के फूल' मे बदलते हुए अर्थ सम्बन्धो का यथार्थ चित्रण देखने को मिलता है।

मन्नू भण्डारी की अधिकाश कहानिया नारी जीवन की समस्याओ को आधार बनाकर नारी जीवन की समस्याओ को आधार बनाकर लिखी गयी है। रानी मॉ का चबूतरा' मे मन्नू भडारी ने नारी जीवन की पीडओ और उसकी दयनीय स्थिति पर प्रकाश डाला है।

यह सच है' इस कहानी मे प्रेम त्रिकोण को नई दृष्टि से उठाया गया है। मन्नू भण्डारी की यह सर्वश्रेष्ठ कहानी है। इसमे नारीमन के यर्थाथ को चित्रित किया गया है।

पीढियो का अन्तर भी, आधुनिक जीवन का सच है। मजबूरी' कहानी इसी सत्य को उद्घाटित करती है। मन्नू भण्डारी की अन्य

कहानियॉ है अकेली' इसा के घर इसान' तीसरा आदमी ए खाने आकाश नाइ नई नौकरी शायद' खोटे सिक्के, आदि।

नसिरा शर्मा की कहानियॉ स्त्री जीवन के दोजख का जीवन्त दस्तावेज है। सगसार' इसका उदाहरण है। धार्मिक कटटरता और यथा स्थितिवाद के समर्थक विरोध का आरोप लगाकर मासूम लोगो पर कैसे जुल्म करते है गुचादहन इसका नमूना है। खलिस मे नसिरा शर्मा तसलीमा नसरीन की तरह धार्मिक उन्माद के विरोध मे जेहाद छोडती हैं। इमाम साहब कहानी धार्मिक साम्राज्य और अर्थसत्ता के बीच अकेले पडते एक निरीह आदमी की कहानी है, जिसे नासिरा ही लिख सकती है।

चित्रा मुद्गल द्वारा लिखित कहानियॉ खासकर बम्बई की झोपडपट्टी की औरतो की जिदगी पर लिखी गयी। उनकी कहानियॉ हैरत मे डाल देती है—एक सम्भ्रान्त शहरी औरत कैसे जिदगी की इस तलछट में उतर कर शराब माफिया और अपराध के सख्त जाल के बावजूद छलछला कर बहती इसानियत को देख पाई होगी। यु भी अक्सर उनके यहॉ जिदगी की बडी कठोर शक्ले आती है। चित्रा मुद्गल जिन कहानियो से जानी जाती हैं प्रेतयोनि', फातिमा बाई कोठे पर नही रहती' जगदम्बा बाबू गॉव आ रहे हैं भूख' ठहरा—ठहरा हुआ' और मामला आगे बढेगा अभी जैसी कहानियॉ हैं और यकीनन अच्दी कहानियॉ हैं। इनकी एक छोटी कहानी है लिफाफा' इस कहानी मे एक वेरोजगार युवक की इतनी गहरी पीडा और अवसाद है कि उसका सामना करने मे दिक्कत होती है। इसी प्रकार दरमियान' कहानी एक कामकाजी औरत के छोटे—छोटे दु'खो पर लिखी गयी ऐसी कहानी है जिसकी तरफ लोगो का ध्यान नही गया, लेकिन चित्रा गुद्गल की कथायात्रा मे यह एक अलग तरह की कहानी है।

चन्द्रकान्ता भी एक महत्वपूर्ण कथाकार है जो अपने सहज कथा विधान और लयकारी वाली भाषा के सामर्थ्य से गिरफ्त मे ले लेती है। वह एक शक्तिशाली कथाकार हैं। देशकाल' चुनमुन चिरैया' ओ सोन किसरी' मे उन्होने बहुत ही सशक्त कहानियॉ लिखी है। ओ सोन किसरी मे उन्होंने पत्थरो के राग सिद्धि का कटरा' तैती बाई जैसी कुछ अविस्मरणीय कहानियॉ लिखी। अपने नये सग्रह कालीवर्फ मे कश्मीर के दु ख और त्रासदी पर कहानियॉ लिखी। खासकर शरणागत दीनार्त' और कालीवर्फ' कश्मीर के विस्थापतो की फटती हुई छाती के गवाह और भोक्ता के रूप मे दो जीवत दस्तावेज कही जा सकती है।

मैत्रेयी पुष्पा की कहानियो का आधार फलक ग्रामाचल है। बुदेलखड और व्रज प्रदेश उनकी कहानियो मे शहरी सवेदना के साथ प्रकट हैं। उनकी प्रमुख कहानियॉ चिन्हार' अपना–अपना' आकाश' सहचर' बेटी' 'केतकी', 'रास' और गोमा हॅसती है' आदि हैं। मैत्रेयी का नया सग्रह ललमनियॉ' मे उनकी कहानी का फलक काफी बढा हुआ है। ललमनियॉ की मौहरो खाली अपने दु'ख के लिए रोने वाली स्त्री नही है। उसने अपना जीवन ललमनियॉ' के लिए दे दिया तो वह ललमनिया' उसके जीवन का तेज और एक तरह की ललकार भी बन गयी। जिसके पीछे उसकी दरिद्रता का सारा दु ख ढका रहता है। और उसके नृत्य की वह तेजी तब भी कम नही होती जब नन्ही पिडकुल आकर सूचना देती है– हमारो बाबू दुल्हा बने हैं अम्मा हस मोटर पर बैठे है' । हॉ यहीं ललमनियॉ तब उसके लिए महज एक नाच नही बबडर बन गया और ' सारे शोर से बेखबर मौहरो दर्पण के लश्कारे मार–मार बेसुध हुई नाचती रही नाचती ही रहीं, एक आदिम नाच।

इस तरह मैत्रेयी पुष्पा की फैसला' की इसुरिया' कोई रोने–धोने बाली कमजोर स्त्री नहीं है। अपने ही पति के खिलाफ वोट

देकर न्याय और सच्चाई का पक्ष लेने वाली स्त्री है जो अपने भीतर की ईसुरिया' को नहीं मार सकी। उसके द्वन्द्व का वह क्षण बेहद मार्मिक है जब एक ओर वह पराजय से दु खी होकर एकालाप करते अपने पति को सान्त्वना दे रही है दूसरी ओर पति को लगभग ध्वस्त कर देने वाले अपने निर्णय को मन ही मन सही भी ठहरा रही है। मैत्रेयी पुष्पा की कहानियॅा दिल को छूने वाली है।

चन्द्रकान्ता की ही तरह सरयूशर्मा और दीपक शर्मा की कहानियो की बुनावट सम्भवत महिला कथाकारो के सामान्य ढॅाचे से एकदम अलग है। नक्सलवाद के माहौल पर लिखी गयी उनकी बराबर का खेल' स्तब्ध कर देने वाली कहानी है। पुलिस और क्रान्तिकारियो की मुठभेड को जिस तरह वे कह गयी है, वह हर किसी के बस की बात नही। दीपक शर्मा की रणमार्ग' और कब्जे पर' जैसी कहानियॅा पारिवारिक तकलीफो के कुछ अलग अदाज की कहानियॅा हैं। ऐसी कहानियॅा कम देखने को मिलती हैं । ऐसे ही सरयू शर्मा भी बहुत कम लिखकर चर्चित हुई एक समर्थ लेखिका हैं जिनकी कितनी बार' कहानी फौजी उत्पीडन के नीचे कुचले जाते आदिवासियो के दु ख और रोष को बडे शक्तिशाली ढग से कहती हैं। दीपक शर्मा की राजनीतिक कहानी बराबर का खेल' की तरह यह भी एक ऐसे अनुभव की कहानी है जिसे स्त्री कथाकारो ने बहुत कम लिखा। दो सहेलियो सॅागी और जोदी मे से जोदी को फौजियो के ट्रक से कुचल दिये जाने और सॅागी के हाथ मे स्टेनगन आ जाने से, जिससे एक हवलदार के भीतर उसने पूरी की पूरी गोलियॅा उतार दी थी-- फौजी उत्पीडन का पूरा चेहरा सामने आ जाता है। सरयू शर्मा ने बीच मे पडी चाबी' और लाख पन्नो की किताब' जैसी कहानियॅा बडे सहज अदाज से लिखी।

मजुल भगत उपन्यास के साथ–साथ कहानी की रचनाकार भी मानी जाती है। इनका दूत' सग्रह की शीर्षक कहानी दूत' दाम्पत्य सम्बन्धो की जटिल और त्रासद कथा है जो अन्त आते–आते अकस्मिक रूप से एक नया स्तब्धकारी रूप ले लेती है। उनकी गुलदुपहरिया भी अच्छी रचना है एक सीधी–सादी स्त्री की मर्म कथा।

इसी तरह रमा सिह भी अच्छी सशक्त कहानीकार हैं। इनकी बालूघाट की मछली' एक बडी सशक्त कथा है' जिसमे मछली और औरत का दर्द करीब–करीब एक हो गया है।

मणिका मोहनी अकविता काल मे अपनी तेज मारक–मारक कविताओ से चर्चित हुई थी। उन्होने काफी बोल्ड कहानियॉ लिखी जो कई बार दैहिक स्तरो पर ही फिसलती रह जाती है, पर बीच–बीच मे उनकी ऐसी कहानियॉ भी लगातार देखने को मिली है जिनमे स्त्री के नाते पूरे सम्मान के साथ जीना चाहती है और पुरूष द्वारा दिये गये तीखे दश और अपमान से लहुलुहान होकर भी उनकी जिजीविषा हार नहीं मानती । उनकी कई कहानियॉ उस दकियानूसी धारणा पर भी लगातार चौट करती है जिसमे स्त्री की देह को मदिर' बना कर उसे पूजा तो जाता है पर उसे इसान का जीवन नहीं मिल पाता।

मणिका मोहनी का कहानी सग्रह जग का मुजरा' मे दिलेर' एक शक्तिशाली कहानी है, जिसमे फिल्मो की दुनियॉ मे एक स्त्री के दैहिक उपयोग की नगी सच्चाई अनावृत हुई है। साहेब उर्फ नृप' जैसी कुछ कहानियो मे उनका व्यगात्मक तेवर भी खुब चमका है, जिसमे खेल–खेल मे वह बड़ी दूर तक मार कर करती हैं।

शिवानी बीसवीं शताब्दी की सफल उपन्यासकार और कहानीकार हैं। 'लाल हवेली' करिये छिमा', चोल गाडी', मधुयामिनी', 'सती' आदि शिवानी की प्रसिद्ध कहानियॉ हैं। शिवानी ने अपनी कहानियो

मे अधिकतर पर्वतीय समाज से सम्बन्धित समस्याओ प्रथाओ और मनोभावो का चित्रण किया है। भावनात्मक सामाजिक और आर्थिक समस्याओ से जूझती टकराती नारी को बहुत ही रोचक और मार्मिक ढग से अपनी कहानियो मे प्रस्तुत किया है।

सूर्यबाला की कहानियाँ आकर्षित करने वाली हैं इसके बावजूद वह ज्यादा चर्चित कहानीकार नही हैं। उनकी कहानी मटियाला तीतर गॉव से शहर आकर शहरातीं फदे मे फॅस गये एक कामकाजी लडके की कहानी है जो सारे दिखावटी प्यार के बाबजूद भीतर–भीतर रोता रहता है और एक दिन इस सारे छद्‌म को तोडकर भाग निकलता है। गॉव के उस अक्कड मटियाले तीतर की डब–डब करती ऑखे जल्दी कोई भूल नही सकता।

मृदुला गर्ग नारीवादी लेखन की एक महत्वपूर्ण लेखिका है। उनकी कहानी बडा सेब काला सेब बहुत सशक्त कहानी है। इसमे एक स्त्री की जो आत्मविश्वास पूर्ण मुक्त छवि है वह मन पर छप सी जाती है। बहुत ही सहज कहानी है यह। इनकी समागम' बहुत प्रभावशाली न होती हुई भी स्त्री की एक अलग मनस्थिति की कहानी होने के नाते याद रह जाती है।

शशिप्रभा शास्त्री भी बरिष्ठ कथाकार है, और निरन्तर लिखती आ रही है लेखिकाओ मे से हैं। उन्होने एक टुकडा शन्तिरथ' रास्ता' तलघट मे', दुश्मनी की बाते' जैसी अच्छी कहानियॉ लिखी है तो कुछ सामान्य ढग की भी कहानीयॉ हैं।

अर्चनावर्मा की जोकर' अतिरजित नाटकीयता के बाबजूद अच्छी कहानी है। पर इधर उन्होने कहानियॉ कुछ कम कर दिया है।

महिला कहानीकारो मे उषा महाजन कमल कुमार, सारा राय नीलम कुलश्रेष्ठ निर्मला भुराडिया, को भी अच्छी कहानियॉ हैं। कुसुम

असल भी अच्छी कहानीकार है। उनकी इकतीस कहानियो का बडा सग्रह छपा है जिसमे 'एक नई मीरा' जैसी कहानियॉ पढने को मिलीं। एक दौर मे कहानी लेखन मे काफी सक्रिय रही सिम्मी हर्षिता भी है।उनका एक कहानी सग्रह कुछ समय पहले छपा था। अन्य कहानीकारो मे मृणाल पाण्डेय नीलम कुलश्रेष्ठ गीताजलिश्री आदि हैं। जिनके सहयोग से हमारे साहित्य का कहानी लेखन समृद्ध हुआ है।

खडित ताम्रपत्र' रागिनी मालवीय का कहानी सग्रह है। सग्रह की पहली कहानी जहर' जो सग्रह की श्रेष्ठ कहानी भी है गरीबी से जूझते दो मासूम बच्चो की सघर्ष कथा है उनकी कोठरी अराजक तत्वो द्वारा जो स्कूल से जुडे है छीन ली गयी है। नीम के नीचे झोपडी बनाकर रहने वाले बच्चे प्रकृति की मार तो सहते ही है माता–पिता की ओर से भी कुठित और तनाव ग्रस्त हैं। भयावह' कहानी मे लेखिका की प्रमुख चिन्ता साम्प्रदायिक उन्माद के बाद उपजे परिणामो को लेकर है। सग्रह की अन्य कहानियॉ सगीता उर्फ फतिमा, बडी बी', खडित ताम्रपत्र', फार्मूला', देश' सजीवना' मलिका' और चोर' आदि कहानियॉ हैं।

सभी कहानियॉ प्रभावशाली और मर्मस्पर्शी है। इनकी कहानी के पात्र निम्न वर्ग से सम्बन्ध रखते है।

(ग)–कविता

हिन्दी कविता के ससार मे स्त्रियो की भागीदारी कम पुरानी नही है। मध्काल मे जब पुरूष प्रधान समाज अपने उत्कर्ष के चरम पर था तो स्त्रियॉ मात्र नायिकाए थी। वे आलम्बन हो सकती थी पर हिन्दी साहित्य के इतिहास मे ये विचित्र आश्चर्य है। सम्पूर्ण भक्तिकाल एव रीतिकाल मे कवियित्रियो की उपस्थिति लगभग शून्य,उत्तर मध्यकाल मे मीरा अपवाद है उन्होने भक्त समकालीन कवियो के समान कृष्ण भक्ति के पदो की रचना की जिसका स्मरण स्त्रीलेखन की पृष्ठभूमि के रूप मे किया जा सकता है। आधुनिक काल मे जब आधुनिकता के प्रकाश मे स्त्री पुरूष की समानता का विचार सरचित हुआ तो सुभद्राकुमारी चौहान जैसी कवित्रियॉ प्रकाश में आयी जो उस दौर के जागरणपरक कवियो की समानता मे अपने काव्य ससार का सफल प्रस्तुतिकरण किया। 'त्रिधारा' और मुकुल' इनके काव्य सग्रह है। प्रथम वर्ग मे इन्होने राष्ट्र प्रेम की कविताए लिखी। इनकी झॉसी की रानी' कविता तो समान्य जनता मे बहुत प्रसिद्ध हुयी। दूसरे वर्ग के अन्तर्गत वे कविताए आती हैं जिनकी प्रेरणा इन्हे पारिवारिक जीवन से प्राप्त हुई है। ऐसी कविताओ मे कुछ तो पति प्रेम की भावना से अनुप्राणित है और कुछ मे सन्तान के प्रति वात्सल्य की सहज एव मार्मिक अभिव्यक्ति मिलती है। [1]

बहुत पीछे न लौटकर छायाबाद के प्रतिष्ठापरक तीन महाकवियो के साथ महादेवी वर्मा का ध्यान आता है जो आज तक की हिन्दी कवियित्रियो की प्रेरणास्रोत कही जा सकती है। गद्य और पद्य दोनो मे ही महादेवी का स्थान किसी भी पुरूष, बडे कवि के समकक्ष ही माना

---

[1] हिन्दी साहित्य का इतिहास डा० नगेन्द्र पृ स 539

जाता है। आगे चलकर शकुन्तमाथुर चन्द्रकिरण सौनरिक्शा सुनीता जैन गगन गिल कत्यायनी जैसी कवित्रियॉ नई कविता के क्षेत्र मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही है पर ये एक विचित्र औरे सुखद सयोग है कि नयी कविता और समकालीन कविता के क्षेत्रो मे अपनी रचनात्मकता प्रकाशित करने वाली सभी कवियत्रियॉ स्त्री लेखन तथा कथित प्रभाव से मुक्त और सहज कवि धर्म की राह पर चलने वाली कवियत्रियॉ है।

बस्तुत' जिस प्रकार स्त्रीवादी लेखन का प्रभाव कथा साहित्य पर है उस तरह का प्रभाव कवियत्रियो पर नही उसका एक कारण यह भी है कि कविता की विधा समाज के विवरण–विर्तक और विश्लेषण को महत्व न देकर उसके अनुभव की सुगन्ध या दुर्गन्ध को सश्लिष्ट रूप से व्यक्त करती हैं, यही कारण है कि शकुन्तमाथुर को तारसप्तक मे अज्ञेय जी ने स्थान इसलिए नही दिया है कि वे स्त्री की पीडा को व्यक्त करते हुए नारी आन्दोलन की तथा–कथित क्रान्ति को सवेदनशील भाषा प्रदान करे बल्कि इसलिए दिया है कि उनमे प्रयोग धर्मिता, आधुनिकता बोध, बौद्धिकता और परम्परा के बरक्स उसी प्रकार प्रश्न खडा करने की प्रवृत्ति है जैसे दूसरे प्रयोगशील और नयी कविता के कवि हैं।

आगे चलकर कविता की दुनियॉ मे जो ख्यात–अल्पख्यात कवियित्रियॉ पत्र–पत्रिकाओ मे प्रकाशित होती रहीं हैं उनका भी स्त्री लेखन से कोई अतिरिक्त सम्बन्ध नही है। प्रेम सामाजिक विडम्बना आर्थिक बदहाली, प्रकृति चित्रण और देह तथा मन के यथार्थ का अकन करती हुई ये कवियत्रियॉ सामान्य प्रवृत्ति की कविताए लिखती रही, न कि स्त्री–विमर्श के तर्कशास्त्र के फ्रेमवर्क मे अपना शाब्दिक विनियोग कथा लेखिकाओ की भॉति करती रही हैं।यह और बात है कि स्त्रियो के काव्य ससार मे घरेलूपन की गध ज्यादा है, कुछ आस्था भी शेष है और प्राकृतिक भावुकता का का भी सन्निवेश ज्यादा पाया जाता है। तीज,

त्योहार ब्रत–उपवास सास–ननद भौजाई बेटा बेटियो की चिन्ता पति की कमाई और पुरूषो की वेवफाई उनके काव्य ससार मे कुछ ज्यादा है। कुछ छिपाने की भी प्रवृत्ति है वफा तथा रोमास भी अपेक्षाकृत ज्यादा है। इधर की कवियित्रियॉ सुनीता जैन के लगभग आधा दर्जन काव्य सग्रह प्रकाशित हए हैं उनमे ये प्रवृत्ति देखी जा सकती है। कृष्णा विष्ट की कविताओ मे भी पर्वतीय कवि मगलेश डवराल की बौद्धिक और विदास मानसिकता के समान उनके भी काव्य मे एक तरह का सलोनापन मिलता है। ये विचित्र बात है कि कविता के क्षेत्र मे कवियित्रयॉ समकालीन रचना ससार मे प्रथम पक्ति मे नही आ पायी है। न तो किसी को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला न किसी के रचना को केन्द्र बनाकर आलोचको ने आलोचना का मुहाबरा बनाया। एक जमाने मे अकविता और विटनिक कविता के तर्ज पर लिखने वाली मोना गुलाटी भी कोई काव्यात्मक शिखर प्रतिमान प्रस्तुत करने मे असमर्थ रहीं। हलॉकिइनके सग्रह सोच को दृष्टि दो' मे काफी अच्छी कविताए हैं– एक परिचय शीषर्क से लिखी गयी छोटी कविता द्रष्टव्य है–

> लौटने पर तुम नही
> पाओगे
> कोई पद चिन्ह कोई
> दूह
> या बालू का घर।
> मेरा परिचय
> पींछे नहीं छूटता

साथ चलता है। [1]

इसमे सग्रहीत बडी कविताए भी बहुत अच्छी बन पडी है। शिनाढत–2 मत पुछो नाम' 'शब्द दो मुझे' कविता के भीतर की कविता' आदि कविताए किसी पुरूष कवि से कम अच्छी या सशक्त नही हैं।

इसी प्रकार गगन गिल की कविताओ मे बौद्धिक सम्पदा तो है इतिहास बोध और सस्कृति बोध भी है पर जीवन की अथाह गहराई और प्रभावित करने वाला स्पन्दन वहॉ भी तिरोहित है। ऐसा प्रतीत होता है कि हिन्दी की कविता विधा मे स्त्री लेखन उतना समर्थ नही है जितना समर्थ कथा लेखन मे है।

लेकिन हमारे पितृसत्तात्मक समाज ने नारियो के लेखन को नारीवादी' लेखन नाम दिया है। नारीवादी' लेखन वह लेखन है जो नारी की कलम से नारीं की समस्याओ को ही मद्देनजर रखकर रचा जा रहा है और नारी के दृष्टिकोण से ही उसका मूल्याकन किया जा रहा है। इन नारियो का तर्क है कि अब तक साहित्य के मूल्यो एव सिद्धान्तो का निर्माण पुरूष करते आये हैं लेकिन उन्हीं मानदण्डो पर नारी लेखन' का मूल्याकन सम्भव नही उसके लिए नये पैमाने नये आधार चाहिए। यही कारण है कि अन्तिम दशक तक आते–आते ये कवियत्रियॉ भी स्त्री के केन्द्र बनाकर कविता लिखने लगीं।

हिन्दी में स्नेहमयी चौधरी, सुमन राजे, चम्पावैद मणिका मोहनी, उषाकाता, शशिशर्मा, मधुशर्मा इन्दू जैन कुसुम असल मधु बी जोशी गगन गिल कात्यायनी आदि कवियित्रियो ने नारी की त्रासदी पूर्ण स्थिति को उसकी छटपटाहट को उसके आक्रोश को उसके साहस को

[1] सोच को दृष्टि दो पृ 14

उसकी मुक्ति की चाह को कविताबद्ध किया है। यह उस नारी की दर्द भरी पुकार थी जिसके अस्तित्व को सदियो से नकारा गया है उसे ककड पत्थर की तरह ठोकरो से उडाया गया है। स्नेहमयी चौधरी की कविताओ मे नारी की यातनाए तह–दर–तह विछी हुई है उसकी सिसकियाँ दबी हुई है। उनकी दर्द भरी आँखो ने भी नारी की बेबसी मजबूरी लाचारी देखा है और अपने कविता मे चित्रित किया है

हिन्दुस्तान मे जो औरते
वर्फ नही बन जाती है
वे जलायी जाती है।
या स्वय जल जाती है

होता यह आया है कि अब तक नारी ने पुरूष के सारे अत्याचारो और जुल्मो को खामोशी से सहा है लेकिन अब वह उनके खिलाफ आवाज उठा रही है। इन्दूजोशी भी दमघोटू वातावरण पर तीखा कटाक्ष करती है

राख दिखने वाली मेरी खामोशी मे
क्या तुम नही देख पाते छिपी आग को ?

कत्यायनी ने भी अपने काव्य लेखन मे पुरूषो के अत्याचारों का पर्दाफाश किया है नारी युँ तो हमेशा से ही पुरूष समाज द्वारा रौंदी गयी है

'मत जाओ गार्गी प्रश्नो की सीमा से आगे
तुम्हारा सर लुढकेगा जमीन पर
मत करो याज्ञवल्क्यो की अवमानना
मत उठाओ प्रश्न ब्रह्म सत्ता पर '

यह तो सच है कि स्त्रियो ने जब भी पुरूष सत्ता को चुनौती दी है चाहे साहित्य मे हो या निजी जीवन मे उसने अपनी सुरक्षा के लिए उसके डैने तोड डाले है। पुरूष समाज ने नारी को इतना कुचल दिया है कि उसकी चतना उसकी भावनाए लाशो मे बदल गयी है। आधुनिक कवियित्रयो ने अपनी कविता इसी विषय पर लिखी हैं नारी के मार्मिक प्रसगो पर अपनी लेखनी चलाई जैसा कि सुमन राजे लिखती हैं–

मेरी चेतना
जैसे तेल का गीलापन
जिसमे लाशे भरकर रख दी जाती है।

महादेवी वर्मा आदि कवियित्रयो ने जहॉ मैं नीर भरी दु ख की बदली' लिखा है वही आज की कवियित्रयॉ अपने दु खद पूर्ण अतीत से त्रस्त हैं और आक्रोशित भी। यही आक्रोश वह अपने काव्य मे व्यक्त कर रही है इनका कहना है औरत मॉ है बच्चे को जन्म देती है। पुरूष पैदा करने वाले को भगवान कहता है फिर नारी को बराबर का दर्जा देने से क्यो इकार करता है

मै नारी हूँ जिसे
सदियो
वक्त के पॉव तले
रौंदा गया है।

चम्पा बैद ने भी उस समाज के खिलाफ आक्रोश व्यक्त किया है, जहॉ बचपन से ही लडकी को डरा धमकाकर रखा जाता है उसके ऊपर अनेक बदिशे होती है, प्रतिबधो के घेरें मे कैद वह मुक्त होकर स्वतत्र होकर सॉस भी नही ले सकती। दबी सिकुडी, धमकाई गयी बच्ची के व्यक्तित्व का स्वाभाविक विकास भी अवरूद्ध हो जाता है–

"मॉ कहती थी

लडकी हो

नगी मत नहाओ

लडको के सग मत बोलो

उनकी ऑखो मे देखोगी तो

गर्भ ठहर जायेगा।

ऐसी कविताए लिखने वाली कवियित्रयो ने बडे तल्ख अनुभव बटोरे हैं इसलिए उनमे बगावत की जो ऑच है वह बडी सच्ची और खरी है। दूसरो के चूल्हो पर आग तापने से उनके खून मे रवानी पैदा नही हुई है यह उनका भोगा हुआ, जिया हुआ यथार्थ है जिसको इन्होने अपने लेखन मे व्यक्त किया है।

उषाकान्त की कविताओ मे भी विवशता और वेवसी का तीव्र अहसास है–

अलगनी पर

बरसो से टगी

कोई इच्छा हूँ मै ।

अर्चना चतुर्वेदी ने भी समस्त स्त्रियो की पीडा को मुखर किया है। उन्हे भी जीवन जीवन नही लगता है। क्योकि जिस तरह का जीवन वह जीना चाहती है यथार्थ उसके विपरीत है, इसलिए एक कसक है उनके भीतर उसी को उन्होने व्यक्त किया है–

काट रही हूँ जिन्दगी

सूली पर टगे–टगे

निरुद्देश्य अहर्निश।'

अनुभूति चतुर्वेदी ने भी अपनी कविताओ मे उसी कडवी सच्चाई को व्यक्त किया है तथा उनका एहसास है कि समाज के थोथे सम्बन्धो को जीते–जीते उनकी पहचान ही चुक गयी है

अब कुछ नही रखा
सम्बन्धो म
एक थोथी बुनियाद पर जीते हुए।
खो गया अपना अस्तित्व '

राजी सेठ का भी काव्य ससार सीमित है उन्होने स्त्री विषयक उपन्यास कहानी के अतिरिक्त कुछ कविताए भी लिखी । उनकी कविताओ मे भी स्त्री की पीडा ही व्यक्त हुई है। कुछ कविताए उनकी कुछ अलग है

तुमने क्यो पूछा, कि
मैं जो बुद्धिजीवी हूँ
मैं
जो घायल होता हूँ
उडती चिडिया के पख के आहत होने से
रोता हूँ बहिसाब
चीजो के अपदस्थ मर होने से।

इन प्रबुद्ध नारियो ने महसूस किया कि वैधानिक अधिकार प्राप्त होने के बावजूद वह वास्तविक रूप से स्वतन्त्र नहीं हैं। वे एक ऐसी व्यवस्था मे कैद है, जहाँ दीवारे नहीं, जजीरे नही हैं फिर भी वे बदी हैं तब उन्होने पुरूष सत्ता को ललकारा है। साठ से अस्सी के दशक की कवियित्रियों का रचना ससार सिर्फ पारिवारिक था, सिर्फ तीज त्योहार और ब्रत, उपवास तक ही सीमित था वही उसके बाद की कवियित्रियॉ अपने काव्य ससार मे नारी के अधिकारो के लिए पुरूष वर्चस्व के खिलाफ लडना शुरू कर दिया। बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक आते आते यह विमर्श अपने चरम शिखर है। वे कवियित्रियॉ पुरूष सत्ता के खिलाफ खडी हुई हैं और प्रश्न उठाया है कि वे दोयम दर्जे की नागरिक क्यो है।[7]

(घ)–आलोचना एव अन्य गद्य विधाए

लेखिकाओ ने साहित्य मे पिछले दशको मे एक बडा हस्तक्षेप किया है। महादेवी वर्मा एक ऐसी स्त्री लेखिका हैं जिनका लेखन बहुमुखी है। उन्होने काव्य क्षेत्र मे जितनी अपनी पहचान बनायी है उतनी गद्य की विधाओ मे भी। अतीत के चलचित्र', स्मृति की रेखाये, पथ के साथी, मेरा परिवार' नामक सस्मरण रेखा चित्र सग्रहो ने उन्हे सशक्त सस्मरण लेखिका के रूप मे प्रतिष्ठित किया है।

अतीत के चलचित्र' नाम सग्रह मे रामा, अलोपी घीसा तथा बदलू नायक प्रधान और बिन्दी, विट्टो सबिया, रधिया तथा लक्ष्मीं नायिका प्रधान चित्र हैं। इसमे उनके भोले और सीधे–साधे जीवन का परिचय है। स्मृति की रेखाये' मे भक्तिन चीनी फेरीवाला दो कुली मुन्नी की माई ठकुरीबाबा धोविन और गुगियॉ के रेखाचित्र है तो पथ के साथी' मे मैथिलीशरण गुप्त सुभद्राकुमारी चौहान निराला प्रसाद पन्त आदि पर आधारित सस्मरण हैं। मेरा परिवार मे नीलकठ, गिल्लू , सोना, दुर्मख, गौरा निक्की रोजी और रानी शीर्षिको से कमश मोर गिलहरी हिरनी खरगोश गाय कुत्ता नेवला, कुतियॉ घोडी आदि पर आधारित रेखा चित्र है। मेरा परिवार नामक सग्रह लेखिका का पशु पक्षियो से आत्मीयता और प्रेम दर्शाता है।

'श्रृखला की कडिया' महादेवी वर्मा के निबन्धो का महत्वपूर्ण सग्रह है। इस सग्रह के निबन्धो मे उन्होने भारतीय नारी की विषम परिस्थितियों को अनेक दृष्टि विन्दुओ से देखने का प्रयास किया है। इस

बारे मे उनका स्वय का कथन है– अन्याय के प्रति म स्वभाव से असहिष्णु हूँ अत इन निबन्धों मे उग्रता की गन्ध स्वाभाविक है। परन्तु ध्वस के लिए ध्वस के सिद्धान्त मे मेरा कभी विश्वास नहीं रहा। मै तो सृजन के उन प्रकाश तत्वो के प्रति ष्ठिावान हूँ, जिनकी उपस्थित मे विकृति अधकार के समान विलीन हो जाती है। जब तक प्रकृति व्यक्त नही होती तब तक विकृति के ध्वस मे अपनी शक्तियो को उलझा देना वैसा ही है जैसा प्रकाश के आभाव मे अधेरे को दूध से धोकर सफेद करने का प्रयास। वास्तव मे अधकार स्वय कुछ न होकर आलेक का आभाव है इसी से तो छोटा सा छोटा दीपक भी उसकी सघनता नष्ट कर देने मे समर्थ है। [1]

स्त्री– देह की राजनीति से देश की राजनीति तक– यह मृणाल पाण्डेय का निबन्ध सग्रह है। इसका प्रकाशन 1987 मे हुआ था। इसमे सकलित निबन्धो मे स्त्री और सर्वहारा वर्ग की समस्याओ को उठाया गया है। स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीति तक की भूमिका मे लिखा है दुनियॉ भर मे सर्वहारा वर्ग का अधिकाश हिस्सा स्त्रियो और बच्चो का ही है अत उसकी परख किये विना विश्व में राजनैतिक, आर्थिक या समाजशास्त्रीय किसी भी क्षेत्र के असतुलन और विषमताओ का व्यौरा नहीं बिठाया जा सकेगा। देहनीति से राजनीति तक उलझे नारी मुक्ति के प्रश्नो की पडताल मे मृणल पाण्डेय इतिहास, धर्म दर्शन साहित्य समाज शिक्षा, अर्थ व्यवस्था कानून और राजनीति को राष्ट्रीय और अर्न्तराष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य मे देखती समझती और परखती है। स्त्री–पुरूष के बीच विषम असतुलन की ऐतिहासिक, सामाजिक, धार्मिक आर्थिक और पारम्परिक

---

[1] श्रृखला की कडियॉं – महादेवी वर्मा अपनी बात' शीर्षक से

पृष्ठभूमि और उनके प्रकाश मे समसामयिक समस्याओ और सत्ता नीतियो का तार्किक विवेचन करते ये लेख औरतो के आक्रोश और विरोध को एक इमानदार अभिव्यक्ति ही नही सामाजिक सोच की एक नई दिशा भी देते है। भूमिका मे आगे उल्लेख है– स्त्रियो की स्थिति की मार्फत हमे पितृ सत्तात्मक परम्परा जातिवाद धर्मांधता उपनिवेशवाद और वर्ग भेद– सबकी अधिक गहरी और ऐतिहासिक समझ मिलने लगती है। नारीवाद मे विश्व भर मे विश्व भर के प्रबुद्ध और सवेदनशील चितको की रूचि की यही वजह है। स्वय मृणल पाण्डेय को पूरे बीस बरस लगे हैं सदियो से चले आ रहे, पीढी दर पीढी लागू एक पेचीदा सत्ता तत्र की सही ताकत समझने मे और यह स्वीकार (सिर्फ) इतिहास समाजशास्त्र या अर्थशास्त्र के आकडो से नही आया।[1]

<u>परिधि पर स्त्री'</u>

यह मृणाल पाण्डेय के विचारोत्तेजक निबन्धो का दूसरा सग्रह है। यह 1996 मे प्रकाशित हुआ है। इसमे लेखिका ने शोषित प्रताडित ग्रामीण शहरी कामकाजी महिलाओ के दु ख–दर्द को प्रभावशाली ढग से रेखाकित किया है, साथ ही उनके कल्याण के लिए मानवीय दृष्टि विकसित करने की भी कोशिश की है। पुस्तक मे नारीवाद से जुडी विभिन्न समस्यायो पर बेवाकी से प्रकाश डाला गया है।

स्त्री सम्बन्धी सामाजिक आर्थिक और राजनैतिक पेचीदा प्रश्नो पर हिन्दी में लिखकर सचमुच मृणालपाण्डेय महत्वपूर्ण ही नहीं , उल्लेखनीय और सार्थक जमीन को जीवन दे रही हैं। सभी भारतीय स्त्रियो के लिए एक बेहतर विकल्प' की तलाश और सघर्ष मे 'निर्ममता से

---

[1] (स्त्री–देह की राजनीति से देश की राजनीतितक तक पृ. 49)

हर झूठ का पर्दाफाश' कर लेखिका ने परिधि पर गुम सुम खडी स्त्री को जो सवाल शब्द और समझ के शास्त्र और शस्त्र दिये हैं वे निसदेह उनके चेतन अवचेतन को कही गहरे तक आन्दोलित करेगे।

दुर्गद्वार पर दस्तक–

दुर्ग द्वार पर दस्तक (1997) कात्यायनी के लेखो– टिप्पणियो का सकलन हैं। नारी मुक्ति के सामाजिक–आर्थिक–सास्कृतिक पक्षो पर केन्द्रित लेखो के पीछे एक सुनिश्चित इतिहास बोध भी है और सवेदनशील कवि का अहसास भी। इन लेखो मे कात्यायनी की चिन्ता का मूल विषय है पूजी पर पुत्राधिकार के कारण साम्रज्यवादी पूँजीपत्रो द्वारा स्त्री की श्रम और शरीर का शोषण–उत्पीडन। पूजीवादी परिवार समाज मे गुलामी के विरोध और नारी मुक्ति आन्दोलन को दबाने भटकाने के लिए पितृसत्ता द्वारा लागू दमनकारी खतरनाक योजनाओ–परियोजनाओ पर गभीर विचार–विमर्श करती यह पुस्तक सिर्फ एक दस्तक नहीं बल्कि चुपचाप बारूदी सुरग विछाना है।

अपने लेखो मे इन्होने कहा है कि विवाह–सस्था मे पिता–पुत्र और पति का वर्चस्व ही स्त्री को घरेलू गुलाम' बनाता है। आज दुनिया की 98 % सम्पत्ति पर पुरूषो का अधिकार हैं, क्योकि वह पीढी दर पीढी उसे उत्तराधिकार मे मिलती रही है और आगे भी मिलती रहेगी। जब तक पूँजी पर पुत्राधिकार बना रहेगा तब तक स्त्रियो की मुक्ति अस्मिता, स्वतन्त्र पहचान समानाधिकार, समान न्याय मानवीय गरिमा और सम्मान का सपना साकार होना असभव है।

'यौन उत्पीडन और जनवाद' पर वहस मे कुछ मुद्दे उठाकर कात्यायनी राजेन्द्र यादव के लेख और शिवमूर्ति की कहानी तिरिया चरित्र' पर प्रभावशाली ढग से प्रतिबाद करती हैं। कात्यायनी नारी मुक्ति

आन्दोलन को लकर अत्यन्त महत्वपूर्ण सवाल उठाती है। इस दिशा मे दोनो लम्बे लेख इस पुस्तक की सार सामग्री है।

<u>स्त्री का समय–क्षमा शर्मा</u>

स्त्री का समय(1998) अपने समय का स्त्री का घोषणा प्त्र है जिसमे कहा गया है कि– यह मेरा शरीर है इसके बारे मे फैसला करने का अधिकार भी मुझे ही होना चाहिए। मगर पितृसत्ता समझाती है'– महिलाये घरो मे जाकर (रहकर) बच्चे पाले क्योकि मातृत्व से बडा कोई सुख नही है।

'स्त्री का समय मे समय–समय पर लिखे गये अठ्ठाइस लेख और टिप्पणियॉ शामिल है। यह सब कभी बहुत आकोश तो कभी बहुत दु:ख मे लिखा गया है। स्त्रियो के सवालो से जूझते ये लेख बेहद जटिल और गभीर मुद्दो पर विचारणीय बहस है। तीसरी दुनिया के महानगरीय मध्यवर्ग की एक सुशिक्षित स्वावलबी और चेतना सम्पन्न स्त्री द्वारा बदलती स्त्री छवि को देखने की यह कोशिश अनेक अन्तर्विरोधो और विसगतियो के बावजूद एक महत्वपूर्ण दृष्टिकोण है।

प्रथमलेख वह लिखेगी अपना इतिहास' मे क्षमा शर्मा ने लिखा है– आजादी के बाद हम देखते है कि सरकारो की तरफ से स्त्री और पुरूष के लैंगिक भेद को स्वीकार नही किया गया । हमारे नेताओ ने सम्पत्ति मे स्त्रियो के कानूनी अधिकार की बात पर स्त्रियो का कितना भला किया, यह बात हम उन विधवाओ की दशा देखकर जान सकते हैं जिन्हे या तो सती कर दिया जाता था या भिक्षुणी बना दिया जाता था या जीवन भर वे पूरे परिवार की गुलामी करने और उफ न करने के लिए मजबूर होती थी।

इसी प्रकार डबल मोर्चा' मे कहा गया है कि अभी हाल तक के सम्पति–कानून गवाह है जहॉ विधवा स्त्री को अपने बेटो की इजाजत के बिना अपने पति की सम्पत्ति तक को बेचने का अधिकार नही था।

एक अन्य लेख बढरही है बाल–वेश्यावृत्ति' मे क्षमा शर्मा का कहना है कि भारत मे वेश्यावृत्ति सम्बन्धी कानून बेहद ढीले हैं। लोग इन्हे आसानी से तोड देते हैं उन्हे सजा भी नही मिलती। नारी तुम केवल श्रद्धा नही हो' मे लिखा है मुझे हमेशा ऐसी स्त्रियॉ फैसीनेट करती रही है जिन्होने किसी न किसी रूप मे समाज को चुनौती दी है। जो डरती नही जो दबती नही, जो हर कानून हर मार्यादा को चुनौती दे सकती है।

यह पुस्तक अपने समय की स्त्री के सवालो से उलझती है। सोचती है। समझने और समझाने की पूरी ईमानदारी से कोशिश करती है। स्त्री का समय वर्तमान मे तर्क–विर्तक का समय है और बीच–बहस मे सार्थक हस्तक्षेप भी।

नारी प्रश्न–

सरला माहेश्वरी की पुस्तक नारी प्रश्न' के बाबन पृष्ठो के लम्बे लेख मे परिवार निजी सम्पत्ति और राज्य की उत्पत्ति से लेकर उत्तर आधुनिकतावादी विचारको तक की अत्यन्त आलोचनात्मक दृष्टि से जॉच परख की गयी है। इसमे चवालिस पृष्ठो का अग्रेजी परिशिष्ट है। शेष पृष्ठो मे अधिकाश लेखिका द्वारा राज्यसभा मे दिये वक्तव्य या भाषणो पर आधारित लेख है। नारी जीवन से जुडे कई जरूरी सामाजिक प्रश्नो पर ही नही आर्थिक वैधानिक और राजनैतिक प्रश्नो पर भी गम्भीरता से रोशनी डालने का प्रयास किया गया है।

सक्षेप मे नारी प्रश्न यह है कि क्या सचमुच नारीवाद की सम्पूर्ण विचारधारा मे किसी ऐसे नयी सोच का दिग्दर्शन होता है जो

दुनिया की रूपान्तरण की एक समग्र दृष्टि प्रदान करता है। या यह केवल ऐसा विचार मात्र है जिसमे सामाजिक यथार्थ की अनेक विसगतियो के सकेत तो मिलते है लेकिन उनसे उबरने का कोई नया रास्ता दिखाने की बजाय अपनी अतिम परिणति मे स्वय उन्ही विसगतियो का एक हिस्सा बन कर रह जाता है। (नारी प्रश्न–13) इस प्रश्न के उत्तर की तलाश मे लेखिका नारीवादी विमर्श और मार्क्सवादी सिद्धान्तो पर सूक्ष्मता से सोच विचार करती है और अन्तत इस निष्कर्ष पर पहुँचती है कि मार्क्सवादी और समाजवादी नारीबाद भी इस बात को मानने लगा है कि नारियो के उत्पीडन की समस्या का कोई सरल समाधान मुमकिन नही।

कुल मिलाकर नारी प्रश्न नई चुनौतियॉ समझने और रेखाकित करने का निष्ठापूर्ण प्रयास है।

चुकते नहीं सवाल' (निबन्ध सग्रह) मृदुला गर्ग

मृदुला गर्ग की यह किताब चुकते नही सवाल' लम्बे अन्तराल मे बहुत से मुद्दो पर लिखे निबन्धो का सग्रह है। पुस्तक के आवरण से लगता है कि इसमे मृदुलागर्ग ने नारीवाद' की नई परिभाषा गढी है जिसके जरिये वह प्रखर महिला प्रवक्ता' के रूप मे सामने आती है।

कुछ समय से दलितो और स्त्रियो की तरफ से साहित्य मे जो सवाल खडे किये गये है उन्होने साहित्य मे काफी वेचैनी पैदा की है और इस घटना मे मृदुला गर्ग की भूमिका भी उल्लेखनीय है। इस किताब मे कई तरह से लेखिका ने इस बात की पडताल की है कि स्त्री को केन्द्र मे रखकर लिखे गये अधिकाश पुरुषो के लेखन मे कहॉ चूक होती है आरै स्त्री को केन्द्र मे रखकर लेखिकाओ ने जो रचनाए लिखीं उनमे कौन से जरूरी सवाल उठाये गये है। अपने इस विमर्श मे मृदुला गर्ग ने सभी लेखको को खारिज नहीं किया है बल्कि स्त्री–विमर्श के सही कोण की

पहचान भी उनमे की है। लेखिका ने राजेन्द्र यादव योगेश गुप्त और व्रजेश्वर मदान की कहानियो का उल्लेख इस नजर से किया है कि उनके लेखन मे स्त्री–विमर्श के सकारात्मक पहलू देखे जा सकते है। मृदुला जी ने यह बात बडे विश्वसनीय तर्को के साथ कही है कि लेखक अक्सर जब स्त्री के पक्ष मे होते हैं तो केवल उनके यौन सम्बन्धो तक ही सीमित रहते हैं। स्त्री जीवन के आर्थिक–सामाजिक दबाव और तनाव अक्सर उनसे गायब रहते है। जो सवाल लेखिका ने उठाया है उसके परिप्रेक्ष्य मे समूची मानव सभ्यता को लेकर एक विराट इतिहास दर्शन के सूत्र खोजे जा सकते है।

चुकते नहीं सवाल' मे उनकी मुख्य चिन्ता साहित्य मे स्त्री को लेकर होने वाले अन्याय जिनमे लेखको की पक्षधरता और अक्सर स्त्री को सही न समझने की शिकायत आदि को लेकर है। इसमे लगभग आधी जगह उनकी यही चिन्ता व्यक्त हुई है। साहित्य मे स्त्री छवि' शीर्षक निबन्ध मे महाभारत के कुछ प्रसगो का जिक किया है। उन्हे द्रौपती की चुनौती पसद आयी है। एक बहुत महत्वपूर्ण वक्तव्य मृदुला गर्ग ने अपने लेख कहानी मे नारी चेतना' शीर्षक मे दिया है इस दशक मे ऐसी बहुत सी कहानियॉ लिखी गयी है जिनमे स्त्री पात्राओ ने वे मुखौटे उतार फेके है जो मर्द मानसिकता ने उन्हे पहनाए थे। यह एक कारगर और सार्थक भाष्य है जो निश्चय ही आलोचना का एक पुख्ता आधार बनता है।

ममता कालिया द्वारा लिखा गया सस्मरण' मैनपुरी का शहजादा' इसमे उन्होने अपने और कथाकार कमलेश्वर के सम्बन्धो का विवरण बम्बई की भेट–मुलाकातो का वर्णन है।

इसी प्रकार शिवानी द्वारा रचित सस्मरणात्मक रेखाचित्र दरीचा' है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बीसवी शताब्दी के शुरू मे जहॉ स्त्रियो ने साहित्य रचना मे रूचि नही दिखाई वही बाद के दशको म अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करायी। और साहित्य मे उपन्यास कहानी कविता के साथ–साथ निबन्ध लेख और सस्मरण रेखाचित्र आदि विधाओ मे भी महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि बीसवी शताब्दी के शुरू मे जहॉ स्त्रियो ने साहित्य रचना मे रूचि नही दिखाई वही बाद के दशको मे अपनी महत्वपूर्ण उपस्थिति दर्ज करायी। और साहित्य मे उपन्यास कहानी कविता के साथ–साथ निबन्ध लेख और सस्मरण रेखाचित्र आदि विधाओ मे भी महत्वपूर्ण भागीदारी निभाई।

अध्याय–3

बीसवीं शताब्दी का अन्तिम दशक और हिन्दी उपन्यास

हमारे ज्यादातर साहित्य के कथानक और मूल्य पश्चिम और वहाँ की जीवन पद्धति से आयात किये जा रहे हैं। जिस हद तक हमारा जीवन पश्चिम की जीवन पद्धति से प्रभावित हुआ है उससे कही उधिक उसका असर हमारे साहित्य पर है। कुछ ऐसा दबदबा है पश्चिम के विचार और पद्धति का कि प्रेमचद जैसे किसी खालिस और दृष्टि सम्पन्न भारतीय उपन्यासकार की कल्पना आज नही की जा सकती।

नये उपन्यास अपने छोटे–छोटे कलेवरो मे ही सही जीवन के यथार्थ का गतिशील और जीवत आइना होते है। इनमे सामाजिक जीवन का यथार्थ सघर्ष और अत्याचार और अनाचार सन्निहित है।

शताब्दी के अन्तिम दो दशको के उपन्यास आम आदमी के साथ यात्रा करते हुए चलते है। और हमारी रोजमर्रा की जिदगी की इतनी छोटी–छोटी चीजो मे दिलचस्पी लेते है कि हैरानी होती है कि अच्छा यह सब भी उपन्यास हो सकता है यह सब भी उपन्यास मे आ सकता है। सच तो यह है कि आदमी का छोटे से छोटा सुख–दु ख इन उपन्यासो मे बगैर किसी झिझक के चला आता है और कई बार तो मुख्य कथानक के बजाए ये छोटे–छोटे प्रसग कही ज्यादा गहरी अर्थ व्यजनाए कर जाते है। 'कलिकथा' के किशोर बाबू को याद करे तो बाईपास सर्जरी के बाद वे एक बदले हुए आदमी हैं। सारी दुनिया की नजरो मे पागल या 'अधपागल'। यहाँ तक कि परिवार के लोग भी उन्हे इन्ही हैरत और दु:खभरी नजरो से देखते हैं। यह अलग बात है कि किशोर बाबू को लगता है पागल तो वो तब थे, जब वे एक सफल आदमी समझे जाते थे। अब तो वो रास्ते पर आ गये है। और फिर हम देखते हैं कि, रास्ते पर आने के बाद किशोर बाबू अजीबो गरीब बात सोचते हैं, जिससे उनकी

पत्नी तक को शार्मिदगी उठानी पडती है। मसलन यह कि बाजार मे औरतो के लिए मूत्रालय क्यो नही है? वे जरूरत पडने पर कहाँ जाती होगी? एक छोटा सा सवाल बहुत लोगो को याद रह गया होगा क्योकि यह एक छोटा सा सवाल स्त्री के बारे मे हमारे समाज की लापरवाह सोच की पोल खोल देता है। ऐसे ही निन्यानवे की बहुत सी बाते राजनीतिक अवसद वाद है दगा है आपातकाल की यन्त्रणा है ये सब याद आते है तो इसके साथ ही एक छोटी बच्ची भी नही भूलती जो कच्चे ऑगन मे एक तरफ हाथ मे मिट्टी लिए खडी है– अम्मा हाथ धुला दो' निन्यानबे' कस्बाई जीवन का उपन्यास है। उस पर कस्वाई जीवन का होना जितना इस और इस जैसे कुछ प्रसगो से खुलता है उतना बडे–बडे राजनीतिक घटनाक्रमो से नही। इसीक्रम मे शशिप्रभा शास्त्री के उपन्यास हरदिन के इतिहास' की याद आती है। यह एक मामूली सा उपन्यास है जो खास प्रभावित नहीं करता पर इसमे एक निहायत गँवई स्त्री है जो पहली बार फ्रिज को देखती है तो हैरानी से उसका मुँख खुला कर खुला रह जाता है वह बार–बार उसे ठडी आलमारी कहकर वुलाती है। उपन्यास मे कोई प्रमुख पात्र नही है परन्तु वह अपने उपन्यास सवाद से इस कदर उभरती है कि सामने एक त्रित्र सा बन जाता है।

अन्तिम दशक मे जहाँ ऐसे साधारण विषयो पर उपन्यास लिखे गये वहीं गभीर विषयो पर भी बहुत सारे उपन्यास लिखे गये। उत्तर आधुनिकता' कथा–साहित्य मे इसी दशक की देन है। अन्तिम दशक के उपन्यास उत्तर आधुनिकता से भी प्रमाणित हैं जिस समाज मे अन्याय अत्याचार अनाचार और शोषण का बोल–बाला हो वहाँ हत्या एक बहुत ही मामूली समस्या है। इन भयावह स्थितियो मे नये उपन्यास ने जन–मानस को पुनर्जागरण की ओर ले जाने का जो वीड़ा उठाया है वह काफी चुनौतीपूर्ण है। आज के हिन्दी उपन्यास का मकसद केवल मनोरजन

हर्गिज नही है बल्कि लोगो को जागरूक बनाने के लिए उनके सोये हुए मन को जगाने की कोशिश है।

इस दशक के उपन्यासो ने जिस पक्ष को लेकर अपनी आवाज बुलन्द की है उस पर ध्यान देने का मतलब है अनेक ऐसी नगी सच्चाइयो के मुखातिब होना जिनसे देश के कर्णधार जनसामान्य लोगो का सामना नही होने देना चाहते। देश के जिस स्वरूप को व्याज्य सा मान लिया गया है और उसमे परिवर्तन की पूरी सुगबुहाहट देखने को मिल रही है यह उपलब्धि है इस दशक के उपन्यासो की। अब यह सवाल यदि पुन बुद्धिजीवी वर्ग मे उभर रहा है बाद–विवाद का विषय बन रहा है तो यही आज के उपन्यासकरो का श्रेय है। यह स्थिति पैदा करने के लिए हिन्दी उपन्यास को जैनेन्द्र इलाचन्द्र जोशी अज्ञेय मोहनराकेश तथा भगवतीचरण वर्मा जैसो के बीच से मुलायम और लिसलिसे कॉटो भरा सफर तय करना पडा है।

व्यवस्था से जुडे श्रीकान्त वर्मा जैसे अनेक लेखको ने कई बार अनेक मत्रो से यह सवाल किया है कि नये लेखको के द्वारा उठाये गये ये मुद्दे क्या अतिशयोक्तिपूर्ण है? क्या इससे देश की छवि बाहर के देशो मे सचमुच नही विगड रही है? प्रगति के नाम पर आजादी के बाद क्या कुछ भी नही किया गया और क्या यह निराशाबाद हमे हमेशा हमेशा के लिए अपने मे दफन नही कर लेगा।

प्रेमचन्द के बाद यदि मुर्दा बनी स्थिति को गहराई से देखने और समझकर कथाबद्व करने की रचनात्मक कोशिश की जा रही है तो यह लगता है कि इन छोटे–बडे नये उपन्यासो के माध्यम से यहॉ इन उपन्यासकारो द्वारा इस समस्याओ का कोई फार्मूलाबद्व समाधान खोज निकालने का प्रश्न नही है। क्योकि इसे तो पूरे समाज को खोजना है।

निश्चय ही अन्तिम दशक के उपन्यासो के माध्यम से विचार की प्रकिया मे तेजी आयी है और यह प्रकिया उपन्यास रचना जैसे लोकप्रिय माध्यम से बन रही है जो सबसे महत्वपूर्ण बात है।

आज सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न सामाजिक प्रासगिकता का भी है। जो रचनात्मक कर्म उपन्यास जैसी विधा को स्वतन्त्रता के तत्काल बाद करना चाहिये था वह कर्म आज के लेखक को अब शुरू करना पड रहा है।

जिदगी के बदलाव के आधार पर साहित्य और कला मे बदलाव एक शाश्वत सत्य है। अत हिन्दी उपन्यास मे मनोरजन पूर्ण किस्सागोई और मानवताबाद' के नाम पर जो मनोवैज्ञानिक शार्टकट और छिछली एकरूपता सी बन गयी थी। वह अब अपने बदलाव के दौर मे है।

इन उपन्यासो से यह पता चलता है कि भारतीय जन–समाज कैसे–कैसे त्रासदी से गुजर रहा है। वैसे भी जब समाज अडियल रूढिवादी व्यवस्थाओ के बोझ को सहते–सहते पराकाष्ठा पर पहुँच जाता है तब एक विस्फोट की सीमा आ जाती है। मनुष्य मे आदिकाल से ही समूह बनाकर सतुलित ढग से जीने का आग्रह रहा है जीवन का अधिक से अधिक सुगम और मोहक बनाकर जीने का आग्रह।

इन उपन्यासो की कहानी मे कई–कई अर्थ छिपे पडे है। इनके छोटे–छोटे प्रसगो से जीवन के कई बडे सच प्रकट हो जाते है और यहीं है अन्तिम दशक के उपन्यास की सबसे बडी पहचान।

यो मोटे तौर से शताब्दी के अन्त के उपन्यास अपनी असाधारणता' खो चुके उपन्यास है लिहाजा वे साधारण मे ही असाधारणत्व की प्रतिष्ठा करते हैं। एक तरह से ये नायकत्व के विसर्जन के उपन्यास हैं। और नायक कोई है तो समय, जो अजीब त्रासद स्थितियॉ और विडम्बनाए रचता है और अक्सर हमे वहॉ उपस्थित कर

देता है जहाँ हम होना नहीं चाहते और जहाँ हमे होना चाहिये वहाँ हम लापता' होते हैं। लिहाजा दास्तान–ए–लापता' जैसे आम आदमी के साधारणत्व से जुडे उपन्यास आज की औपन्यासिक पृष्ठभूमि के केन्द्र मे नजर आते है। हालत यह है कि गिरिराज किशोर महात्मा गाँधी पर उपन्यास लिखते हैं पहला गिरमिटिया' तो उन्हे उनके महात्मा पक्ष' के बजाय उनके मोहनदास–पक्ष' पर लिखना ही ज्यादा बाजिब लगा। क्योकि महात्मा गाँधी तो बडे आदमी है कछ–कुछ मानवेतर लेकन मोहनदास हमारी आपकी तरह एक मामूली आदमी है जिसके भीतर छोटी–छोटी कमजोरियाँ और खासियते छोटे–बडे सुख–दु ख और राग–विराग हैं। हो सकता है महात्मा गाँधी पर लिखा उपन्यास हमे उतना अपना न लगता जिसमे मोहनदास के महात्मा गाँधी बनने से पहले की कथा है।

जनता यानी लोग। लोग यानी जनता। सदी के अत के साहित्य खासकर उपन्यासो के ये बीज शब्द' हैं। दिलचस्प बात यह है कि जैसे–जैसे उत्तर आधुनिकता के नाम पर तमाम अयातित और दिखावटी चीजो को रोकने की बहुत बडबोली और हास्यास्पद कोशिशे और उद्घोषणाये की जाती रही है वैसे–वैसे लोग यानी जनता– ये शब्द कही ज्यादा प्रासगिक और अर्थपूर्ण और जादुई बनकर सामने आते जा रहे है और यह जितना उपन्यास मे हुआ है उतना साहित्य की शायद ही किसी और विधा मे।

हलाँकि जनता का रूप– यहाँ साफ कर देना जरूरी है– छठे–सावते दशक की झूठी क्रान्ति–मुद्राओं' वाली किताबी जनता जैसा नही, जब कि हर हाथ मे जबरन बन्दूक और लाल किताब थमा दी जाती थी और असलियत कुछ और थी। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, जनता माने लोग हमारे दूर–पास के लोग। दु:ख, गुस्से, मुश्किलो और शिकायतो अपनी बड़ी–बड़ी सम्भावनाओ लेकिन अपनी बहुत–छोटी छोटी

कमजोरियॉ और लाचारी वाले लोग। यही लोग वेशक और बेझिझक हमारे उपन्यासो के सबसे बडे और उज्जवल खजाने हैं और यही वे लोग है जो दुर्बलताओ से भरे हैं मगर अजेय है और लेखन को अर्थ देते है।

इस दौर की एक खासियत यह भी है कि कथाभूमि मे तमाम ऊँची–ऊँची गद्दियो और मठो की परम प्रतिष्ठा के बावजूद कम से कम उपन्यास लेखन की दृष्टि से यह एक मुक्त और पूर्वाग्रह–रहित दौर है और सबको अपनी–अपनी तरह से अपनी अपनी–अपनी चाल और लयकारी के साथ यहॉ प्रवेश की छूट है। यो बिल्ले और लेबल भी है और वे वही काम करते है जिस काम के लिए उन्हे बनाया जाता है मगर उन्हे परे झटकने वाले हाथ भी हैं ताकि एक उपन्यास की पहचान एक उपन्यास–यानी एक कृति के रूप मे पहले हो–बाकी चीजे बाद मे।

पहला गिरमिटिया' की ही तरह कमलाकात त्रिपाठी का पाही घर हो या बेदखल' या कामतानाथ का कालकथा' ये जनता की ऑख से देखे दिखाये गये स्वाधीनता सघर्ष या जनक्रान्ति की कथाए है। बेदखल के किसान आन्दोलन के महानायक बाबा रामचन्द्र तो पूरी तरह जनता के आदमी हैं। रवीन्द्र वर्मा का निन्यानबे' बुन्देलखड की जनता की कथा है–आजादी के बाद वहॉ की जनता वहॉ के लोगो मे आए बदलाव की कथा। ज्ञान चतुर्वेदी के बारामासी' मे यही कथा कुछ अलग से व्यगात्मक टोन मे आती है जिसमे कहीं कही विद्रूपता के बावजूद कस्बाई जीवन रस का कुछ अलग सा आस्वाद है। एक लीक पर कवायद करते–करते तमाम–तमाम ढर्रे के उपन्यासो की बीच निन्यानबे' और बारामासी' जैसे उपन्यास अपनी जीवन्तता और भाषा की ताजगी के कारण अलग से पहचान मे आ जाने वाले उपन्यास हैं। द्रोण वीर कोहली के वाहकैम्प' मे देश विभाजन की पीडा है और खासकर पजाब का दर्द, जो अपनी पूरी प्रमाणिकता के साथ उभरा है। खास बात यह है यह एक किशोर की

ऑख से देखी गयी विभाजन की पीडा है। जो उसके मन पर आडी–तिरछी रेखाओ की शक्ल मे अकित होती है। शताब्दी के अन्त मे एक ऐसा उपन्यास आया जिसने विभाजन के दर्द और इतिहास के उन रक्तरजित पन्नो को फिर से हमारी ऑखो के आगे ताजा कर दिया हैं। हलॉकि द्रोणवीर कोहली की खासियत यह है कि वे ऐसे प्रसग को भावावेग या उत्तेजना से बचाते हुए एक बैचारिक सुथरेपन समझदारी और साफ विजम' के साथ उठाते है। फिर एक खास बात यह भी है कि वाह कैंप' विभाजन की राजनीति को कही कही छूता तो है पर उपन्यासकार का पूरा ध्यान उस राजनीति के कारण सिर पर दुख का पहाड टूटने से दर–दर भटक रही जनता पर ही है। यानी वाह कैंप का अगर कोई नायक है तो वह विशाल जन समुदाय ही जिसने अपने सिर पर इतिहास का यह मार–काट और तकलीफो भरा महानाटक झेला था।

यही बात एक भिन्न सन्दर्भ मे भगवान दास मोरवाल के काला पहाड विद्यासागर नौटियाल के भीम अकेला' सूरज सबका है' वीरेन्द्र जैन के डूब' और ऐसे ही और तमाम उपन्यासो के बारे मे कही जा सकती है। मोरवाल का काला–पहाड तो पूरी तरह मेवात की जनता की कथा है–वहा के लोगो की साझी सस्कृति और अयोध्या विवाद के बाद उसमे आ गयी दरार' की कथा है। एक युवा कथाकार का यह पहला उपन्यास इतना दम–खम वाला है कि कहा जा सकता है कि हमारी शताब्दी का आखिरी दशक जिन उपन्यासो के कारण जाना जायेगा उनमे निस्सदेह काला पहाड भी है। इसी तरह वरिष्ठ कथाकार विद्यासागर नौटियाल का एक छोटा सा मार्मिक उपन्यास भीम अकेला' पहाड की जनता के दैन्य और गरीबी की कथा है। इन्हीं का एक और उपन्यास सूरज सबका है' इतिहास और वर्तमान के दर्द और जीवन का सामना करने के पहाडी जीवन को एक सीधी लेकिन असरदार कथा मे ढालकर

प्रस्तुत करता है। युवा उपन्यासकार वीरेन्द्र जैन का एक अत्यन्त प्रभावशाली उपन्यास डूब बॉध बनने से अक्रान्त जनता के दैन्य और गरीबी की कथा है– ऐसे लोग जिन्हे सिर्फ सरकारी दावो के कपट के भरोसे छोड दिया गया है। यहॉ तक कि अपने–अपने कोणार्क जो चन्द्रकान्ता का एक प्रेम कथात्मक उपन्यास है वह भी सिर्फ कुनी की कथा या कुनी का उपन्यास नही उडीसा के एक खास तरह की मर्यादाओ मे बॅधे एक रक्षणशील परिवार की स्वाभिमानी बेटी कुनी की कथा है जो मर्यादा की इन भारी–भरकस अर्गलाओ के बीच किस मुश्किल से अपने लिए सॉस लेने की थोडी जगह बचाती है। यानी यह भी अकेली कुनी की कथा नही उडीसा की एक खास तरह की जमीन वाली कुनी की कथा है। इसमे से उडीसा निकाल दीजिये पुरी और कोणार्क निकल दीजिये – यह एक मामूली प्रेम कथा होकर रह जायेगी।

अन्तिम दशक की एक विशेषता यह भी है कि इस दशक मे पुरूष ने स्त्री को केन्द्र मे रखकर उपन्यास लिखा। उनकी समस्याओ और उनके सघर्ष को भी अपने उपन्यास मे स्थान दिया। इस दशक मे उपन्यासो मे बहुत बदलाव भी आया है। उत्तर आधुनिकता इसी दशक की देन है।

(क) पुरूषो द्वारा लिखे हुए

शताब्दी के आखिरी दशक मे जिन बडे कथाकारो की रचनाधर्मिता सक्रिय रही उनमे जैनेन्द्र कुमार और अमृतलाल नागर उल्लेखनीय हैं इसमे जैनेन्द्र कुमार का दशार्क तो खासा चर्चित रहा। अमृतलाल नागर के करवट और पीढियों की ओर भी बहुतो का ध्यान गया। जैनेन्द्र का दशार्क एक सुन्दर चित्ताकर्षक और समझदार युवती

रजना की कहानी है जिसे पति की अधिकार लिप्सा और पशुता तोडती है। रजना का गृहस्थ जीवन खडित हो जाता है और अपना सम्मानित पारिवारिक जीवन छोडकर रजना एक दूसरा रास्ता चुन लेती है जिसे एक शब्द मे कहा जाय तो वह वेश्या' होना है। हलॉकि रजना जो कुछ है उसे बताने मे भाषा शायद असमर्थ है।

इसीतरह अमृतलाल नागर के करवट और पीढियॉ' उपन्यास उनकी साहित्यिक यात्रा के आखिरी छोर के उपन्यास है। ये दोनो उपन्यास मिलकर एक श्रखला बनाते है और करवट की कथा पीढियॉ' मे जाकर अपना विकास पाती है। यह एक ही खत्री परिवार की कई पीढियो की कथा है जिसका 1854 से लेकर 1902 तक का हिस्सा करवट उपन्यास मे आया है और आगे की कथा पीढियॉ' मे चलती है।

कुछ बरस पहले छपा विष्णुप्रभाकर अर्धनारीश्वर' काफी चर्चित उपन्यास है और साहित्य अकादमी का पुरस्कार तो इसे मिला ही है। अर्धनारीश्वर बलात्कार पर लिखा गया उपन्यास है उपन्यास की कथा नायिका सुमिता जो बलात्कार से पीडित औरतो की मानसिकता पर शोध कर रही है अपने थीसिस के सिलसिले मे कई ऐसी औरतो से मिलती है। और उसे बलात्कार से पीडित हर वर्ग की स्त्रियो के अलग–अलग अनुभव और पीडा के एक नीले डराबने वृत्त से होकर गुजरना पडता हैं कई बार उसे लगता है कि वह सब सुनने और सह पाने की ताकत उसमे नही है बार–बार उसके भीतर कुछ उबलता है बार–बार वह सहमकर छिटकती है पर हर बार अपनी सारी शिथिल चेतना को समेटकर फिर जुटती है। यह शोध उसके लिए वैसा नीरस और मुर्दा शोध नही है जैसा आजकल होता है। यह उसके लिए चुनौती है– जीवन की सबसे बडी सबसे कठोर चुनौती जिसमे उसकी सारी शक्तियॉ पूजीभूत हैं। उसकी चेतना बार–बार एक ही विन्दु पर आकर घूमने लग जाती है– ऐसा क्यो होता है? सभ्य

समाज मे यह जगलीपन क्यो–किसलिए इसे वर्दाश्त किया जाता है? और ऐसे हालत मे नारी क्या करे? कैसे खुद को बचाए? बलात्कार करने वाला तो छूट जाता है लेकिन वही स्त्री जिसके साथ अत्याचार होता है क्यो सबकी ऑखो मे चुभने लग जाती है? दोहरी नैतिकता का यह कैसा डरावना सत्य है? यही सवाल है जो सुमिता को यहॉ से वहॉ भटका रहा है। वह खोज–खोज कर उन औरतो का पता लगाती है जो जगली दरिंदो की हवस का शिकार हो चुकी है उनसे इटरव्यू लेती है। उन्हे कमवार दर्ज करती है और उन सीधे और सख्त निष्कर्षो तक पहुचती है जहॉ से स्त्री मुक्ति के रास्ते निकलते है यानी एक औरत के चौकाने वाले दु साहस का नाम है सुमिता। मगर सुमिता ऐसी क्यो है इसकी भी एक कहानी है– वडी ही त्रासद कहानी – और कहा जाय तो उपन्यास का पूरा ढॉचा ही उस पर टिका है।

निर्मल वर्मा हिन्दी के उन बडे लेखको मे से एक है जिनका लिखने और चीजो को देखने का एक खास ढग है। उनका उपन्यास अन्तिम अरण्य उन्हीं के खास रग और ढग का उपन्यास है। हॉ अपने इस खास ढग को उन्होने इस तरह का विस्तार दिया है। सच तो यह है कि निर्मल वर्मा के उपन्यासो मे अतिम अरण्य' ही वह उपन्यास है जो एक बडे उपन्यासकार के रूप मे उन्हे प्रतिष्ठापित करता है।

अतिम अरण्य की विशेषता यह है कि वह केवल आत्म विस्तार का ही उपन्यास नही बल्कि एक मृत्यु से सीधे–सीधे साक्षात्कार का भी उपन्यास है। हिन्दी के उपन्यासो मे मृत्यु का ऐसा साक्षात्कार दुर्लभ है। पत्नी दीवा की मृत्यु के बाद जीवन से बीतराग हो चुके मेहरा साहब का धीरे–धीरे एक एक कदम मौत की ओर बढना कारूणिक तो है ही परन्तु यह भी है कि इतनी सुन्दर मृत्यु भी कोई और नहीं हो सकती जितनी सुन्दर मृत्यु अतिम अरण्य मे मेहरा साहब पाते है। अगर इस

मृत्यु से तुलना करनी हो तो पूरे हिन्दी उपन्यास जगत मे सिर्फ एक उपन्यास है देवेन्द्र सत्यार्थी का घोडा बादशाह' जिसके कथा नायक गगन जोशी जो एक प्रसिद्ध चित्रकार है और एक अनौपचारिक किस्म का स्कूल चलाते है – शिष्य शिष्याओ से घिरे जोशी जी इसी तरह चित्र बनाते बनाते एक दिन मृत्यु के महासमुद्र मे विलीन हो जाते है।

अन्तिम अरण्य मे धीर गम्भीर मेहरा साहब और अपने चारो ओर खिलखिलाहटो की मोहिनी सी लुटाती दीवा के अलावा अगर कोई पात्र भीतर तक उतरकर अपनी उपस्थिति दर्ज करवा पाया है तो वह तिया है जिसका दु ख भीतरी उजाड और उखडापन उपन्यासकार ने भी अपरिभाषित ही छोड दिया है, मानो उसे बॉधना उसे शब्दो मे कह डालना उसके साथ अन्याय है और उसे छोटा कर देना है। पिता और पुत्री के बीच इस तरह के गहरे प्रेम और अप्रेम का द्वन्द हिन्दी उपन्यास मे कम ही देखा जाता है। वैसे उपन्यास के सबसे कारूणिक पन्ने वे है जब मेहरा साहब को (दीवा के चले जाने के बाद) हम इस तरह समान समेटते देखते है जैसे उन्हे किसी लम्बे सफर पर जाना हो। फिर अतिम अरण्य' सिर्फ मृत्यु से आपका साक्षात्कार ही नही कराता वह मृत्यु को सुन्दर प्रार्थना मे बदल देता है जिसके बाद मृत्यु कम से कम कोई भयानक चीज नहीं रह जाती। अतिम अरण्य' के गद्य के बारे मे यह नि सकोच कहा जा सकता है कि वह हिन्दी का सबसे अच्छा गद्य है।

निर्मल वर्मा के सामने रामदरश मिश्र और विवेकीराय खासे ग्रामीण' नजर आयेगें और जिदगी की हलचलो जैसी हलचल मे कुछ ज्यादा धॅसे हुए भी। रामदरश मिश्र वरिष्ठ पीढी के उन उपन्यासकारो मे से हैं जिन्हे प्रेमचन्द की परम्परा का सच्चा उत्तराधिकारी कहा जा सकता है। शताब्दी के आखिरी दौर मे भी रामदरश मिश्र की सृजनधारा पूर्णत गतिमान है और उन्होने दूसराघर' बिना दरवाजो का मकान' थकी हुई

सुबह' और बीसबरस' जैसे उपन्यासो की रचना की। दूसरा घर उनके बडे और महत्वाकक्षी उपन्यासो मे से एक है और उनके लम्बे गुजरात प्रवास के अनुभव इसमे बडे सच्चे और प्रमाणिक तौर पर आये है। थकी हुई सुबह' विना दरवाजे का मकान' और बीस बरस' रामदरश मिश्र के अपेक्षाकृत छोटे उपन्यास है। इनमे थकी हुई सुबह' स्त्री से जुडे प्रश्नो को केन्द्र मे रखकर लिखा गया उपन्यास है उपन्यास की शुरूआत इस सूचना के साथ होती है कि उमा जी गुजर गयीं' है। फिर उमा जी कौन थी? इस सवाल से होते हुए कथा नायिका लक्ष्मी की अपनी जिदगी के पन्ने खुलने लगते है इसलिए कि उमा जी उन्ही रामधन मिश्र की पत्नी थी जिन्होने कथानायिका को उस समय अवलब और सहारा दिया था जब वे पूरी तरह टूट चुकी थी। और फिर समय की एक तेज बाढ मे उमा जी पीछे छूट गयी और उनकी जगह आ गयी लक्ष्मी। उमा जी तडफती रहती है और लक्ष्मी को भी ऐसा तो विल्कुल नही कि अपराधवोध न हो पर यह एक नया यथार्थ है और हाथ मे आये सुख को वह छोडना नही चाहती । पूरे उपन्यास मे लक्ष्मी की दु ख–दाह भरी जीवन यात्रा और तकलीफो के पन्ने फडफडाते रहते हैं। बीच–बीच मे उमा जी की तकलीफे भी आती हैं और इस तरह थकी हुई सुबह' एक साथ दो स्त्रियो के शोषण और तकलीफो की गाथा है। यानी एक शोषित स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री का शोषण । लक्ष्मी के एक मर्मांतक अपराधबोध के सहारे ही इसे साधा जा सकता है।

रामदरश जी के एक और छोटे उपन्यास विना दरवाजे का मकान' मे घरो मे काम करने वाली स्त्री दीपा के माध्यम से आज की महानगरीय जिदगी के यथार्थ को देखने की कोशिश है। आम तौर से मध्यवर्गीय ऑख से निम्नवर्ग के पात्रो को उनकी करूण और असहाय जिदगी के उतार–चढाव और हाहाकार को देखा जाता रहा है पर विना

दरवाजे का मकान' मे फ्रेम आफ रेफरेस एकाएक बदल गया है। और यह दीपा जो यह सब देखती है और कहती है एक बहुत मजबूर और असहाय स्त्री है। अपने सम्पूर्ण स्त्री होने की इच्छाओ के बावजूद वह असहाय है इसलिए उसका पति जो रिक्शा चलाता है एक सडक दुर्घटना मे घायल और लाचार होकर घर पर पडा है। उसकी रीढ की हड्डी अब बेकार हो चुकी है। उसके घाव सडने लगे है और उसके लिए अब जिन्दगी मे कुछ बाकी नही बचा है। पर रामदरश जी का उद्देश्य महज दीपा और उसके पति की लाचारी दर्शाना ही नही है, वे कुछ बडे कारणो तक जाते है। बिना दरवाजे के मकान' मे रामदरश जी बगैर किसी नारे बाजी के बहुत हल्के सकेत मे ये कह जाते है कि समाज मे एक हिस्सा जब सड रहा हो तो दूसरा हिस्सा भी खुशहाल नहीं रह सकता ह। एक साधनो की कमी से सडता है तो दूसरा अपनी साधन सम्पन्नता से दूसरी तरह से सडने लगता है। दीपा लाचार है। दीपा जैसी मेहनत कश स्त्रियॉ लाचार हैं मगर वे तमाम धनपशुओ से कही बेहतर भी है क्योकि वह अपने से बाहर निकलकर देखना, सोचना और जीना भी जानती हैं।

बीस बरस' उनके महत्वाकाक्षी उपन्यासो पानी के प्राचीर और जल टूटता हुआ' की परम्परा की ही एक कडी हैं जैसे वह गॉव जो जल टूटता हुआ' मे छूट गया था बीस बरस' बाद उसका फिर से जायजा लिया जा रहा है। खास बात यह है कि इन बीस बरसो मे जो कुछ बदला है उसके प्रति रामदरश जी की दृष्टि बडी खुली और स्वस्थ है। यही ठीक है कि गॉव मे अब पहले जैसी सरलता आत्मीयता, रामरग और उत्साह नही बचा पहले जैसी दु ख कातरता नही बची। त्योहार और शादी व्याह के मौके पर पूरे गॉव के एक परिवार होने का बोध नही बचा। पर एक अच्छी बात यह है कि पहले की बहुत सी अशोभन चीजो और जो अधविश्वास थे वे अब चले गये। होली मे कबीरा गाकर दूसरे की मॉ

बहनो को जबानी नगा करना बन्द हो गया। हरिजन टोले के लोग और स्त्रियॉ अब ज्यादा हिम्मत के साथ खुद पर हो रहे अन्यायो का प्रतिकार करते है। लेकिन सबसे बडा विकार जो गॉव मे आया और उपन्यास के कथानायक दामोदर जी को विचलित करता है वह है–गॉव के नवयुवको द्वारा शहर की भोडी नकल। आधुनिकता के नाम पर घिनौनी विकृतियॉ। क्या रूप ले रहा है गॉव? और फिर आत्मीयता के भीतर छिपा छल मित्रता की आड मे चापलुसी । और यह सब देखते हुए प्रख्यात पत्रकार दामोदर जी छुट्टियॉ बीच मे ही खत्म करके दु खी होकर वापस दिल्ली चले जाते है। जाहिर है बहुत भारी मन से लिखा है रामदरश जी ने यह उपन्यास। वे इसमे बहुत अधिक रमे नही तो भी बीस बरस' मे ऐसा बहुत कुछ है। जो रामदरश जी का इतने निकट से देखा जाना और भागा हुआ है कि हम उससे अनछुए नही रह सकते।

गिरिराज किशोर का पहला गिरमिटिया' सदी के अत के उपन्यासो मे से एक हैं इसके पहले इनका ढाई घर काफी चर्चित रहा। पर पहला गिरमिटिया' मे वे गॉधी के चरित्र के जरिये जिस उदात्त को छॅू पाते हैं वैसा उनके लेखन मे पहले कभी नही हुआ। पहला गिरमिटिया' कई वजहो से हिन्दी के प्रसिद्ध उपन्यासो मे से है पर इसकी इसलिए खासकर तारीफ की जानी चाहिये कि इसने गॉधी को अपना नायक या महानायक बनाया–यह एक बडी चुनौती थी। इसलिए गॉधी के बारे मे जितना कहा–सुना औ लिखा गया वैसा गौरव शायद ही किसी और राजनेता को मिला हो। ऐसे मे बहुत सभव था कि उन पर जो उपन्यास लिखा जाता वह या तो गॉधी की जीवनी जैसा हो जाता या फिर नीरस और उबाऊ वर्णनो से भरा। लेकिन पहला गिरमिटिय इस कसौटी पर पूरा खरा उतरता है गिरिराज किशोर ने गॉधी पर इतना जीवन्त दिलचस्प और उत्तेजक उपन्यास लिखकर दिखाया है जो गॉधी

को इतिहास के बद दायारो से उठाकर फिर से हमारे आगे रूबरू खडा कर देता है और खास बात यह है कि गिरिराज किशोर ने गॉधी मे सायास महानायकत्व प्रतिष्ठा की कोई कोशिश नहीं की।

पहला गिरमिटिया' असल मे गॉधी के गॉधी हो जाने के बाद उनके करिश्माई व्यक्तित्व के करिश्मो की कथा नहीं है। बल्कि यह उस गॉधी की कथा है जिसकी बहुत धुँधली छवि हमारे ऑखो मे रहती है और जिसे सच मे हम बहुत कम जानते हैं। यह एक मामूली आदमी के लगातार आत्मसघर्ष से गुजरते हुए गॉधी हो जाने की कथा है। लिहाजा सेठ अब्दुल्ला जैसा व्यापारी जो शुरू मे गॉधी को देखकर हॅसा था उसका बहुत बडा भक्त और प्रशसक बन जाता है। बहुत बडी सख्या मे अग्रेज उसका सम्मान करने लगते हैं। दक्षिण अफ्रिका मे नस्ल भेद और गुलामी के खिलाफ लडाई का वह महायोद्धा हो जाता है और उस जैसे निहत्थे आदमी के पास सिर्फ एक सत्य का बल है। उसने सत्याग्रह के एक अनोखे अस्त्र का अविष्कार किया और अन्याय दमन का विरोध करने के लिए हजारो लोगो का मीलो लम्बा जुलूस लेकर चल पडा जिसने सारी दुनिया का ध्यान अपनी ओर खीचा। पहला गिरमिटिया' की सबसे बडी शक्ति इसकी उदात्ता है। गॉधी मे जो सच्चाई का बल था वह न सिर्फ पहला गिरमिटिया' के पन्नो मे विखरा हुआ है बल्कि इसे पढते हुऐ वह धीरे–धीरे हमारे खून मे उतरने लगता है। यह उपन्यास पाठक के मन मे एक तरह का गौरव भी जगाता है और उसे अपने सामने मॉजूद सत्य की लडाइयो मे कूद पडने के लिए उकसाता और तैयार करता हैं पहला गिरमिटिया' की एक विशेषता यह भी है कि वह गॉधी के अन्तर्विरोधो को टालता नहीं है और उन्हे उनकी कमजोरियो की बीच ही दिखाता है। यही वजह है कि गॉधी जब–जब कस्तूरबा के निर्मम सवालो के सामने पडते हैं, तो कभी–कभी श्रीहीन और कभी–कभी निरूत्तर भी हो जाते है।

इसमे शक नहीं कि इस सदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासो की जब–जब चर्चा होगी पहला गिरमिटिया' को भूलना असभव होगा।

शताब्दी के आखिरी दशक मे मुस्लिम अस्मिता और उससे जुडे सवालो को लेकर एक साथ कई उपन्यास आये है– मजूर एहतेशाम का दास्तान–ए–लापता' असगर बजाहत का सात आसमान' आबिद सुरती का मुसलमान तथा अब्दुल विस्मिल्लाह का मुखडा क्या देखे' आदि।

मजूद एहतेशाम का दास्तान–ए–लापता' मुस्लिम समाज की कथा है। सक्षेप मे यह कथानायक जमीर अहमद खान उर्फ लापता भोपाली के लापता या मिसफिट होने की कहानी। जमीर अहमद खान जैसा अपने ढग से सोचने–विचारने अपने ढग से जीने वाला आदमी अपने समाज मे तो मिसफिट होता ही है, अपने घर परिवार मे मिसफिट है कारोबार मे मिसफिट है–यहॉ तक कि अपनी पत्नी और बच्चो के लिए भी अजनबी है। डाक्टर मगरमच्छ उसकी बीमारी समझ नही पाता और पूरा मुॅख खोल कर देखने और जॉच करने के बाद उसका मजाक उडता है दोस्तो मे विवेक और अच्छन है जो कभी ऐसा लगता है कि उसे समझते हैं दिन–दिन भर बाते करते हैं बहस करते हैं और कभी आपस मे शीशे की दीवार खडी हो जाती है। जमीर अहमद खान का एक लापता व्यक्तित्व और है, जो लगातार उसके समानातर चलता है और लोगो से मिलते बाते करते कारोबार की चर्चा करते यहॉ तक की घर मे पति या पिता की भूमिका निभाते हुए भी लगातार अकेला और अलग–थलग रहता है। उसके जीवन मे आई मुश्किलो की जड उसका यहा अकेलापन या अलग–थलग रहना ही है। तमाम दूसरे जब अपने–अपने लापता को दुत्कारने की हद तक वेशर्म हो चुके है मजूर एहतेशाम बेहिचक दोहरी यात्रा करते है और उसमे आई छोटी से छोटी मुश्किलो को खुलकर बयान करते हैं। दास्तान–ए लापता' की यहीं खूबी है।

कुछ अरसा पहले छपा असगर बजाहत का सात–आसमान मुस्लिम परिवेश पर लिखे गये उपन्यासो मे एक विल्कुल अलग उल्लेखनीय उपन्यास है।

सात आसमान' असल मे एक मुस्लिम परिवार के चार सौ साल लम्बे जीवन प्रवाह की कहानी हैं इसलिए जाहिर है यह कई पीढियो की कहानी है जिसे एक तेज आत्मकथा वाली शैली मे एक उपन्यास मे पिरोया गया है। इसमे अब्बू साब की पीढी है अब्बा मियॉ की पीढी है और फिर अब्बा की– इसके बाद धीरे–धीरे मौजूदा हालात छाने लगते हैं और हम अब्बा को कमजोर लाचार और शिथिल है। मगर सिर्फ यहीं नही सात–आसमान' तो बहुत अजब और गजब चरित्रो का पूरा समन्दर है। इसमे ऐसे ऐसे चरित्र है कि लगता है मानो जिदगी की भट्टी से सीधे निकलकर आये हो। इसमे करूणा है हास्य है रईसी शान और ऐठ है कही दया नतकारी है तो कही कलाकारी और खुद्दारी भी। कुल मिलाकर उनके चेहरे और सूरते इतनी असली हैं जितनी असली जिदगी मे जूझ रहे और जी रहे लोगो की होती है। इसलिए यह उपन्यास तो है ही लेकिन साथ ही यह जीवन को ज्यो का त्यो पेश कर देना है।

इस दशक मे कृष्ण बलदेव वैद का नरनारी', हमजाद' मनोहरश्याजोशी और दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता' जैसे उपन्यास भी लिखे गये– जो आदमी को किसी बेढब (सुरेन्द्र बर्मा) सेक्स पशु या गलीज प्राणी जैसा दर्शाते थे। ऐसे उपन्यास आये तो उनके साथ उत्तर आधुनिक महिमामडन और न जाने कैसी–कैसी चमत्कारी दलीले आयी।

उपन्यास लेखन के क्षेत्र मे रूपसिह चन्देल एक नये और युवा लेखक हैं। रमला बहू' के बाद इनका उपन्यास पाथरटीला' भी ग्राम्य जीवन पर आधारित है और कानपुर के आस–पास के एक गॉव की कहानी कहता है।

कुछ समझदार और अच्छे लोगो के प्रयास से साम्प्रदायिक तनाव टल जाता है और गॉव मे सौहार्द का वातावरण बना रहता है।

उपन्यास की कथा निरन्तर एक उत्सुकता को जन्म देती हुई बढती है। लेखक यह बखूबी जानता है कि कब कहॉ क्या और कैसे कहना है यहीं कारण है कि उपन्यास के कथा सूत न विखरते है न ही परस्पर गड्ड–मड्ड होते है। और एक औपन्यासिक कृति के लिए यह एक बेहद अहम बात है जिसमे लेखक अपने पिछले उपन्यास रमला बहू मे भी सफल रहा था और पाथरटीला' मे भी सफल रहा है।

सुरेन्द्र बर्मा हिन्दी रगमच एव नाट्य साहित्य की विशिष्ट उपलब्धि ही नही है बरन इस औपन्यासिक उपलब्धि के बाद उन्हे सीधे प्रसाद मोहन रोकेश की उस परम्परा मे रखा जा सकता है जिन्होने हिन्दी नाटक एव उपन्यास' साहित्य दोनो को समान रूप से समृद्ध किया है।

मुझे चाद चाहिये उपन्यास मे एक कलाकार के सघर्ष का वर्णन है। यह सघर्ष भी दो स्तरो पर चलता है– एक स्तर पर कलाकार का व्यक्ति' के रूप मे अपने परिवार निजी सम्बन्धो कला के बाजार और विपरीत सामाजिक परिस्थितियॉ से कठोर सघर्ष दूसरे स्तर पर एक कलाकार' के रूप मे अपने माध्यम कला मूल्यो कला परिवेश तथा अपनी कलात्मक तथा अपनी कलात्मक लालसा और निजी क्षमता के बीच सतुलन का बिकट आत्म सघर्ष है। इस दृष्टि से ये सघर्ष जितना बाह्य है सामाजिक उतना ही निजी और आभ्यान्तरिक भी।

मझे चाद चाहिये कथारस के लिए ही महत्वपूर्ण नही है महत्वपूर्ण है एक अल्पपरिचित कलाजगत के आन्तरिक जीवन सघर्ष , प्रेम

यातना आसक्ति चुनौती प्रतिस्पर्धा द्वन्द्व के मिले–जुले अनुभव चित्रण के लिए।[1]

इस उपन्यास मे वर्षा वशिष्ठ इस ससार को देखने और दिखाने वाली ऑख है एक ऐसा ही होल जिसमे मे झॉककर हम भीतर देखते हैं या फिर एक ऐसा दर्पण जिससे परावर्तित होकर दृश्य हमारे पास आता है। निस्सदेह वह केवल माध्यम भर नहीं एक सक्रिय भागीदार भी है इसलिए जो कुछ हमे दिखता है वह वर्षा के अनुभव तन्त्र पर दर्ज होने की प्रक्रिया मे दिखता है।

शाहजहॉपुर का उसका जीवन इस योग्यता की आधार शिला है। उस जिदगी को एक हठ या सकल्प के साथ पीछे छोडकर वह दिल्ली के रगजगत मे प्रविष्ट होती है शाहजहॉपुर एक चुनौती की तरह उसके भीतर जीवित है। दिल्ली उत्कृष्ट कलात्मक मूल्यो के अर्जन और सर्जन का ससार है। डा0 अटल और उनकी शिक्षण पद्धति इस ससार की सूत्र धार है।

मुझे चॉद चाहिये मे बहुत सीमित दुनिया है। कलाकारो की जीवन शैली की अनिवार्य जटिलताओ से घिरी हुई । क्षुद्र और उदात्त कोमल और क्रूर ऐसी अन्तरग दुनियॉ कि आचलिक लगने लगे शाहजहॉपुर से दिल्ली और दिल्ली से बम्बई तक की कथा के इस ताने –बाने में एक प्रगाढ रग स्थानीयता का भी है। ग्रामीण न सही कस्बाई और शहरी आचलिकता का। शाहजहॉपुर तो शाहजहॉपुर है जहॉ दिव्या कात्याल जैसी युवा अध्यापिका थी उपस्थिति ही सनसनी के लिए काफी थी। मण्डी हाउस का रगकर्म ससार एक अचल ही है। आधुनिकता के

---

[1] परमानन्द श्रीवास्तव 'उपन्यास का पुर्नजन्म उपन्यास में नाटक उपन्यास का पुनर्जन्म पृ 184

तमाम लटको के बीच वर्षा वशिष्ठ सिलबिल होने के अनुभव से छुटकारा नही पाती। विडम्बना यह है कि आधुनिक और आचलिक के द्वन्द की गहरी छाप लिये वह बहुत हद तक आइसवर्ग' ही बनी हुई थी। ढक्कन खोलने वाली दिव्या कात्याल के अपने जीवन मे भी कुछ ऐसा घटित हो चुका था जिसे भूलने के लिए ही वह शाहजहॉपुर के मिश्रीलाल डिग्री कालेज मे अध्यापन के लिए आई थी। वर्षा वशिष्ठ दिव्याकात्याल की खोज थी। अभिशप्त सौम्यमुद्रा' के मचन के समय वर्षा की पहली पहचान बनी।

सिलविल और यथोदा से वर्षा बशिष्ठ – इस नामान्तर के लिए भी सकीर्ण परिवार सस्कार और पिता से टकराना पडा।

सुरेन्द्र वर्मा का सकेत है कि दिव्याकात्याल के साहचर्य मे वर्षा का खिलना ऐसा था जैसे रघु के सिहासन पर बैठते ही जल की मिठास अधिक हो उठी हो।

अनुभव की जिस गहराई तक जाने के लिए बहुत से आधुनिक लेखक जादुई यथार्थ मिथक स्पप्न प्रतीकात्मकता जैसे सूत्रो पर निर्भर रहे है उसे सुरेन्द्र वर्मा ने सीधे अनुभव ज्ञान और सहज अन्तदृष्टि के आधार पर उपलब्ध किया है सहज रूप से आधुनिक होने की समझ और विश्वसनीयता के साथ। क्षत–विक्षत वर्षा ने अन्त मे और कुछ न उपलब्ध किया हो यह साहस तो अर्जित किया ही है कि बिन व्यॉही मॉ होने मे शर्म न महसूस करे। इसमे सन्देह नही कि वर्षा की सघर्षगाथा या प्रेमगाथा को इस रूप मे प्रत्यक्ष करने की कला कई कला रूपो और युक्तियो के समावेश से सार्थक हुई है। दृश्य माध्यमो की शब्दावली का उपयोग यहॉ वर्णित परिस्थिति–सन्दर्भ की मॉग भी है और सुरेन्द्र वर्मा के अपने सर्जनात्मक अनुभव का हिस्सा भी।

अन्तिम दशक मे और भी कई महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गये उनकी सूची निम्न लिखित है– 1 ढाईघर' (गिरिराज किशोर 1991) 2 कालकथा' (कामतानाथ–1998) 3 पाहीघर' (कमलाकान्त त्रिपाठी 1991) 4 बेदखल' (कमलाकानत त्रिपाठी 1997) 5 नदी की याद नही (सत्येन कुमार 1998) 6 दिल्ली दूर है' (1993) कुहरे मे युद्ध (95) वैश्वानर'(96) (शिव प्रसाद सिह') नर–नारी'(96), मायापोत'(1999) (कृष्ण बलदेव वैद) उन्माद' (भगवान सिह 1999) बीच में विनय (स्वय प्रकाश 94) जवाहर नगर (रवीन्द्र वर्मा 1995) काला पहाड'(भगवान दास मोरवाल 1999), पापा के जाने के बाद' (प्रकाशमनु), यह जो दिल्ली है

(प्रकाशमनु) डूब (91) पार (वीरेन्द्र जैन 94) पचनाम (बीरेन्द्र जैन 96) जुलूस वाला आदमी (रमाकान्त) दो मुर्दो के लिए गुलदस्ता'।

स्त्रियो द्वारा लिखे गये उपन्यास

बीसवी शताब्दी के आखिरी दशको मे जो कथाकारो की कई पीढियॉ एक साथ सकिय रही उनमे पुरूषो के साथ महिलाओ ने भी बडी सख्या मे हिस्सेदार की है। उपन्यासो की बडी भरी–पुरी दुनिया है जिसकी रचना महिलाओ की कलम से हुई है। इसमे तरह–तरह के उपन्यास है। समाज मे स्त्री की स्थिति उसकी पीडा यत्रणा बेवसी असमजस विद्रोह सघर्ष महात्वाकॉक्षा शक्ति और कहीं कही सिर्फ उसके होने को तरह–तरह से अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासो मे इन्हे रचने वाली कलम की वर्गीय पहचान अपनी शक्ति और सीमा दोनो मे उजागर हो जाती है।

अतिम दशक मे जो स्त्रियो द्वारा लिखे गये उपन्यासो मे यह बात देखने मे आई कि–स्त्री की सार्थकता सुख खोजने मे नही त्याग मे मानने वाले परम्परागत विचार–चौखट को आज की स्त्री ने तोडना शुरू कर दिया है। छिन्नमस्ता' की प्रिया और आओ पेपे घर चले उपन्यास की कथा बस्तु और उसके पात्र उनके सवाद एक तीक्ष्ण तिलमिला देने वाली अभिव्यजना है। स्त्री चाहे मारवाडी रूगटा गुप्ता परिवार की हो या बुदेलखण्ड की या अतरपुर के जाट परिवार की। लूटी जाने की पीडा उसकी अपनी है। छिन्नमस्ता' की प्रिया स्त्री होने की जकडनो के खिलाफ निरन्तर सघर्ष करती हुई स्वय होने तक की यात्रा करती है। सबसे टकराती है भिडती रहती है लडती रहती है। प्रिया की जिदगी एक आधुनिक पढी–लिखी युवती के अभिशप्त जीवन की त्रासद गाथा है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कहे जाने वाले समाज मे भी एक शिक्षित और कर्तव्यगार स्त्री के जीवन की शोकान्तिका भीषण सच्चाई है। चाक की सारग 'छिन्नमस्ता' की प्रिया पीली ऑधी' की पद्मावती 'कठगुलाब' की स्मिता सभी इस सच्चाई से जुडी हैं।

वीसवी शती के अन्तिम दशक की महिला उपन्यासकारो के उपन्यासो मे यह तथ्य उभर कर सामने आया कि औरत की त्रासदी और असूरक्षा के मूल मे उसका नारी देह है। इसी देह के कारण वह शोषित होती है। माता होना यही उसकी सबसे बडी कमजोरी है। सतान से वह इस कदर चिपटी रहती है जैसे शरीर और उसकी परछॉही। अन्यथा चाक की सारग क्या कभी सर झुकाती? आखिर सतान यह तो उसके शरीर से जुडा है मन से जुडा है नस–नस मे बहते रक्त से जुडा है। चदन के लिए ही तो मास्टर साब और मास्टर साहव के लिए उसका दिल पसीजता है अपने एक मात्र पुत्र चन्दन के लिए। उसके रोम–रोम मे प्यार उमडा है अपनी औलाद के लिए सिर्फ अपने जाये चन्दन के लिए। अतिम दशक की स्त्री उपन्यासकारो ने अपनी रचनाओ मे स्त्री को अधिकार अस्मिता स्व को पाने और सुरक्षित रखने की दिशा मे नारी सघर्ष के विभिन्न स्तरो को प्रस्तुत किया है।

मृदुलागर्ग के कठगुलाब मे मारियान के शब्द है औरत होना बिडम्बना को जन्म देता है नहीं औरत होना एक विडम्बना है नही नही औरत खुद एक विडम्बना है। जहॉ औरत होगी वहॉ विडम्बना जन्म लेगी ही। मारियाना के इन शब्दो मे औरत और मन की मूलभूत–सरचना से जुडे कठोर यथार्थ को एक क्षण के लिए भी हम अनदेखा नहीं कर सकते।

पुरूष भोगे और स्त्री भुगतती रहे यह इस दशक की स्त्री को मान्य नही। इस दशक की महिलाओ का कहना है कि स्त्री का शरीर उसकी अपनी मल्कियत है उसके देह पर उसका अधिकार है वह चाहेगी तभी पुरूष उसका उपभोग कर सकता है। प्रभा खेतान पीली ऑधी' मे पुरूष के निर्मम और विलासी चरित्र को उद्घाटित कर रख देती है। 'जरीदार ओढनी' दरअसल उस परम्परा का बोझ है जिससे मुक्त होने मे ही उस समुदाय की मुक्ति है।

रचना रचनाकार और रचनादृष्टि तीनो समय सापेक्ष है जैसे समय मे मोड का वैसा ही दृष्टि मे कोण का सबसे ज्यादा महत्व हैं। कोण ही हमारे सामाजिक जीवन के सिद्धान्त है और मोड उन घटनाओ के गवाह है जो एक लम्बे बैचारिक सघर्ष के बाद अचानक समाज के या व्यक्ति के जीवन मे पैदा हो जाते है इसलिए जो कुछ समय और दृष्टि के सापेक्ष मे घटित होता है वह सब समाज सापेक्ष है। विना समाज के विना घटनाओ के समय की कोई पहचान नही बन सकती। बीसवी शती के अन्तिम दशक मे स्त्री उपन्यासकारो ने अपनी कृतियो पर समय की मुहर लगाई है ये समय के सच्चे दस्तावेज है। निर्भ्रान्त सत्य और तिलमिला देने वाले कडवे सच को इन महिला उपन्यासकारो ने प्रस्तुत किया है।

अन्तिम दशक मे महिलाओ द्वारा लिखे गये उपन्यासो की सूची निम्नलिखित है– सूर्यवाला का यामिनीकथा' और दीक्षात नीलिमा सिह का अपनी सलीबे मजुलाभगत का गजी' इदिरा दीवान का मानदड ज्योत्सना मिलन का अवस्तुका' राजीसेठ का निष्कवच' सुधा अरोडा का यह रास्ता अस्पताल को जाता है' शकुन्तला दुबे का बटी' चन्द्रकान्ता का वितस्ता बहती रही अपने–अपने कोणार्क अतिम साक्ष्य' नासिरा शर्मा का ठीकरे की मगनी' जिदा मुहावरे' श्याल्मली' दिनेश नदिनी डालमियॉ का मरजीवा' मृदुलागर्ग का कठगुलाब रजना जैदी का हिंसा अहिसा' महाश्वेता देवी चतुर्वेदी का टूटा पुल' मीरा सीफरी का गल्ती कहॉ' रमणीका गुप्ता का सीता', कमल कुमार का हमबर्गर' सुधा श्रीवास्तव का चॉद छूता मन' सुनीता शर्मा का मगत' ममता कालिया एक पत्नी के नोट्स प्रभाखेतान का छिन्नमस्ता' पीली ऑधी आओ पेपे घर चले' अपने–अपने चेहरे मैत्रेयी पुष्पा का बेतवा बहती रही', इद्न्नमम्' चाक' और 'अलमा कबूतरी' चित्रा मुद्गल का ऑवा' मृणाल

पाण्डेय 'रास्तो पर भटकते हुए क्षमा शर्मा का परछाई अन्नपूर्णा' और गीताजलिश्री का माई और हमारा शहर उस बरस'।

पुरूषो द्वारा लिखे गये उपन्यासो मे स्त्री–विमर्श

हिन्दी उपन्यासो के आरम्भ काल से ही मानवीय समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी मे जिस रूप मे कविता मे जन–जीवन के बृहत्तर सन्दर्भ आये उस रूप मे उपन्यासो मे नही। यह इस लिए हुआ कि या तो उपन्यास घर परिवार की दुनिया तक सीमित रहे या जासूसी ऐय्यारी और तिलस्मी दुनिया तक। लेकिन प्रेम चन्द ने आकर वीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक मे ही जब कविता मे छायावाद चल रहा था तब यर्थाथवादी समस्याओ से उपन्यास का ऐतिहासिक चरण आरम्भ हुआ यह हिन्दी उपन्यासो के लिए वरदान सिद्ध हुआ।

स्त्रियो की समस्याओ को लेकर स्त्री लेखिकाओ ने तो उपन्यास लिखे ही कुछ पुरूष कथा लेखको ने भी स्त्री की समस्याओ, उसकी त्रासद स्थिति को अपने उपन्यास का विषय बनाया।

जहॉ पहले स्त्री को नरक का द्वार कहा गया हैं वही अब कुछ स्थितियॉ बदलने लगी हैं। छठे दशक मे स्त्री की स्वाधीनता को लेकर जो चिन्ता प्रकट की गयी वह यहॉ आकर और घनीभूत हो गयी है। यह चिता ऐसे समय मे और प्रमाणिक हो जाती है जब ससद मे हमारा पुरूष वर्ग ही महिला आरक्षण विल को पास नही हाने दे रहे है। स्त्री स्वतन्त्रता का नारा पश्चिम से आया था लेकिन आज हमारे समाज का भी अविभाज्य अग बन गया है। हमारे जीवन का एक राग बन गया है। लेकिन हमारे देश मे स्त्री स्वतन्त्रा के अर्थ क्या है पुरूषो का इस बारे मे क्या दृष्टिकोण है, इसको समझने के लिए हमे पुरूषो द्वारा लिखे उपन्यास और उसमे स्त्री–विषयक चिन्तन को देखना होगा।

मुझे चॉद चाहिये सुरेन्द्र वर्मा का महत्वपूर्ण उपन्यास है। इसका मुख्य और आदर्श कलिगुला का यह उद्धरण है—अचानक मुझमे

असभव के लिए आकाक्षा जागी। अपना यह ससार काफी असहनीय है इसलिए मुझे चन्द्रमा या खुशी चाहिये –कुछ ऐसा जो वस्तुत पागलपन सा जान पडे। मै असभव का सधान कर रहा हूँ देखो तर्क कहॉ तक ले जाता है शक्ति अपनी सर्वोच्च सीमा तक इच्छाशक्ति अपने अनत छोर तक। शक्ति तब तक सम्पूर्ण नही होती जब तक अपनी काली नियति के सामने आत्मसमर्पण न कर दिया जाये। नही अब वापसी नहीं हो सकती। मुझे आगे ही बढते ही जाना है ।

एक छोटे से कस्बे शाहजहॉपुर के स्कूल मास्टर की लडकी सिलबिल वर्षा वशिष्ठ बनने के लिए इसी आदर्श उद्धरण का सहारा लेती है। जीवन के तमाम समझौते उसके मार्ग को प्रशस्त करते हैं वह परिवार की रूढियो और सस्कार कहे जाने वाले तमाम अवरोधो को तोडने मे किसी प्रकार की देरी नही करती। उसे जीवन मे वह सब पाना है जो एक मध्यमवर्गीय लडकी के लिए सपने मे भी सम्भव नही है– वह उन ऊचाइयो तक पहुॅच जाती है जहॉ आजीवन कठोर श्रम और मेधा की तमाम विवेकपूर्ण दृष्टियो के बावजूद नही पहुचॉ जा सकता। अकादमी पुरस्कार पदमश्री बेस्ट कलाकार तथा अन्य प्रकार की कीर्ति मे निमग्न वर्षा हर्ष से विवाह पूर्ण सम्बन्धो तक मे परेशानी का अनुभव नहीं करती लेकिन अपनी यश पताका के आसमान मे फहराने के समय जब अनव्याहे उसकी गोदी मे एक पुत्र पैदा होता है तब हर्ष का आत्महत्या करना उसे अन्दर तक तोड देता है और जीवन की सारी उपलब्धियॉ व्यर्थ सी लगने लगती हैं। वह कहती है– मेरे वास्ते चन्द्रमा हमेशा के लिए वुझ गया है। कलिगुला के अचूक उद्धरण ने वर्षा के मन मे जो अदम्य इच्छा उत्पन्न की थी। अग्रेजी की व्याख्याता दिव्या कात्याल ने जो स्त्री स्वतत्रता की भूख उसके अन्दर पैदा की थी– वह हर्ष के न रहने से अचानक विलुप्त कैसे हो गयीं? क्या वर्मा जी यह बताना चाहते है कि स्त्री की तमाम

उपलब्धियो से अधिक बडी उपलब्धि पत्नी बनकर गृहत्थी चलाना है। क्या एक गृहस्थी ही स्त्री की सम्पूर्णता है। यहॉ यही लगता है कि वर्षा यही चाहती है और उसके कहने मे यह अर्थ ध्वनित होता है बल्कि यह है कि वह सब कुछ के साथ अत मे एक शानदार घर और गृहपति भी चाहती है। स्त्री को स्वतन्त्रता से अधिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है। यह वाक्य उपन्यास मे भी एक जगह आया है। और उपन्यासकार का उद्देश्य भी यही है।

मुझे चॉद चाहिये उपन्यास मे एक कलाकार का सघर्ष वर्णित है। यह सघर्ष भी दो स्तरो पर चलता है– एक स्तर पर कलाकार का व्यक्ति' के रूप मे अपने परिवार निजी सम्बन्धो कला के बाजार और विपरीत सामाजिक परिस्थितियो से कठोर सघर्ष दूसरे स्तर पर एक कलाकार' के रूप मे अपने माध्यम कला –मूल्यो कला–परिवेश तथा अपनी कलात्मक लालसा और निजी क्षमता के बीच सतुलन का विकट आत्म सघर्ष।

54 सुल्तानगज से राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय और राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय मे सिनेमा ससार तक फैले हुए मुझे चॉद चाहिये के कथा ससार मे यो तो अनेक चरित्र आते है लेकिन इसकी सबसे तीखी बहुमुखी व्यजना जिन दो पात्रो के माध्यम से हुई है वे है– उपन्यास की नायिका वर्षा वशिष्ठ उर्फ सिलविल और दिव्या कात्याल।

दिव्या वर्षा के लिए फ्रैन्ड फिलॉसफर एण्ड गाइड है जिसने उसके अन्दर ज्वार को मुक्त करने का सही रास्ता सुझाया था।

तुम्हारे अन्दर जो ज्वार भरा है उसे मुक्ति देने के लिए ढक्कन खोलने की जरूरत है। [1]

इसलिए अगर मिस कत्याल उसके जीवन मे न आती तो वह या तो आत्महत्या कर चुकी होती या रूँ–रूँ करते चार पॉच बच्चो को सभालती किसी क्लर्क की कर्कश बोसीदी जीवन सगिनी होती। [1]

पिता किशन दास शर्मा सस्कृत के अध्यापक जरूर है परन्तु घिसी–पीटी जीवाश्म भाषा की तरह ही पुरातन पथी। उन्हे जिस दिन यह पता चलता है कि सिलविल ऋसहार पढती है उन्होने किस कुलगुरू के ग्रन्थो मे से चुन–चुन कर आलिगन अभिसारिका सीत्कार जैसे शब्दो पर पेसिल पोत दी। सिर्फ पिता ही क्यो मॉ बडा भाई मुहल्ले के ऐरे–गैरो से लेकर उसके मित्र और प्रेमी भी उसके रास्ते रोककर खडे है। एक तरफ उसे नाटक से मिली वाह–वाह पहचान और जगमगाती टी वी फिल्मो की दुनिया दिखाई दे रही है तो दूसरी तरफ उसके स्त्री होने की सीमाओ पर लगातार हमले करता पूरा का पूरा समाज–

मडवे मे विठा दो इसे हाथ–पॉव बॉध के। जान तो छुटे – मॉ ने कहा। [2]

सिलबिल तुम हर लिहाज से सीमा पार कर चुकी हो–
पिता बोले। [3]
अब तेरी वजह से लडके एक दूसरे का सिर भी फोडने
लगे' –भाई दहाडे। [4]

---

2 वही पृ 13

[2] 'मुझे चाद चाहिये' पृ 76

[3] वही पृ 76
[4] वही पृ 77

किन्तु दिव्या जैसे प्राध्यापिकाओ की थपकी ऐसा आत्मविश्वास पैदा करती गयी कि रूप–रग मे सामान्य सी लगने वाली लडकी ने नेशनल स्कूल आफ ड्रामा से होते हुए बम्बई हालीवुड मे धूम मचा दी किन्तु ज्यो ज्यो वाह्य उपलब्धियो की मीनारो पर चढती गयी त्यो–त्यो अपनी निजी चाहत की बढती दूरी के दश से छीजती गयी।

वह मानती है कि– जगत विसर्जन कोई समाधान नही। और इसीलिए अपनी इमोशनल एकर दिव्या से कहती है कि– यह दुर्वलो और कायरो की अपनी बौनी क्षमता को पहचानने की स्वीकृति है सच्चे और महान वे है जो अपनी असफलता की कचोट के साथ जिन्दा रहते हैं अपने निकृष्टतम रूप मे भी जिदगी मौत के सर्वश्रेष्ठ ढग से बेहतर है। [1]

वर्षा के जीवन दर्शन और उसके भावात्मक सतुलन की तार्किक परिणति इस रूप मे प्रतिफलित होती है कि वह कलात्मक शिखरो के साथ ही व्यवसायिक ऊँचाइयो की बुलन्दियो को छूपाने मे सफल रहती है। यहीं नही धीरे–धीरे वह अधेरे की बादी ने निकलकर कालिगुला' का यह सवाद याद करती है–

विषाद भी टिकाऊ नही हो सकता। विषाद भी दश है। [2]

प्रभा खेतान अपने लेख मे वर्षा वशिष्ठ के बारे मे लिखती है– मुझे चॉद चाहिए की नायिका–वर्षा वशिष्ठ का सर्जक पुरूष है। उपन्यास मे गजब की कला चेतना है एक सचेष्ट और सजग रूप से बुना गया ताना–वाना रचना धर्मिता का ऐसा सतुलन जो मच के सफल निर्देशक की ओर इगित करता है। क्लाइमेक्स ऐटिक्लाइमेक्स इतनी

---

[1] वहीं पृ 549

[2] वहीं पृ 567

सयत सुदृढ भाषा पुरूष की हो सकती है क्यो कि विरासत मे उसे कालिदास मिले है किन्तु जहॉ तक उपन्यास की नायिक वर्षा वशिष्ठ का सवाल है, तो ऐसा लगता है मानो लेखक एक प्रतिभा का निर्माण कर रहा हो मगर सारे प्रयासो के बावजूद वह वर्षा वशिष्ठ मे प्राण नही फूॅक पाता। वर्षा वशिष्ठ होकर नही सोच पाता। वर्षा वशिष्ठ स्वय नहीं चल रही है लेखक उसकी महत्वाकाक्षाओ की पारम्परिक सीढियो पर चढा रहा है। यहॉ तक कि हालीवुड ले जाता है और उसके बाद वह बच्चे की मॉ बनती है। क्या लेखक के मानस मे वही एक घिसा–पिटा मुहावरा काम नही कर रहा है कि तुम कुछ भी करो कही भी जाओ कितनी भी ऊॅचाई पर लेकिन पुरूष के विना अधूरी हो मातृत्व ही तुम्हारी वास्तविक सफलता है। [1]

इतना ही नही वह आगे लिखती हैं– उस लिजलिजी पुरूष परम्परा का प्रतीक वह बच्चा है । [2]

पर कहना न होगा कि प्रभा जी के इन शब्दो मे उनके नारीवादी मानदण्डो की प्रतिध्वनि है जिसकी पृष्ठभूमि मैत्रेयी पुष्पा के इदन्नमम' की नायिक मन्दा है जो मॉ नहीं बनी उसके प्रारब्ध मे विवाह नही है' जिसकी पृष्ठभूमि देहात है जबकि इन दोनो के कथा ससार एव परिस्थिति मे अन्तर है। मैत्रेयी की नायिक का प्रेमी कभी लौटकर उसके पास नही आता जबकि वर्षा का प्रेमी हर्ष' उसके सारे सघर्ष मे उसे पूरे चरित्र मे उसकी पूरी सोच मे उसके साथ हैं।

सच तो यह है कि मातृत्व एव पत्नीत्व छोडकर स्त्री को प्रगतिशील बनाने की दृष्टि पुरूष की नहीं है। परन्तु स्त्री पर पडी पुरूष

---

[1] हस 1994 अक दो नये उपन्यासों के बहाने नारी चेतना की पडताल –प्रभा खेतान

[2] वही

वर्जना को खत्म करना भी जरूरी मुद्दा है जो पूरी हिम्मत व सोच समझ के साथ वर्षा वशिष्ठ करती है। बचपन से लेकर अन्त तक स्त्री होने के कारण करणीय–अकरणीय के सभी पारस्परिक विधि–निषेधो को तोडने के सफल प्रयत्न इसमे किया गया है।

महानगरीय आधुनिक स्त्री के रूप मे उसके (वर्षा) व्यक्तित्व का रूपान्तरण होता है। दिल्ली मे हर्ष के साथ गणतन्त्र दिवस के दिन उसका पहला मौन सम्पर्क घटित होता है और यह समागम उसके भीतर न तो पाप बोध' जगाता है न यौन उच्छृ खलता की ओर प्रेरित करता है। यहॉ वर्षा उस पारम्परिक स्त्री से अलग हो जाती है जो यौन शुचिता को ही अपना आदर्श मानती है।

वर्षा की दो विशेषताए सबसे बडी है–उसकी दृढता और सतुलित नमनीयता। उसका जन्म उत्तर प्रदेश के एक पिछडे हुए कस्बे शाहजहॉपुर के एक ऐसे परिवार मे हुआ था जो पैसे की कलेजा निचोड सनातन कमी' के बावजूद कट्टर रूढिवादी मूल्यो मे जकडा हुआ था। उपन्यास के प्रथम पैराग्राफ मे ही उसकी सम्भावित नियति और उससे उबरने का सकेत व्यजित है– अगर मिस दिव्या कात्याल उसके जीवन मे न आतीं तो वह या तो आत्महत्या कर चुकी होती या रूँ–रू करते चार–पॉच बच्चो को सभालती किसी क्लर्क की ककर्श वोसीटी जीवन सगिनी होती।

नि सेदेह दिव्या उसकी मार्गदर्शक और आत्मीय भावनात्मक सबल है जिसने उसके अन्दर भरे ज्वार को मुक्त करने का सही रास्ता सुझाया था– तुम्हे अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम चाहिये। वह

क्या होगा यह मै अभी पक्के तौर पर नही कह सकती। पर एक बार रगमच की कोशिश कर लेने मे कोई हर्ज नही। [1]

प्राय चुप रहने वाली वर्षा उर्फ सिलविल मे बचपन से ही मौन आक्रोश और विद्रोह के जवर्दस्त तेवर थे। इसकी पहली अभिव्यक्ति तब हुई जब सिलबिल अपना नाम यशोदा शर्मा से बदलकर वर्षा वशिष्ठ रखती है। इसके बाद दिव्या के सानिध्य मे मिश्रीलाल डिग्रीकालेज शाहजहॉपुर और लखनऊ के रगमच पर अभिनय से लेकर राजधानी के एन0 एस0 डी0 मे प्रवेश लेने तक उसने हर विपरीत पारिवारिक और सामाजिक परिस्थितियो का उत्कृष्ट दृढता के साथ मुकाबला किया। कलामार्ग पर अपने एकाग्र लक्ष्यभेद मे सलग्न सिलविल के लिए मिटठू के प्रति आकर्षण भी अवरोध नही बन पाता। यहॉ तक कि आगे चलकर हर्ष ओर सिद्धार्थ के साथ उसके प्रेम सम्बन्ध और उनके उतार–चढाव भी उसकी कला साधना और अपने माध्यम को साधने के आत्मसघर्ष मे बाधा नही बन पाते। वह अपने निजी पारिवारिक और सामाजिक सम्बन्धो के साथ–साथ कलात्मक मूल्यो के प्रति भी पूरी तरह ईमानदार और निष्ठावान बनी रहती हैं। अपनी असाधारण नमनीयता और तार्किक सनतुलन के फलस्वरूप वह प्रत्येक विपरीत परिस्थिति की अन्धी खाई मे से उबरकर व्यक्तिगत सफलता और कलात्मक बुलदियो के चॉद छॅू लेती है।

अर्धनारीश्वर' विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखा गया उपन्यास है जो कि खासा चर्चा मे रहा हैं साहित्य अकादमी का पुरस्कार भी इसे मिला है। इसमे स्त्री बलात्कार की पीडा कैसे सहती है कितनी कुठित होती है यह दिखाया गया है। इसीलिए शायद अर्धनारीश्वर' उपन्यास कम बलात्कार

---

[1] मुझे चॉद चाहिए पृ 28

पर लिखा गया कच्चा चिठठा ज्यादा है। उपन्यास की कथा नायिका सुमिता जो बलात्कार से पीडित औरतो की मानसिकता पर शोध कर रही है अपनी थीसिस के सिलसिले मे कई ऐसी औरतो से मिलती है। और यो उसे बलात्कार से पीडित हर वर्ग की स्त्रियो के अलग–अलग अनुभव और पीडा के एक नीले डरावने वृत्त से होकर गुजरना पडता है। कई बार उसे लगता है कि वह सब सुनने और सहपाने की ताकत उसके अन्दर नहीं हैं बार–बार उसके भीतर कुछ उबलता है बार–बार वह सहम कर छिटकती है पर हर बार अपनी सारी शिथिल चेतना को समेट कर फिर जुटती है। यह शोध उसके लिए वैसा नीरस और मुर्दा शोध नही है जैसे आजकल विश्वविद्यालयो मे होते हैं। यह उसके लिए चुनौती है जीवन की सबसे बडी सबसे कठिन चुनौती जिसमे उसकी सारीं शक्तियॉ पुँजीभूत है। उसकी चेतना बार–बार एक ही विन्दु पर आकर घूमने लग जाती है– ऐसा क्यो होता है? सभ्य समाज मे यह जगलीपन क्यो– किसलिए इसे बर्दाश्त किया जाता है? और ऐसे हालात मे नारी क्या करे? कैसे खुद को बचाये? बलात्कार करने वाला तो छूट जाता है लेकिन वही स्त्री जिसके साथ अत्याचार होता है क्यो सबकी ऑखो मे खटकने लगती है? दोहरी नैतिकता का यह कैसा डरावना सत्य है। यही सवाल है जो सुमिता को यहॉ से वहॉ भटका रहे है। वह खोज खोज कर उन औरतो का पता लगाती है जो जगली दरिदो की हवस का शिकार हो चुकी है उनसे इण्टरव्यू लेती है। उन्हे क्रमवार दर्ज करती है और उन सीधे और सख्त निष्कर्षो तक पहुँचती है जहॉ से स्त्री मुक्ति के रास्ते निकलते है–यानी एक औरत के चौंकाने वाले दु साहस का नाम है सुमिता।

यह तो कटु सत्य है कि हमारे समाज मे पुरूष दोषी हो भी तो उसे सजा नही मिलती और स्त्री विना कसूर के दण्ड भुगतती है। बलात्कार जैसा जघन्य अपराध तो पुरूष करता है परन्तु सजा मिलती है

स्त्री को। बलात्कार की शिकार हुई औरतो से मॉ–बाप भाई–बहन दोस्त रिश्तेदार और समाज कहता रहता है– कलमुँही तु मर क्यो नही गई? पुरूष से कभी कोई इस तरह नही कहता। समाज के दुहरे मापदडो की कथा है अर्धनारीश्वर। यह सत्य है कि यदि यह उपन्यास किसी स्त्री द्वारा लिखा गया होता तो इसकी मार्मिकता और सुमिता के साथ ही साथ अन्य स्त्रियो की पीडा और उभर कर सामने आती।

रामदरश मिश्र वैसे तो आचलिक उपन्यासकार हैं परन्तु इसका उपन्यास थकी हुई सुबह' स्त्री को केन्द्र मे रखकर लिखा गया है। स्त्री से जुडे हुऐ प्रश्नो को उठाया गया है। उपन्यास की शुरूआत इस सूचना के साथ होती है कि उमा जी गुजर गयी। फिर उमा जी कौन थी? इस सवाल से होते हुए कथा नायिका लक्ष्मी की अपनी जिदगी के पन्ने खुलने लगते हैं इसलिए कि उमा जी उन्ही रामधन मिश्र की पत्नी थी जिन्होने लक्ष्मी को उस वक्त सहारा दिया था जब वे पूरी तरह टूट चुकी थी । और फिर समय की एक तेज बाढ मे उमा जी पीछे छूट गयी। और उसकी जगह आ गई लक्ष्मी। वह रामधन मिश्र की प्रेमिका पत्नी के रूप मे आ जाती है यह भी विडम्बना ही है कि जिस स्त्री ने उनको सहारा दिया उन्होने उसी का अधिकार छीन लिया। उमा जी तडफती रहती है और लक्ष्मी को भी ऐसा तो बिल्कुल नही है कि अपराध बोध न हो । पर यह एक नया यथार्थ है और हाथ मे आये सुख को वह छोडना नहीं चाहतीं। पूरे उपन्यास मे लक्ष्मी की दु:ख दाह भरी जीवन यात्रा और तकलीफो के पन्ने फडफडाते रहते हैं। बीच–बीच मे उमा जी की तकलीफे भी आती है और इस तरह थकी हुई सुवह' एक साथ दो स्त्रियो के शोषण और तकलीफो की गाथा है। यानी एक शोषित स्त्री द्वारा दूसरी स्त्री का शोषण। लक्ष्मी के एक मर्मांतक अपराध बोध के सहारे ही इसे साधा जा सकता है। पर दुर्भाग्य से वह उपन्यास मे बहुत धीमा है।

आज मध्यवर्गीय स्त्री की महत्वाकाक्षा बडी है वह चाहती है कि वह भी जानी या पहचानी जाय। वह कुछ करे। इस प्रकिया मे वह कई बार अपनी वास्तविक क्षमताओ से अधिक की चाहना भी कर बैठती है। रामदरश जी के एक और छोटे उपन्यास विना दरवाजे का मकान' मे घरो मे काम करने वाली स्त्री दीपा के माध्यम से आज की महानगरीय जिदगी के यथार्थ को देखने की कोशिश है। आमतौर से मध्यमवर्गीय ऑख स निम्नवर्ग के पात्रो को उनकी करूण और असहाय जिदगी के उतार–चढाव और हाहाकार को देखा जाता रहा है। पर बिना दरवाजे के मकान' मे फ्रेम आफ रेफरेस एकाएक बदल गया है। और यह दीपा जो यह सब देखती है और कहती है एक बहुत मजबूर और असहाय स्त्री है। अपने सम्पूर्ण स्त्री होने की इच्छाओ के बावजूद वह असहाय है इसलिए कि उसका पति बहादुर जो रिक्सा चलाता है एक सडक दुर्घटना मे घायल और लाचार हो कर घर पर पडा है। उसकी रीढ की हड्डी अब बेकार हो चुकी है। उसके घाव सडने लगे है और उसके लिए अब जिदगी म कुछ बाकी नही बचा है पर रामदरश जी का उद्देश्य महज दीपा और उसके पति की लाचारी को ही दर्शाना नही है। वे कुछ बडे कारणो तक जाते है। विना दरवाजे के मकान मे' रामदरश जी बगैर किसी नारे बाजी के बहुत हल्के सकेते मे यह कह जाते है कि समाज मे एक हिस्सा जब सड रहा हो तो दूसरा हिस्सा भी खुशहाल नही रह सकता। दीपा जैसी महनतकश स्त्रियॉ लाचार है मगर वे उन तमाम धन–पुशुओ से कही बेहतर भी है क्योकि वह अपने से बाहर निकलकर देखना सोचना और जीना भी जानती है।

अन्तिम दशक मे पुरूषो ने जो भी स्त्रियो को लेकर लिखा वह कुछ हद तक तो परम्परा से अलग है, फिर भी है परम्परा मे। जैसा कि सुरन्द्र वर्मा ने मुझे चॉद चाहिये मे अपना दुष्टिकोण दिया कि चाहे स्त्री

विवाह करे या न करे परन्तु उसका मॉ बनना आवश्यक है मॉ बने बिना उसकी मुक्ति सम्भव नही है। विवाह परम्परा आवश्यक नही है।

पुरूष स्त्री को कभी भी अपने समान नही मानता है या तो देवी मानकर पूजा करेगा या फिर दासी बनाकर उसका शोषण । आज स्थितियॉ कुछ बदली है लेकिन फिर भी पुरूष के अवचेतन मे उसका अहम् विद्यमान है यदि ऐसा नहीं होता तो वर्षा के अन्दर जो स्त्री स्वतन्त्रता की भूख दिव्या कात्याल ने पैदा की थी वह हर्ष के न रहने पर अचानक विलुप्त कैसे हो जाती।

लगभग सारे पुरूष कथाकारो ने स्त्री स्वतन्त्रता की बात तो की लेकिन साथ–साथ यह भी सकेत किया कि स्त्री की तमाम उपलब्धियो से अधिक बडी उपलब्धि पत्नी बनाकर गृहस्थी चलाना ही है। यहॉ यह प्रश्न उठता है कि क्या एक गृहस्थी ही स्त्री की सम्पूर्णता है? क्या स्त्री को स्वतन्त्रता से अधिक सुरक्षा की आवश्यकता होती है? जैसा कि इन उपन्यासकारो का दृष्टिकोण है। इतना चिन्तन होने के बाबजूद स्त्री समस्या आज भी हमारे सामने बहुत भयावह स्थिति मे है। देश की अस्सी प्रतिशत महिलाए अशिक्षित है। महानगरो मे जिन पढी लिखी महिलाओ ने नौकरी और व्यवसाय को अपने जीवन का अनिवार्य अग बनाकर घर की चारदीवारी छोडी है वे भी बाहर आकर पुरूष की मानसिकता देख रही है कि उनकी दृष्टि मे स्त्री आज भी वैसी ही यौन–रूपा है उसका भोग ही उनके जीवन की सार्थकता है।

अध्याय–4

अन्तिम दशको मे स्त्रियो द्वारा लिखे गये उपन्यासों का विवरण–

बीसवी शताब्दी कई महत्वपूर्ण कारणो से ऐतिहासिक है– यह शताब्दी विचार और कर्म के स्तर पर नई राह दिखाने वाली है। दुनिया को एक होने का आदर्श और शोषण मुक्त समाज को प्रत्यक्ष करने वाली स्त्रियो को स्वाधीनता का रास्ता बताने वाली दलितो को आगे बढकर समानता की ओर ले जाने वाली यही शताब्दी है। इसी शताब्दी ने ऐसे अनेक प्रश्न हमारे सामने उपस्थिति किये जो आने वाली इक्कीसवीं शताब्दी के लिए न केवल महत्वपूर्ण हैं बल्कि समस्या उत्पन्न करने वाले भी है।

इक्कीसवी शताब्दी मे दो समस्याये महत्वपूर्ण होगी और माना जाा रहा है कि साहित्य और राजनीति दोनो मे दलित और स्त्रियॉ केन्द्र मे होगे। दोनो की समस्याओ से बचकर कोई भी क्षेत्र प्रभावशाली नही हो सकेगा लेकिन ये दोनो समस्याये इसी बीसवीं शताब्दी ने उभारी है और बताया है कि किस प्रकार हजारो साल से शोषण के शिकार दलित और स्त्री अब आगे उस प्रकार का शोषित जीवन नही जी सकेगे जिस प्रकार का अब तक जीते चले जा रहे है। राजनीति ने तो कोई विशेष कार्य नहीं किया परन्तु साहित्य मे इस ओर बहुत काम हुआ है। हिन्दी मे स्त्री विमर्श इस समय केन्द्र मे है। स्त्री लेखन और स्त्रियो को केन्द्र बनाकर उनकी समस्याओ को केन्द्र मे रखकर अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास लिखे गये है।

बीसवी शताब्दी के आखिरी दो–तीन दशको के कथाकारो की जो कई पीढियाँ एक साथ सकिय रही है उनमे पुरूषो के साथ महिलाओ ने भी बडी सख्या मे हिस्सेदारी की है।

अन्तिम दशक मे उपन्यासो की बडी भरी–पुरी दुनिया है जिसकी रचना महिलाओ की कलम से हुई है। इनमे तरह–तरह के उपन्यास हैं। समाज मे स्त्री की स्थिति उसकी पीडा यत्रणा बेबसी असमजस विद्रोह सघर्ष महत्वाकाक्षा शक्ति और कही–कही सिर्फ उसके होने को तरह–तरह से अभिव्यक्ति देने वाले उपन्यासो मे इन्हे रचने वाली कलम की वर्गीय पहचान अपनी शक्ति और सीमा दोनो मे उजागर होती है।

समस्या यह है कि सदियो से पुरूष प्रधान समाजो मे स्त्री का शोषण और दमन होता रहा है। समाज मे उसकी हैसियत और भूमि का निर्धारण पुरूष के हाथो हुआ है। पुरूष ने उसे समाज मे जो दर्जा दिया है वही उसकी मानसिक बनावट तय करता है उसके व्यवहार के प्रतिमानो को भी उसके दमन के निमित्त पुरूष ने तय किया। लगातार उन्हे अर्जित करते–करते वे स्त्री का स्वभाव हो गये। जो अन्तर केवल जैविक था वह धीरे–धीरे बोध के सहारे सास्कृतिक हो गया। उसे देवी मॉ सहचरि प्राण बना दिया गया। एक ओर उसे नरक की खान और दूसरी ओर शक्ति रूपा' पूजनीया बताने वाली व्याख्याए उसकी रचनात्मक मानसिकता को एक खास सॉचे मे ढालती रहीं। पुरूषो ने नारी पात्रो की जो रचना की वे भी आत्मपीडन आत्मोत्सर्ग के मत्र से बद्ध थे। उन्होने जिन नारी चरित्रो की सृष्टि की वे पुत्री पत्नी मॉ बहन प्रेमिका या फिर वेश्या के अलावा कुछ हो ही नही सकती थी।

समाज मे स्त्री की स्थिति पर केन्द्रित उपन्यास तो पुरूष कथाकरो ने भी लिखे पर अन्तिम दशक मे यह लिखना' कुछ दूसरे ढग का है। इधर की रचनाओ मे भाव, विगलन आत्मदया आत्मदान मे गौरव के एहसास जैसी अनुभूतियो के लिए जगह नहीं रह गयी थी। स्त्री अपने को नये सिरे से तलाश रही थी। रिश्तो की समस्या परिवार और परिवेश

मे अपनी भूमिका की नये सिरे से व्याख्या कर रही है। वह अपनी अस्मिता की नई पहचान करवा रही है यह विश्वव्यापी लहर थी नारीवाद' सोच ने समाज के हाशिये पर खडी स्त्री के लिए केन्द्र मे जगह बनाने की मॉग की।

हिन्दी मे कृष्णा सोबती मन्नू भडारी उषा प्रियवदा जैसी बरिष्ठ लेखिकाओ ने तो मित्रो मरजानी सुरजमुखी अँधेरे के दिलो दानिश' आपका बटी' रूकोगी नहीं राधिका' शेष यात्रा' जैसे उपन्यास लिखे ही थे उसके बाद की एक पूरी पीडी स्त्री को केन्द्र मे रखकर उपन्यास रचना के क्षेत्र मे उतर आयीं इनमे मृदुला गर्ग राजी सेठ मजुलभगत ममता कालिया नासिरा शर्मा प्रभाखेतान मृणाल पाण्डेय गीताजलिश्री चन्द्रकान्ता मैत्रीयी पुष्पा चित्रा मुद्गल आदि।

इन रचनाकारो की रचनाओ मे ध्यान आकर्षित करने वाली बात एक खास ढग की साहसिकता है जो तरह–तरह से इनके नारी पात्रो मे पकट होती है। कही–कही लगता है कि जीवन से ज्यादा साहसिकता इनके लेखन मे है। घटित तथ्यो को ही नहीं आकाक्षित सत्यो को भी इन्होने औपन्यासिक विन्यास दिया। इसके अलावा ये उपन्यास यह एहसास जगाते है कि समस्या सिर्फ स्त्री–पुरूष के बीच नही रह रह गयी है। सदियो से पुरूष भोक्ता रहा और स्त्री भुगतती रही इसलिए उसकी सार्थकता सिर्फ इस वस्तुस्थिति के खिलाफ आवाज उठाने मे है या फिर सुशिक्षित होकर आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाना ही स्त्री के लिए काफी है, ऐसा इन उपन्यासो को पढने से नहीं लगता। इन उपन्यासो से स्त्री के व्यक्तित्व को नये सिरे से पहचानने और पाने की कोशिश की गयी है। पुरूष की ज्यादतियो का स्त्री के खिलाफ बर्बरता से बल प्रयोग किया उसे दूसरे तीसरे दर्जे की हैसियत तक पहुँचा देने की मानसिकता का वर्णन–चित्रण भी अन्तिम दशक के उपन्यासो मे किया गया है। ऐसे

वर्णन प्रसग कथानक रचते है सिर्फ एक परिदृश्य बनाते हैं पर महत्वपूर्ण है वह बोध जो स्त्री के भीतर इनसे पैदा होता है। जैसे कठगुलाब की मारियाना' का यह कहना कि औरत खुद एक–विडम्बना है। खास बात है समाज मे अपनी गैर–बराबरी का एहसास सदियो से जरीदार ओढनी' की तरह कधो पर पडे परम्पराओ के बोझ को उतार फेकने मे अपनी मुक्ति तलाशने की कोशिश। पुराने औरतनुमा छल प्रपच' के बारे मे उसकी नापसदगी यानी मातृत्व की परम्परागत व्याख्याओ की नये सिरे से जॉच करने और उनसे इकार करने का हौसला।

और एक उल्लेखनीय विशेषता अपनी निजता का अतिक्रमण और विस्तार भी है। स्त्री अपनी निजी और विशिष्ट अनुभव सम्पदा के प्रति न तो उदासीन है और न तो उसके रचनात्मक उपयोग मे कैसे भी सकोच का अनुभव करती है। वह अपनी निजता से शुरू करके एक विस्तृत और व्यापक जीवन जगत से अपने को जोडती है।

अन्तिम दशक मे महिला उपन्यासकारो ने स्त्रियो की समस्या को लेकर कई उपन्यास लिखे। प्रभा खेतान मे छिन्नमस्ता' (1993) अपने–अपने चेहरे' और पीली ऑधी' जैसे उपन्यासो की रचना की। इनकी रचना छिन्नमस्ता' प्रिया नामक ऐसी स्त्री की कहानी है जो निरन्तर शोषित है। समाज की रूढियो से और पुरूष की व्यवस्था से भी।

प्रभा खेतान ने अपने लिए जो क्षेत्र चुना है वह उनका बहुत परिचित और अपना क्षेत्र है। वह समाज की जडता और अन्तर्विरोधो से जूझते और टकराते हुए आज इस स्थिति को पहुची हैं। कोई भी टकराव आदमी को किसी न किसी स्तर पर लहुलुहान करता है। इस टकराव मे मै स्वय अपने और उनके प्रति अपनी दृष्टि को नये सिरे से तौलने–परखने की जरूरत होती है जो अपने होने पर भी उसके लिए पीडा और यातना का समानातर ससार रचते है।

प्रभा खेतान का रचनात्मक क्षेत्र मारवाडी समाज की महिला का आत्मसघर्ष है। जो एक रूढ परम्पराप्रिय और बन्द समाज से टकराते और अपने को भावनात्मक स्तर पर लहुलुहान करते हुए अपने अस्तित्व को नये सिरे से परिभाषित करने के सघर्ष मे जुटी है।

इनका पाचवॉ उपन्यास पीली ऑधी राजस्थान के मारवाडी सेठ गुरमुख दास रूँगटा की हवेली से लेकर कलकत्ता मे रूँगटा हाउस' तक सयुक्त परिवार के तीन पीढियो के बसने–उजडने और टूटने विखरने की विकास कथा है।

पीली ऑधी' की प्रथम फ्लैप पर एक छोटा सा साराश दिया गया है। मेरे विचार से यह साराश इस उपन्यास का अर्थायित करने की समझदारी पैदा करता है और साथ ही कथापाठ के लिए आकर्षण भी। वह मुद्रित अश है – यह न आत्म कथा है न पटकथा इस उपन्यास मे कोई एक परिवार नहीं इसमे कुल है कबीला है – सयुक्त परिवार है – मगर सब कुछ टूटता हुआ। उडती हुई रेत की ढूहे जैसे स्त्री पुरूष और उनकी किरकिराती हुई रेतीले क्षण। तीन पीढियो की स्त्रियॉ चाची बडी मॉ और सोमा अपनी–अपनी बात कहते हुए भी खामोशी की धुन्ध मे खोती हुई।

बगाल की बारिस मे कीचड से सनी हुई सडके राजस्थान के पदचापो की धडकन सुनेगी और कहेगी–अरे यह पीली ऑधी' बगाल मे क्या कर रही है।

मैत्रेयी पुष्पा का इदन्नमम्' (94) चाक (97) झूलानट' और अलमा कबूतरी' स्त्री–समस्याओ को लेकर लिखा गया उपन्यास है।

इदन्नमम्' के बारे मे कहा जा सकता है कि इदन्नमम्' सामती समाज के हिसक अन्तर्विरोधो और दोहरे चरित्र को जानने समझने के साथ–साथ बदलते परिवेश मे अन्य विकल्पो की अनत सम्भावनाओ की तलाश मे निकली ग्रामीण अनपढ अॅगूठा टेक औरतो की (आत्म) कथा है

जिसे उनकी अपनी भाषा मे उनके सकल्पो का शपथपत्र भी कहा जा सकता है। [1]

चाक ब्रज क्षेत्र मे अलीगढ की तहसील इगरास के एक गॉव छतरपुर को केन्द्र मे रखकर विकसित होता है। चाक' उपन्यास एक स्त्री की लम्बी लडाई का वृतान्त है इसी अर्थ मे उसके मुक्ति सघर्ष की महागाथा। अलमा कबूतरी मे भी वह दलित –विमर्श और नारी–विमर्श का चित्रण करती है।

कठगुलाब (1996) उपन्यास मे स्त्री की एक अलग छवि उभर कर आती है। कठगुलाब स्त्री मुक्ति को समाज से निरपेक्ष एक ऐसी आत्यतिक समस्या मानकर लिखा गया है जिसके बारे मे मुद्दे–मुहाबरे पश्चिमी फेमिनिज्म' से लिए गये है – विरोध और समर्थन दोनो मे।

इस उनन्यास के सभी पात्रो के लिए परिवार या विवाह सस्था समाप्त हो गयी है। कठगुलाब' की मूल समस्या श्रम और उत्पादन के स्रोतो कटे और परोपजीवी लोगो के बजर' की कहानी है जिनकी जिदगियो को अपनी सार्थकता बोसाई या कठगुलाब के प्रतीको मे दिखाई देती है।

कलिकथा वाया वाईपास' (97) अलका सरावगी का महत्वपूर्ण उपन्यास है साथ ही अन्तिम दशक का भी महत्वपूर्ण उपन्यास है। कालीकथा वाया बाईपास कथानक किशोर की तीन जिदगियो की कहानी है। मारवाडी समाज या जीवन–शैली पर उपन्यास लिखने वाली अलका सरवगी दूसरी लेखिका हैं।

---

[1] (औरत–अस्तित्व और अस्मिता–अरविन्द जैन पृ0 101)

श्रीमती चित्रा मुद्‌गल का आवा' (99) एक महत्वाकाक्षी प्रयास है जो एक ओर यदि नारी विमर्श की गहरी पडताल के कारण उल्लेखनीय है तो दूसरी ओर इसलिए भी महत्वपूर्ण है कि ट्रेड यूनियन और मजदूर आन्दोलन से सम्बधित किसी महिला उपन्यासकार द्वारा लिखित यह हिन्दी का शायद पहला उनन्यास है।

यो तो कहने को यह उपन्यास एक नई जमीन पर लिख गया है जिसमे ट्रेड यूनियनो की समझौता परस्ती पतनशीलता उनका अन्दरूनी सघर्ष और उसमे घुस आयी अपराधी प्रवृतियो की पडताल शामिल है लेकिन उसका केन्द्रीय तत्व स्त्री है। स्त्री जाति की आधुनिक समाज मे स्त्री की स्थिति उसका जीवन सघर्ष शोषण और उत्पीडन वर्णित है।

कुल मिलाकर कथा–साहित्य मे स्त्री विमर्श जो कि छठे–सातवे दशक से शुरू हो जाता है अन्तिम दशक आते–आते अपने पूर्ण चरम पर पहुँच चुका है।

अन्तिम दशक के कथ्य उपन्यासो मे स्त्री से सम्बन्धित हर सवाल उठाया गया है चाहे वह उसकी शिक्षा अस्मिता से सम्बन्धित हो या सामाजिक आर्थिक परम्परा उसके सामने लायी गयी समस्या हो। उन सभी समस्याओ को उन्होने उठाया और उसका पर्याप्त हल खोजने का भी प्रयास किया।

छिन्नमस्ता' के माध्यम से प्रभा जी ने नारी का स्वाभिमान और उसका अस्तित्व व्यक्तित्व को सामने लाने की कोशिश की है। यह इनका आत्मकथात्मक शैली मे लिखा गया उपन्यास है। छिन्नमस्ता' की प्रिया का बचपन अपने परिवेश और समाज की टकराहट के गहरे जख्मो और टीस से भरा है दस वर्ष की उम्र मे ही वह चौदह की लगती थी और घर मे अपने ही भाई बहनो से उसे इसके लिए क्या क्या नही सुनना होता था। प्रिया अपने परिवार की चौथी और सॉवली लडकी है इसलिए उसे दूसरो

से ही नही स्वय अपनी मॉ से घृणा और उपेक्षा ही मिली। दाई मॉ ने यदि मॉ जैसी ममता देकर उसे पाला न होता तो पता नही उसका क्या होता अपने स्वास्थ्य के कारण वह 'पागा' अर्थात बछेडी और 'मिलिट्री घोडा' कहकर चिढाई जाती थी जो चार कदमो मे ही कमरा पार कर लेती थी। मॉ की उपेक्षा और अपने को मनहूस समझी जाने के कारण ही शायद वह बीमार रहने लगी थी। कार्तिक की नवमी को उसका जन्म होने को कारण पिता के लिए वह जरूर लक्ष्मी के रूप मे आयी थी।

पहले बडे घर की बेटी और उसके बाद मे उससे भी बडे घर की बहू होकर भी वह एक भयावह सन्नाटे के बीच पली–बढी और उस सब की अभ्यस्त हुई। अपने को जिस तरह उसने गढा और बनाया है उसमे इसी कारण अडतालीस की उम्र मे भी वह एक मुकम्मल और साबुत औरत के रूप से अपने को बचाये रख सकी है। दस वर्ष की उम्र को पहुॅचते–पहुॅचते अपने ही बडे भाई से मिला वह 'अनुभव' कही न कही उस परिवेश का ही स्वाभाविक परिणाम है जिसमे लडके को सारी छूट सुविधाओ और लाड दुलार के बीच पाला जाता है वह लडकी का उसके लडकी होने का दण्ड और उपेक्षा एक ऐसी सहज स्थिति मान ली जाती है कि इसमे किसी को कहीं कुछ गलत लगता ही नही।

गहरी असुरक्षा और उपेक्षा के बीच पलते और बढते हुए सिर्फ बाबूजी पिताजी ही थे जो उसे वट वृक्ष जैसे लगते थे परन्तु सम्पत्ति के लोभ मे एक षड्यन्त्र के तहत सम्बन्धियो और हिस्सेदारो द्वारा ही पिता की हत्या के बाद वह पुरी तरह असुरक्षित और बेसहारा हो जाती है।

कालेज मे एक बार असीम ने उससे एक बार उसे देखकर कभी किसी के भूल न पाने की बात कहकर उसकी असुरक्षा और उपेक्षा को तोडने की कोशिक की थी लेकिन मारवाडी समाज मे किसी लडकी का एक बगाली लडके से विवाह की कल्पना ही सिहरन पैदा करती थी।

इसीलिए और भी जल्दी मे नरेन्द्र द्वारा उसे पसन्द किये जाने पर उसे बडे घर की बहू बनाकर मुक्ति की सॉस लेने का मौका उसके परिवार जनो को एक तरह से अपना सौभाग्य ही लगता है।

अपने व्यवसाय की शुरूआत उसके लिए एक आइडेटिटी है। इसलिए उसने अपने लिए मोटो निर्धारित किया है—काम को काम की तरह किया जाना चाहिये। अपने व्यवसाय के प्रति एक निष्ठ समपर्ण नरेन्द्र को परेशान करता है। शुरू मे नरेन्द्र को यह लगा ही नही कि अपने निजी व्यवसाय के रूप मे प्रिया की छोटी सी शुरूआत उस पर उसके स्वामित्व के अन्त की शुरूआत भी है। अपने व्यवसाय के सिलसिले मे जब वह लदन जा रही थी तो उसने साफ कहा था कि लन्दन जाने का अर्थ है कि तुम इस घर से हमेशा के लिए जाओगी और बेटे सजय पर भी कोई अधिकार नहीं रहेगा।

अपने ससुर की अबैध सन्तान नीना को परिवार और व्यवसाय मे शामिल करके वह उपेक्षित तिरस्कृत स्त्री के हक की लडाई भी लडती है।

प्रिया के चेतन अवचेतन मे इतने अन्तर्विरोधी और विसगतिपूर्ण भ्रमजाल फैले पडे हैं कि उसे खुद पता नही कि वह क्या है? क्यो है? जो है वह स्वीकारती क्यो नही? कहती है– मै विशिष्टता के बोझ के नीचे दबना नही चाहती और न ही अब ज्यादा गभीरता से अपने को ले पाती हूँ। लेकिन वस्तुस्थिति ठीक इसके उलट है पुरूष की कोई भूमिका उसे अब अपने जीवन मे लगती नही वह क्या दे देगा? लेकिन उसका शरीर एक पुरूष का स्पर्श भी चाहता है।

छिन्नमस्ता' कुलीन, भद्रलोक मे अपनी अलग पहचान जमीन और व्यवस्था बनाने का खतरा बताती दिखाती शायद पहली आत्मकथा

(आत्म विश्लेषण) है जिसमे बहुत कुछ ऐसा है जो कहा नही गया था अब तक।

पीली ऑधी' स्त्री विशयक चिन्तन को लेकर लिखा गया दूसरा उपन्यास है। पीली ऑधी' राजस्थान के मारवाडी घराने की वृहत्कथा है। मारवाडी सेठ गुरूमुख दास रूगटा की हवेली से लेकर कलकत्ता मे रूगटा हाउस तक एक सयुक्त परिवार की तीन पीढियो के रचने बसने उखडने टूटने विखरने और फिर अनाम होने की विस्तृत विकास कथा। कथा का धरातल लम्बा है इसमे सयुक्त परिवार का विस्तृत जगल है। सम्बन्धो मे माधुर्य का अभाव है परम्पराए पर रूढि के निर्वाह मे सम्बन्धो की बुनावट मे नही। सम्बन्ध है पर सडते–गलते विखराव लेकर। पूँजी है व्यापार वृद्धि है पर पहचान के लिए आत्मसघर्ष की छटपटाहट । स्त्री शक्ति पराधीनता का अनुभव करती है परन्तु मुक्ति के लिए मार्ग अवरूद्ध है। पीली आधी' मारवाडी सस्कृति का कथात्मक दास्तावेज है।

पीली ऑधी का प्रस्थान वृत्त अकाल कथा है। इस उपन्यास का आरम्भ ही वहॉ से होता है जहॉ तीसरो सूखो आठवो अकाल' आदमी की नियति है। पीली ऑधी मे बडे–बुढो का जीवन उपदेश देते बीतता है। स्त्रियॉ प्राय बेटियो–बहुओ को यह सीख देती दिखलाई पडती है कि प्यास पर कैसे कावू पाया जाता है। सात–आठ कोस से पानी लाने मे रेत मे भी बहू–बेटियो का पैर कही फिसल न जाय इस बात की विशेष चिन्ता की गयी है। पीली ऑधी' मे दिसावरी के लिए निकलने वाले मारवाडी बाणिये सूखा और अकाल से उतने भयभीत नही है जितने कि सामन्ती उत्पीडन से। सामन्ती उत्पीडन को भी वे झेलकर जाते मगर कम्पनी शासन के नजराना से वे अधिक बेहाल थे। इस तरह सामन्ती उत्पीडन और कम्पनी सरकार के धनदोहन के बीच पिसते हुए ये मारवाडी

बाणिये दिसावरे के लिए अभिशप्त थे। उपन्यास के आरम्भिक पृष्ठ तीन तरह की मारवाडी व्यथा का सकेत देते हैं– ए तो अपने क्षेत्र (राजस्थान) मे पडने वाला सूखा (अकाल) दूसरे सामन्तो का उत्पीडन तीसरे अग्रेजी सरकार की शोषण नीति। इस त्रिगर्त से निकलकर भाग खडा होने के अतिरिक्त इन मारवाडियो के समक्ष कोई विकल्प नहीं था।

इस उपन्यास मे अग्रेजी राज के बर्बर अत्याचार और देशी राजाओ की शान का वृत्त उपस्थिति कर पराधीन भारत की पिसती उखडती जनाकाक्षाओ का रेखाकन किया गया है। कम्पनी सरकार को नजराना भेजना देशी राजाओ की शान को चमकाना सेठ साहूकारो की नियति बन गयी थी। इस क्रूर वातावरण मे भी जीने की विवशता ही थी। श्रम किसी का उत्पादन किसी का और मौज–मस्ती दूसरो की। वृद्ध सेठानी के माध्यम से लेखिका ने इस तथ्य को उद्घाटन किया है हमारे बेटे–पोते जगल–जगल भटके दिसावरी करे और रामराज रूपया खोस ले।[1]

इस तरह सामान्ती उत्पीडन अगेजी कम्पनी का नजराना मदिर से लौटती हुई बाणिये की लुगाई को उठाकर ले जाना बूँढे लाचार ससुर की कातर पुकार खाली मुठठी और ऑखो मे अधेरे का छाना और अन्तत अपनी जमीन की आन्तरिक त्रासदी को झेलना मर्यादाओ का उल्लघन आदि प्रसग पीली आधी के कथाविन्दु हैं।

पीली ऑधी' मे राजस्थान की मरूभूमि से चलकर कॉदा–कीचड भरी आडी नगरी कलकत्ता मे स्थापित हुए मारवाडी बणिको की आप–बीती दास्तान कही गयी है। इस समय के अनकहे इतिहास और

---

[1] पीली ऑधी पृ9

उसकी मनोभूमि को समझने का प्रयास किया गया है। उपन्यास का एक पात्र किशन सिर्फ व्यापार के निमित्त कलकत्ता आता है। यहाँ पर पहले से ही बसा हलवाई किशन को सलाह देता है कि यह नगर रहने के लायक नहीं है यह दोजख है। यहाँ पैसा तो कमाया जा सकता है मगर जीवन नही जिया जा सकता। सभी व्यस्त हैं अपने मे सवेदना का यहाँ लोप है। कलकत्ता सट्टेबाजी का शहर है। यहाँ अधिकतर मारवाडी आ बसे है। बाजार मे बडी–बडी गद्दियाँ हैं जिनमे व्यापार के लिए निकले बहे आकर बसते है खटते हैं और खा–पीकर सो जाते है।

पीली ऑधी' की मुख्य कथा –अकाल कथा' है स्त्री कथा' है 'पुरानी और नई सस्कृतियो के अन्तराल की कथा है। गौण कथा मे स्त्री और पुरूष के पुराने और नये विविधताधर्मी सम्बन्ध तथा अन्तराल सम्मिलित किये जा सकते हैं। अग्रेजो और सामन्तो का बर्बर शोषण नीति तथा पराधीन भारत की व्यापारिक दशा और दिशा का वर्णनात्मक उल्लेख भी आनुषगिक वृत्त के अर्न्तगत ही रखा जा सकता है।

पीली ऑधी' भविष्य की स्त्री का सपना भी है और नये सविधान की रूप रेखा भी। विवाह सस्था और परिवार के विधान और अर्थशास्त्र को समझने–समझाने की दिशा मे पीली ऑधी सार्थक और महत्वपूर्ण भूमिका है। किसी कथा के बहाने इतिहास से प्रश्न करना और वर्तमान को चुनौती देना प्रभाखेतान जैसी जागृत कथा–शिल्पी द्वारा ही सम्भव है।

इदन्नमम्' (मैत्रेयीपुष्पा) उपन्यास की कथा विंध्यअचल की माटी हवा जल, अग्नि और आकाश उस अचल के पचतत्वो से ही निर्मित है जिसमे वहीं के जन–जीवन की एक–एक धडकन सॉस लेती ही। यह कथा है तीन पीढियो के नारी चरित्रो की जो वहॉ के नदी पहाड, धूल जगल झाडी के बीच ही, फले–फूले है। जो वहॉ के रीतिरिवाजो से बॅधे

हुए हैं और जो शोषको–उत्पीडको के साथ–साथ न्याय रक्षा को ही अपना उच्चतर जीवन मूल्य मानने वालो के बीच सजीव रूप मे अब स्थिति है। उपन्यास का कैनवस बहुत विस्तृत है। इसमे एक ही साथ कई दृश्य सत्यो को उकेरने–समेटने की कोशिश की गयी है– एक ओर तीन पीढियो के नारी पात्रो को उनके परिवेश के साथ विम्ब–प्रतिविम्व रूप मे चित्रित किया गया है और इनके द्वारा अपने अपने ढग से समाज के साथ चलने या उसके विरोध को पूरी व्यपकता के साथ रूपायित किया गया है तो दूसरी ओर राजनीतिक आर्थिक शोषण अत्याचार झूठ विसगतियो तथा इनसे लडते जूझते विरोध करते हारते एव जीतते लोगो की सघर्ष यात्रा को भी व्यापक पैमाने पर चित्रित किया गया है। यह जितना हमारे समय की जुझारू स्त्री से सम्बन्धित है उतना ही उस सामाजिक पारिवारिक आर्थिक व्यवस्था और नाते–दारियो के अत्याचारी रूझानो से भी जिनसे उपन्यास की नाभि मन्दा' (मन्दाकिनी) उसकी बाल सहेली सुगना और दिलेर कुसमा लगभग अघोषित तौर पर सगठित होकर लडती है। [1]

उपन्यास की कुल कहानी मन्दा और बउ'(सोनपुरा की मातौन) की कहानी है। अपने बेटे महेन्दर सिह की राजनीतिक हत्या और महेन्द्रर सिह की जवान विधवा प्रेम का घर छोड भाग जाने और मृतक महेन्द्र सिह की जायदाद के लिए मुकदमा लडने से आतकित और घबडाहट बऊ (मन्दा की दादी) को इसलिए अपना गॉव सोनपुरा छोड श्यामली गॉव के परधान दादा पचम सिह की शरण लेनी पडती है। क्योकि मन्दा की मॉ प्रेम भी कुचक्रियो के षड्यन्त्रो का शिकार हो अपने घर से निकल चुकी है। नैतिक और आर्थिक स्तर पर छलनी–दलनी और लगभग टूट चुकीं

---

[1] साक्षातकार जुलाई पृ 103

बऊ जब श्यामली गॉव पहुँच अपनी पोती मन्दा को गहरी नीद से जगा रही है तो ऐसा लगता है एक समूची विरासत निद्रा मे डूबी हुई नई पीढी के कधो को थपथपा कर कह रही है लो इतने देर से हम और क्या कर रहे है। मन्दा की उमर तब फ्राक पहनने वाली है लगभग तेरह। उपन्यास पढते हुए मुर्च्छित स्त्री चेतना की मुर्च्छा टूटेगी और नीद भी खुल जाया करेगी।

श्यामली गॉव के प्रधान दाऊ पचम सिह और उनके परिवार के अन्य भाई बन्द बलभद्र यशपाल दारोगा विक्रम सिह लाभ–हानि का समीकरण विठाने वाले गोविन्द सिह मन्दा का किशोर मित्र मकरद देवगढ वाली कक्को और यशपाल की परित्यक्कता कुसमा और दाऊ अमर सिह के अनैतिक सम्बन्धो का व्यौरेवार और चुनौतीपूर्ण इतिहास लिखता उपन्यास जब श्यामली से उठकर सोनपुरा फिर लौटता है तब उपन्यास का यह वाक्य दसिया देस' को ही जाता है कवि केदार नाथ सिह की पक्तियो की याद दिलाता है– ओह मेरी भाषा / मै लौटता हूँ तुममे / सोचते तो बहुतों को देखा जा सकता है पर मैत्रेयी पुष्पा की तरह लौटने वाले विरले ही होगे।

मुख्य कथानक के साथ–साथ उपन्यास मे कुछ उप कथानक भी हैं। आजादी के पहले और बाद के हिन्दू मुस्लिम सम्बन्धो मे आती खटास और अलगॉव आजादी के बाद की भारत की पतनघाती भ्रष्ट राजनीति और नौकरशाही ग्रामीण विकास परम्परागत ग्रामीण समाज और विकास के नाम पर लगी चली आती सामाजिक विकृतियॉ जमीदारो और जागीरदारो के जबडो से मुक्त होकर छुटभैयो राजनेताओ और असख्य ठेकेदारो दलालो के चगुल मे फसता लोक समाज जातियो की राजनीति, आरक्षण शहरो से चलकर गॅवई जीवन मे सेध लगाती आक्रामक और घृणित साम्प्रदायिकता की विकृति और उससे पैदा हुआ अवसाद यहॉ खूब

है। चीफ साहब की कथा रतन यादव और अभिलाषा सिह की कथा आरक्षण पीडित भृगदेव की कहानी और मन्दा के प्रेरणा केन्द्र और दिग्दर्शक महाराज की कथा उपन्यास को एक ऐसे ठिकाने पर ले आते है जहॉ से आजादी के बाद की सम्पूर्ण राजनीति सामाजिक जीवन और उसे चारो ओर से घेरते जाते कठिन और उलझे सवालो का साक्षात्कार किया जा सकता है। लेखिका का मन इन कहानियो मे टूटा–टूटा हुआ सा है पर इसकी छतिपूर्ति करती हुई वह जिस तरह से मन्दा के चरित्र को रचती है उससे यह स्पष्ट हो जाता है कि उसने विकृति, विघटन निराशा और अवसाद को अपने लेखन के आधार मूल्य के रूप मे न तो अगीकार किया और न ही इनके सामने घुटने टेके हैं। उसे परिस्थितियो से ऑख मिलाना आता है और मनुष्य की सामूहिक लडाई मे उसकी घनघोर आस्था है।

मन्दा केवल परम्परागत खेती–किसानी वाला सनातन दिमाग नही है। नई सामाजिक आर्थिक चुनौतियो और राजनीतिक कतर–न्यौतो को समझती हुई वह उस अगले मशीन युग (कलयुग) को लेकर भी सजग है जिसमे नई मनुष्यता को अपना सफर तय करना है। अगर आज वह अभिलाषा सिह जैसे ठेकेदारो के खिलाफ लोकशक्ति की प्रतीकात्मक आवाज बन सकी है तो उन भैया जी टाइप लोगो से भी निपटेगी जो अत्याधुनिक टेक्नालॉजी के स्वामी और एकाधिकारवादी है। इदन्नमम्' का अर्थ ही यही है कि यह लडाई अब अस्तपाल और निजी जायदाद के लिए नही, उस विराट जनसमूह के सुखद एतिहासिक भविष्य के लिए है, जिसे भारत माता कहते है। इस दृष्टि से यह कथानक भरा–पुरा, अत्यन्त सुगठित और योजनाबद्ध है।

मैत्रेयी पुष्पा का चाक' (1997) ब्रजक्षेत्र मे अलीगढ की तहसील इगरास के एक गॉव अतरपुर मे केन्द्र मे रखकर विकसित होता

है। बुन्देल खण्ड और ब्रज का निकटवर्ती क्षेत्र मैत्रेयीपुष्पा की मुख्य कथा–भूमि है लेकिन क्षेत्र का यह सीमाकन उन्हे ऑचलिकता के आग्रह से मुक्त रखता है।

एक हजार की आबादी वाला गॉव लगभग एक वैसा ही गॉव है देश के स्वाधीन दौर मे जैसे गॉव तेजी से बने और विकसित हुए हैं। इस गॉव अतरपुर मे ब्राह्मण बनिया और जाट जैसी प्रमुख जातियो के अतिरिक्त तेली गडरिया कुम्हार खटिक चमार नाई और सक्का मुसलमान जैसी अनेक छोटी जातियॉ भी हैं। फिर भी कुल मिलाकर यह जाटो के वर्चस्व वाला गॉव है। नवे दशक की विकास योजनाओ ने गॉव को काफी बदला है। इस विकास ने उसे एक खास पहचान दी है। चकरोड द्वारा गॉव को सडक से जोड दिया जाता है टयूबबेल के बहाने गॉव मे विजली भी पहुँची है जिसके कारण कुछ घरो मे रेडियो की आवाज गूँजने लगी है अब टी बी आने की चर्चा भी है। गॉव मे एक प्राइमरी स्कूल भी है। भले ही वह बच्चो की पढाई से अधिक प्रधान और उसके हाली–मवालियो की राजनीति का अड्डा हो।

इसी परिवेश मे सारग की फुफेरी बहन रेशम की मौत की नाटकीय सूचना से उपन्यास शुरू होता है। रेशम की मौत सामान्य कहकर प्रचारित किये जाने पर भी सामान्य नही है। उसके ऊपर मिटौरा गिराकर उसके जेठ डोरिया ने उसकी हत्या की है। जिसमे उसके पूरे परिवार की सहमति रही है सहयोग भी। रेशम का पति करमवीर फौज मे हवलदार रहता है लेकिन जहरीली शराब पीने से उसकी मौत हो जाती है। परिवार के सारे लोग चाहते हैं कि रेशम को उसके जेठ डोरिया के साथ विठा दिया जाय लेकिन रेशम इसके लिए तैयार नहीं थी। विस्फोट तब होता है जब वह अपने प्रेमी का अश अपने पेट मे होने की घोषणा करती है और

अपने साहसिक निर्णय से पूरे घर–परिवार मे आग लगा देती है। उसकी हत्या उसके साहस की अनिवार्य परिणति बनकर आती है।

उपन्यास मे यह कथा मूल रूप से दो परिवारो को केन्द्र मे रखते हुए भी पूरे गॉव की सघर्ष कथा के रूप मे विकसित होती है। सारग इस हत्या को गम्भीरता से लेती है और चाहती है कि अपराधियो को सजा मिले। उसका पति रजीत एग्रीकल्चर मे एम एस सी है लेकिन छोटी–मोठी नौकरी न करके अपनी खेती देखता है। उसका बडा भाई दलबीर पुलिस मे दीवान है। उनक बाप गजाधर सिह ब्रिटिश सेना मे हवलदार था और घर गॉव मे आज भी उसकी सुनी जाती है। बहू सारग की बात उसे न्याय सगत लगती है। वह भी बूढे सेनापति के लहजे मे रजीत को ललकारता है और रेशम के ससुराल वालो पर मुकदमा ठोक दिया जाता है। बाद मे स्कूल मे आया मास्टर श्रीधर जो अपनी जाति कुम्हार छिपाने के बजाय अपने नाम के साथ जोडकर श्रीधर प्रजापति के रूप मे उस सघर्ष को एक नया आयाम देता है।

चाक मे हमे एक खास प्रकार का नया शिल्पगत नया आकर्षण दिखाई पडता है। चार सौ चौतीस पृष्ठो के इस मोटे उपन्यास को शुरू से अन्त तक पढते हुए पाठक कही ऊब नही महसूस करता वह किसी प्रकार का दबाव भी अपने मानस पर नही महसूस करता। ऐसा भी नही लगता है कि उपन्यास का आकार किसी अवान्तर दबाव या प्रेरणा से फैला दिया गया है। कथानक मे पात्रो या चरित्रो की भीड है ऐसा लगता है कि गॉव के सभी टोलो के सभी घरो के लोग कथा मे पात्र बनकर आ गये हैं और प्राय सभी प्रमुख पात्रो के जीवन से जुडी एक कथा है। उन सारी कथाओ को अत्यन्त मनोयोग और सयम से गूथ कर पूरे उपन्यास की कथा तैयार की गयी है।

इस उपन्यास का कथ्य यह है कि स्वतत्रता जीवन के लिए आवश्यक तो है लेकिन उसे पाना अत्यन्त कठिन है रेशम को जान देनी पडी गुलकन्दी उसकी मॉ हरिप्यारी और उसके पति विसुन देवा को भी जान देनी पडी सारग को कई बार मार खानी पडी अपने पढे–लिखे पति रजीत के हाथो श्रीधर को भी घातक हमला झेलना पडा। लेकिन ये सभी प्रसग कुछ न कुछ नयापन लिये हुए है यानी एकदम परम्परागत या रूढिवादी नही है। ये चरित्र नये प्रश्न उठाते हैं जीवन मे जिन्हे सक्रमणशील समाज भी नहीं झेल पाता। रेशम की हत्या कर दी गयी लेकिन दहेज के लिए नही उसका पति मर गया वैधव्य मे उसने गर्भ धारण कर लिया। औरतो ने इज्जत बचाने के लिए गर्भपात कराने की सलाह दी और रेशम ने इन्कार कर दिया। इसी पर एक रात उसे दुनिया से विदा कर दिया गया यह हत्या का नया रूप है। नया प्रश्न है विधवा को भी गर्भधारण करके सतान पैदा करने और जीने का अधिकार क्यो नहीं मिले? भारतीय नारी के जीवन के लिए यह नयी स्वतत्रता है। जीवन मे आज भी शायद ही कोई इसे स्वीकार करे लेकिन लेखिका ने यह प्रश्न नारी के पक्ष मे उठाया है। यह प्रश्न विधवा विवाह के अधिकार से भी भिन्न है। सारग इस अधिकार के पक्ष मे है। हत्या का विरोध करती है सगठित विरोध। रेशम की हत्या किये जाने पर सारग सोचती है– अधियारी ने ढक लिया उजियारा। सारग उजियारे की रक्षा मे खडी होती है वह गॉव का इतिहास बदलना चाहती है। क्यो कि गॉव के इतिहास की दास्ताने बोलती हैं– रस्सी के फदे पर झूलती रूक्मणी कुए मे कूदने वाली रामदेई, करबन नदी मे समाधिस्थ नारायणी– ये बेबस औरते सीता मइया की तरह भूमि प्रवेश कर अपने शील–सतीत्व की खातिर कुरबान हो गयी। यही नही और भी न जाने कितनी। बूढी

खेरापातिन इस तरह की कथाए सुनाती है। सारग चाहती है कि बूढी अब नयी कथा सुनाए । उस कथा की शुरूआत सारग के सघर्ष से होती है।

कुल मिलाकर यह उपन्यास आज के गॉव के माध्यम से समकालीन भारतीय समाज के एक महत्वपूर्ण अग के यथार्थ और उसकी गतिशीलता का परिचय देता है।

मैत्रेयी पुष्पा का लघु उपन्यास झूलानट (1999) भी स्त्री सघर्ष की कथा है। गॉव की साधारण सी औरत है शीलो न बहुत सुन्दर और न बहुत सुघड लगभग अनपढ। न उसने मनोविज्ञान पढा है न समाजशास्त्र जानती है राजनीति और स्त्री विमर्श की भाषा का भी उसे ज्ञान नही है। पति उसकी छाया से भागता है। मगर तिरस्कार और उपेक्षा की यह मार न शीलो को कुए वावडी की ओर ढकेलती है और न आग लगाकर छुटकारा पाने की ओर। वशीकरण के सारे तीर तरकश टूट जाने के बाद उसके पास रह जाता है जीने का नि शब्द सकल्प और श्रम की ताकत एक अडिग धैर्य और स्त्री होने की जिजीविषा । उसे लगता है कि उसके हाथ की छठी ऊगली ही उसका भाग्य लिख रही है और उसे ही बदलना होगा।

मैत्रेयी भाषण नही देती हैं वह पात्रो को उठाकर उसके जीवन और परिवेश को पूरी नाटकीयता मे देखती हैं। सम्बन्धो के बीहडो मे धीरे–धीरे उतरना उन्हे बेहद पठनीय बनाता है। न जाने कितनी स्थितियॉ प्रसग और घटनाए हैं जिनके चक्रव्यूहो मे अनायास ही उनकी नायिकाओ के नख–शिख उभरते चलते हैं। मुहावरे दार जीवत और खुरदुरी लगने वाली भाषा की गॅवई उर्जा उनका ऐसा हथियार है जो उन्हे अपने समकालीनो मे सबसे अलग और विशिष्ट बनाता है। अपनी प्रमाणिकता मे उनका हर चरित्र आत्मकथा होने का प्रभाव देता है और यही उनकी कथा सम्पन्नता है।

कलिकथा वाया बाईपास युवा कथाकार अलका सरावगी का पहला उपन्यास है जो इतिहास की अपनी समझ और ऐतिहासिक सर्जनात्मक कल्पना की दृष्टि से उल्लेखनीय है और अलग तरह की पहचान बनाता है।

इस उपन्यास मे वाचक और कथानायक किशोर बाबू एक साथ वर्तमान अतीत और भविष्य मे उपस्थित है। वे स्मृति अनुभव और कल्पना के सहारे समय के तीनो आयामो मे एक शिल्पगत युक्ति के सहारे आवा–जाहीं बनाये हुऐ हैं। वे जिस मारवाडी समाज के सदस्य हैं उसके हर परिवार की घर से बेघर होने की अपनी कथा और व्यथा है। इस कथा को सुनाने वालो की समृतियो मे अतीत का प्रभाव है। कलिकथा के शान्तनु की शिकायत है तुम लोगो के दिमाग पर मरूभूमि के अकाल की छाया हमेशा के लिए पड गयी है।

वगाल पहुँचने पर इन मारवाडियो का सबसे पहले सामना उस वगाली सस्कृति से पडा जो तरह–तरह से उनमे मेडो या खेटटा होने का एहसास दिलाती रही है। सिराजुद्दौला की हार के लिए दोषी ठहराकर उनमे अपराध–बोध पैदा करती रही है। इस देश से पीडित किशोर बाबू दस्ताबेजो के साक्ष्य से इतिहास का दूसरा पाठ प्रस्तुत करते है ताकत और पैसे के पीछे पागल लोगो की कोई अलग जाति नही होती। क्या सबसे पहले बगालियो ने ही अग्रेजो को यहाँ पॉव जमाने मे मद्द नही की थी।

इस उपन्यास मे अग्रेजो के साथ व्यापारी वर्ग के सम्बन्धो की नये सिरे से पडताल करने की कोशिश की गयी है। हैमिल्टन उर्फ लाला जी राम विलास पर अपना वरद् हाथ ही नही रखते वे गीता और उपनिषद पढते हैं उसे काली घाट के महत्व की जानकारी देते है। दार्शनिक चर्चाओ को सुन–समझकर उसमे भागीदारीं भी करते है।

मारवाडी बनाम बगाली– अलका सरावगी और मारवाडी जीवन शैली पर उपन्यास लिखने वाली दूसरी लेखिका प्रभा खेतान दोनो लोगो की दुखती रग है। कलिकथा अमोलक बार–बार बडे दुख से स्वीकार करता है बगाल मे रहते हुए भी मारवाडी औरते कितनी पिछडी हुई है। कलिकथा की नारी पात्र प्रभा खेतान के नारी पात्रो से भिन्न हैं।

उपन्यास की शुरूआत उस समय होती है जब आजादी का खूबसूरत सपना सबका अपना है। जब आदमी को उडने के लिए एक आसमान चाहिए। सबके सोचने का अपना–अपना ढग है। सुभाष बनाम गॉधी यानी शतनु बनाम अमोलक गॉधी बनाम हिन्दू महासभा और इन्ही के बीच मारवाडी जाति की चिता करने वाले भी है किशोर खुद उन्ही मे है।

किशोर बावू के अपने मोहभग का अलग सिलसिला है। शान्तनु से लम्बे समय के बाद भेट उसके कायाकल्प से उपना क्षोभ और निराशा। उन लोगो की जमात से साक्षात्कार जो स्वाधीनता आन्दोलन के आदर्शो को ताक पर रखकर स्वाधीन भारत मे बेईमानी कर रहे है।

उपन्यास का अन्त इक्कीसवीं शताब्दी के प्रवेश से होता है। अन्त से पहले एक रेखाचित्र है इक्कीसवी सदी के दरवाजे पर खडे विश्व का। यह प्रवेश कैसा होगा? उपभोक्तावाद की अधी दौड अन्तत कहॉ तक ले जायेगी?

मृदुला गर्ग का कठगुलाव' स्त्री मुक्ति को समाज से निरपेक्ष एक ऐसी आत्यतिक समस्या मानकर लिखा गया है जिसके सारे मुद्दे मुहावरे पश्चिमी फेमिनिज्म' से लिए गये है–विरोध और समर्थन दोनो मे विशिष्ट सन्दर्भ मे स्त्री मुक्ति के सवाल को अपने समाज से जोडकर देखे जाने की जरूरत है और यहॉ सवाल उन सबका सवाल है जिन्हे मुक्ति की जरूरत हैं। भारत का पुरुष सत्तात्मक समाज स्त्री को ही अपने दमन

का शिकार नही बनाता बल्कि वर्ण व्यवस्था के नाम पर एक बडे वर्ग को भी दलित बनाये रखता है। कठगुलाब श्रम और उत्पादन के स्रोतो से कटे और परोपजीवी लोगो के बजर की कहानी है जिनकी जिदगियो को अपनी सार्थकता कठगुलाब के प्रतीको मे ही दिखाई देती है।

कठगुलाब की अधिकाश प्रमुख पात्र (स्मिता मारियान असीमा नर्मदा और नीरजा) स्त्रियॉ है। शायद इसीलिए कि कथा मे स्त्री के अर्न्तसम्बन्ध और अधिक जटिल एव दिलचस्प हो उठते है। अनपढ निम्नवर्गीय नौकरानी नर्मदा वगैरह के सिवा अधिकाश स्त्री चरित्र मध्यवर्गीय शिक्षित स्वावलम्बी और स्वतन्त्र है। विवाहित अविवाहित तलाकशुदा और विधवा स्त्रियो के बीच अकेला पुरूष कथावाचक है विपिन जो सभी प्रमुख स्त्री प्रमुख स्त्री–चरित्राो से किसी न किसी रूप में जुडा हुआ है। इस अकेले वौद्धिक पुरूष के बिना सभी स्त्रियो की कथा अधूरी है। इस के बाद एक सब परिवार से स्वतन्त्र होने के बाद विपिन से सम्बन्ध बनाती तोडती हैं। सम्पूर्ण कथा महानगरीय अर्ध–चेतना मे आत्मालाप करते पात्रो की बेहद जटिल और अराजक बौद्धिक कथा है। सबकी कहानी एक दूसरे मे इतनी मिली है कि विस्मृतियो के जगल मे सारे कथा सूत्र विखरे है।

व्यक्ति के माध्यम से समाज और समाज के माध्यम से व्यक्ति को' समझने परखने की तरह उपन्यास के पात्रो को विपिन के माध्यम से और विपिन को अन्य पात्रो के माध्यम से समझने की कोशिश की गयी है

सक्षेप मे उपन्यास के सभी प्रमुख पात्रो के लिए परिवार–विवाह सस्था समाप्त हो गयी है। या आखिरी सासे ले रही है सबका पिता' मर चुका है या घर छोडकर भाग गया है। कुछ पात्रो के पति हैं ही नहीं और शेष के पति अन्तत' नर–सुअर' ही सावित होते है। युवा स्त्रियो मे किसी के भी पुत्र–पुत्री नही है। कोई भी स्त्री मॉ नहीं बनती या नही बन पाती

और अकेला पुरूष (विपिन) पिता' बनना चाहता है लेकिन लाख कोशिश के बाबजूद नही बन पाता क्योकि उसकी प्रेमिका बॉझ' है। बॉझ 'कठगुलाब ऐसी ही औरतो की प्रतीक कथा लगती है।

इस उपन्यास के सभी नर–नारी सचमुच शापग्रस्त है स्त्रियॉ सुरक्षा और सम्पत्ति के अधिकार चाहती है और पुरूष प्रेम आनन्द और स्त्री देह पाने के बाद सिर्फ एक उत्तराधिकारी। पारम्परिक पितृसत्ता सामाजिक उत्तरदायित्व भी निभाता था लेकिन यह नयी पितृसत्ता बिना किसी जिम्मेदारी के सिर्फ उत्तराधिकारी चाहता है। प्लेब्वाय दोनो ही है। वर्तमान परिवार के किले की दीवारे और छत लगातार ढहती जा रही है। भविष्य का कोई नया सत्ता–दुर्ग नही है सो पर्यावरण को बचाने की चिता भी सतायेगी ही। आम समाज के नर नारी को अपनी अपनी रोजी रोटी के सघर्ष से ही फुसर्त नही है पितृसत्ता के उद्योग और अन्य समस्याओ को सभलने–सुलझाने के लिए स्वतन्त्र स्त्री–पुरूष चाहिये जो माडलिग से लेकर समाज सेवी परियोजनाओ तक पर काम कर सके।

आवा' (चित्रा मुद्गल) अन्तिम दशक के महत्वपूर्ण उपन्यासो मे से एक है। उपन्यास की विशेषताए उसके विषय विवेचन मे निहित है। उपन्यास जीवन–समाज के विविध पक्षो पर अपने को केन्द्रित और चित्रित करता है साथ ही कुटिल यथार्थ को उद्भाषित करता है।

इस प्रकार आवा' राजनीतिक ही नहीं बहुआयामी स्थितियो की महत्ता चित्रित करता है। नमिता पाण्डेय के माध्यम से उपन्यास मे युनियन नेताओ के दोगले चरित्र को मजदूरो की समस्याओ मालिको के अत्याचारो मजदूर बस्तियो के जीवन आभूषण और माडलिग की दुनिया से लेकर परिवार चाहे वह नमिता का अपना हो सजय कनाई का सामप्रदायिकता आदि का चित्रण करता है।

उपन्यास मे अन्ना साहब एक सशक्त मजदूर युनियन नेता के रूप मे सामने आते है। वास्तव मे चह दत्ता सामत का प्रतिरूप दिखाई देता है नमिता पाण्डेय के पिता देवीशकर पाण्डेय ट्रेड युनियन कामगर अधाडी' के सक्रिय कार्यकर्ता थे। अन्ना साहब उनका सम्मान करते थे और उन्हे भाई की भॉति मानते थे। लेकिन एक मिल मालिक के लोगो के द्वारा देवीशकर पाण्डेय पर जानलेवा हमला करवाया जाता है जिसमे वे बच तो जाते है किन्तु पक्षाघात का शिकार होकर विस्तर पर पड जाते है। परिणामत परिवार की आर्थिक स्थिति खराब हो जाती है नमिता की पढाई छूट जाती है और मॉ के साथ उसे श्रमजीवा' मे पापड बेलकर घर खर्च चलाने के लिए विवश होना पडता है। नमिता की मॉ कर्कश स्वभाव वाली हैं। एक क्रूर नारी के रूप मे चित्रा जी ने नमिता की मॉ का जो स्वाभाविक चित्रण किया है वह अविस्मरणीय है। एक ओर जीवन मृत्यु से लडता पति विद्यालय जाने वाली छोटी बेटी और बेटा और दूसरे ओर उसके कधे से कधा मिलाकर चलने को तत्पर पुत्री के रहते नमिता की मॉ जिस प्रकार खुद को सजा–धजा रखती हैं अपनी सारी समस्याये पूरी करती हैं पति और नमिता के प्रति जिस प्रकार क्रूर व्यवहार करती है उसे नमिता को सोचने के लिए विवश होना पडता है कि मजदूर महिला किशोरी बाई के साथ पिता के सम्बन्ध किन परिस्थितियो मे हुए होगे जिससे एक पुत्री सुनदा का जन्म हुआ। वह इस सम्बन्ध को अन्यथा नहीं लेती बल्कि उसके प्रति सवेदनशील हो किशोरी बाई के प्रति लगाव अनुभव करती है। वह सुनदा से बहन की भॉति व्यवहार करती है। जिसका प्रेम एक मुसलमान लडके से होता है और विवाह से पूर्व ही उसे गर्भ ठहर जाता है। सुनदा का गर्भवती होना साम्प्रदायिक तनाव का कारण बनता है। परिणामत' सुनदा का प्रेमी भाग जाता है और उसके परिवार को सेना के कार्यकर्ता मोहल्ला छोडने के लिए विवश कर देते हैं।

देवीशकर पाण्डेय के परिवार के प्रति अन्ना साहब काफी सहृदय दिखते है। वह नमिता को 'कामगार अधाडी' मे पिता के स्थान पर काम करने का आग्रह करते है जहॉ नमिता का परिचय पवार से होता है पवार एक दलित युवक है और अपने अधिकारो के प्रति बेहद जागृत। उसे अहसास है कि अन्ना उसे इस्तेमाल कर दलितो को अपने पक्ष मे करना चाहते है। स्वय दलित होने की स्थिति का इस्तेमाल कर वह एक सशक्त नेता बनना चाहता है। लेकिन अन्ना साहब को पर काटना आता है। वह कुशल नेता है। पवार इसलिए नमिता को अपने पक्ष मे करना चाहता है। वह उससे विवाह कर उसे भी पूरी तरह राजनीति मे उतारना चाहता है। लेकिन सफलता नहीं मिलती क्योकि नमिता जल्दी ही 'कामगार अधाडी' छोड देती है। छोडने का कारण है अन्ना साहब जो उसे बेटी की तरह मानते हैं लेकिन उसका यौन–शोषण करने मे हिचकते नही। यौन शोषण करने के पश्चात उससे कहते हैं तुम मेरी बेटी जैसी हो पर बेटी नहीं। 'कामगार अधाडी' की नौकरी छूटने के पश्चात अकस्मात नमिता मैडम अजना वासवानी के सम्पर्क मे आती है और वही से आरम्भ होती है यात्रा एक नई दुनिया की। एक ऐसी दुनिया की जो एक मजदूर की बेटी के लिए अपरिचित है और वह उसी दुनिया मे खो जाती है। मैडम का आभूषणो का व्यवसाय है। सजय कनोई थोक व्यापरी है–खरीददार । आभूषणो के प्रदर्शन के लिए मैडम को किसी भी माडल से अधिक सौन्दर्य, सुगढता नामिता मे दिखती है और वह उसे मॉडल बनाकर कनोई के सामने पेश करने मे सफल होती है। यहीं से कनोई और नमिता की निकटता बढती है जो देह के खेल मे खत्म होती है। एक मजदूर की बेटी पूजीवादी व्यवस्था मे बह जाती है। देह की जिस उन्मुक्तता को वह अनुचित मानती है स्वय खुलकर उसमे लिप्त हो जाती है। कनोई नाटकीय ढग से अपनी पत्नी की बुराई करके उसे हासिल करता है और

एक रखैल का दर्जा देता हुआ उससे पुत्र पाना चाहता है। यह बात उद्घाटित हो जाने के पश्चात नमिता गर्भ से मुक्ति पाती है और अपनी पुरानी दुनिया मे लौट आती है । यह उपन्यास पूजीवादी व्यवस्था का निकृष्ट रूप मालिको और मजदूरो के मध्य शीषर्क और शोषित के रूप मे दिखता ही है लेकिन वहॉ यूनियन प्रतिरोधी स्वरूप मे मौजूद है और मालिको को उसका अहसास है।

आज नयी बाजार ब्यवस्था मे विवश लोगो को मैडम और कनोई द्वारा किस भॅाति इस्तेमाल करके फेक दिया जाता है उस स्थिति का यथार्थ परक चित्रण उपन्यास मे मिलता है।

उपन्यास मे अनेक उपकथाए हैं लेकिन वे मूल कथा को गति देती हैं बाधक नही है। यह कहना उचित होगा कि आवा' मे विषय की विविधता है और यह विविधता की उसकी विशेषता है।

स्त्री विषयक चिन्तन

सन् 1975 मे प्रथम विश्व महिला का आयोजन मैक्सिको मे हुआ था। इस सम्मेलन के उदात्त विषय साम्यता विकास और शान्ति के रहे जिसमे पॉच हजार से भी अधिक महिलाओ ने भाग लिया था। उसके पश्चात 1980 मे कोपन हेगन तथा 1985 मे नैरोबी मे आयोजित सम्मेलनो मे अधिकाधिक सख्या बढती गयी और नैराबी सम्मेलन के समापन पर सदस्य राज्यो ने सकल्प किया कि महिलाओ को विभिन्न क्षेत्रो मे आगे बढने हेतु कार्य सचालित किये जायेगे। [1]

दस वर्ष बाद नारी पर बीजिग मे विश्व महिला सम्मेलन हुआ जिसमे 185 सदस्य देशो की तथा लगभग तीस हजार गैर सरकारी सस्थाओ ने भाग लिया। इस सम्मेलन मे स्त्री' विषय थी। महिला की

स्थिति पर सर्वांगीण दृष्टि से इतना विचार विवेचन हुआ इतनी चर्चा इसके पूर्व कभी भी नही हुई थी इस वीजिंग महिला सम्मेलन ने पूरे विश्व की नारी जाति को विशेष ऑख' प्रदान की।

इन सबका यहाँ विस्तार से उल्लेख करने का कारण यह है कि बीसवी शदी के अन्तिम दशक हिन्दी मे लिखे गये उपन्यासो की पृष्ठभूमि मे वे स्थितियॅा कारण बनी। स्त्री' और स्त्री का विविध रूप मे विविध कोनो से विविध स्तर पर होने वाला शोषण उसकी पीडा शारीरिक और मानसिक यातनाए उपन्यास का मुख्य विषय बना। स्त्री लेखिकाओ ने स्त्रियो की उन तमाम समस्याओ को सामने लेकर आयी जो अभी तक परदे मे थी।

स्त्री की नियति और उसके उत्पीडन को रोकने के लिए जितना महत्वपूर्ण कान्तिकारी मानवीय कार्य सीमोन द वोउवार ने किया वह स्त्री अस्मिता मुक्तिा के लिए दुनिया भर मे पहला काम था। जिसका असर आज अतिम दशक के उपन्यासो मे दिख रहा है। स्त्रियो ने अपनी लेखनी के द्वारा महिलाओ की मौन पीडा को वाणी दी है।

अन्तिम दशक मे महिलाओ द्वारा लिखे गये उपन्यासो मे मुख्य विषय स्त्री ही है। उन्होने उसके सघर्ष को ही रेखाकित किया है। स्त्री विषयक चिन्तन– छिन्नमस्ता' मे पूरी प्रबलता के साथ मौजूद है। इसके केन्द्र मे प्रिया नाम की नारी है जो कि निरन्तर शोषित है।

इतिहास साक्षी है कि पुरूष ने स्त्री को जिन दो प्रमुख मोर्चो पर लगातार कुचला है उनमे एक है अर्थ और दूसरा है सेक्स। आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर होने के लिए सघर्ष करती हुई स्त्री महिला लेखिकाओ की प्रिय थीम है परन्तु इसमे अक्सर स्थिति और समस्या कम चिन्तन

[1] दसतावेज स डा0 विश्वनाथि तिवारी जनवरी–मात्र 1999 विसवीं शती का अनितम दशक'सत्री उपनयासकार

मनन और बौद्धिक विश्लेषण (कभी–कभी फार्मूलो और किताबी विचारो के आधार पर) अधिक रहता है।[1]

कुछ लेखिकाओ ने अपने उपन्यास के माध्यम से देश–विदेश की परिस्थितियो का सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन किया है और उनकी अनुभव समृद्धि ने दिशा निर्देश किया है। दूरदर्शन और प्रसार माध्यमो के कारण और 'ग्लोबलाइजेशन' के परिणाम स्वरूप अधिकाश लेखिकाओ के उपन्यासो मे नारी के सहते भोगते पीछे छोडते और आगे बढते विविध रूपो और समस्याओ का व्यापक स्वाभाविक और विश्वसनीय रूप प्रस्तुत है।

सीमोन द वोउवार ने कहा है समानता का अर्थ एक रसता और एकाकार होना नहीं है। स्त्री और पुरूष के बीच मौलिक आधार भूत भेद तो रहेगे ही वीसवी शती के अन्तिम दशक मे लेखिकाओ ने उपन्यासो मे स्त्री से जुडे विविध आधारभूत स्थितियाँ और उससे जुडे विविध पक्ष और समस्याये उनमे से उद्भुत अनेक प्रश्न हैं– उनको विस्तार से कहिये या उन पक्षो को चीथ–चीथ कर सामने धर दिया है। उनके विचारो मे बडी तल्खी है। स्पष्टता और सहजता है। उसका रूप इतना अधिक सवेद मन को झिझोड देने वाला हैं।

विसवी शदी के अन्तिम दशक मे इन लेखिकाओ के उपन्यासो मे स्त्रीं जीवन से जुडी अनेक बातो का बेबाक किसी भी प्रकार का लाग–लपेट न रखते किया गया वर्णन सिर्फ मन को अभिभूत ही नहीं करता उससे निपटने के लिए प्रवृत करता है ताकत देता है और स्त्री विषयक चिन्तन भी दस दशक के उपन्यासो मे अधिक हुआ है।

---

[1] कथा और नारी सन्दर्भ डा निर्मला जैन हस जुलाई 1994 पृ 4

सन् 1930 मे शरतचन्द्र ने नारी का मूल्य निबन्ध लिखा है जिसमे वे लिखते हैं समाज का अर्थ है पुरूष। उसका अर्थ नारी नही है स्त्री की निष्कासित अस्मिता का कटु सत्य उस समय का नही हमारे आज के अपने समय का है और इतिहास का भी सच है। मनुष्य की परम्परा को सुरक्षित रखने मे स्त्री की केन्द्रीय भूमिका होने के बावजूद पुरूष आज भी समाज के केन्द्र मे है और स्त्री परिधि मे। निर्मला सुमन रत्तन' के रूप किचित बदले है। पहले की स्त्री लात घूसे का प्रहार सह रक्त से लथपथ हो अपने भाग्य अपने कर्म को दोष देती रहीं वहॉ आज वह तन कर खडी हो गयी है। वह पुरूष का नही उसके उस छद्म मुखौटो का प्रतिकार कर रहीं है जो मर्दानगी के नाम पर गढा गया है और जिसके पीछे झूठी अह की भावना और उत्पीडक प्रवृत्ति के अलावा कुछ भी नही है। नारी पीडन की वाह्य परिस्थितियो मे परिवर्तन नही आया परन्तु अपनी नियति के प्रति नारी का अपना दृष्टिकोण बहुत कुछ बदल गया है। अब वह केवल पुरूष की प्रताडना और प्रवचना के सम्मुख विवश हो आत्म समर्पण नहीं करती अपनी पूरी शक्ति के साथ उसका प्रतिरोध करने की ताकत भी रखती है।

ठीकरे की मगनी' उपन्यास की महरूख–जिसके लिए मर्द न जिदगी की धुरी है न खिडकी। कोई मजबूरी कोई मुसीबत नही आन पडी है उस पर, जो वह इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दे। उसका अपना व्यक्तित्व है अपनी अस्मिता है जिस पर वह ऑच नही आने देने के लिए जीवन भर सघर्ष करती है। यह आज की नारी चेतना है जो अपने को खोकर और कुछ भी पाना नहीं चाहती।

स्त्री का सिर्फ सुशिक्षित होना और आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर हो जाना ही पर्याप्त नही है। पुराने जड सस्कारो के स्थान पर कुछ नवीन गढने की भी जरूरत है। चीन जापान, अमेरिका और जर्मनी जैसे देशो से

आज की पढी–लिखी स्त्री सीख रही है बदल रही बीसवीं शदी के अन्तिम दशक की लेखिकाओ ने बडी सूक्ष्मता से अध्ययन किया है देखा है जाना है परखा है और उपन्यासो के चरित्रो द्वारा उन विचारो को माने–मनवाने की पहल की है। फिर चाहे इदन्नमम' की बऊ मदा' कुसुम भाभी छिन्न मस्ता' की प्रिया आओ पेपे घर चले की कैथी हो या पीली आधी की पदमावती। सारे पात्र सघर्ष करके पहचान पायी जाती है। प्रेरणा देते है।

आज व्यक्ति प्रगति विकसित और बौद्धिक ऊँचाई पर पहुँच गया है पर भीतर से खोखला हो रहा है ऊपर से रूढिया तोडने का मात्र दिखावा कर रहा है पर नारी के प्रति उसकी दृष्टि नहीं बदली है। वही अह एव वही भोग परक हिस ही अधिकार भावना–कोई फर्क नहीं। हॉ इतना अवश्य हुआ है कि शोषण का तरीका बदल गया है अब वह बालिका की गर्दन दबाकर लक्ष्मी आयी है लौटा दो' का आदेश नही देता। गर्भ मे ही उस भ्रूण को समाप्त कर देता है। बीसवीं शदी के अन्तिम दशक की लेखिकाओ ने ऐसी स्त्री विरोधी स्थितियो को खुलकर व्यक्त किया है।

फ्रेन्च केडेडियन लेखिका क्लेट मार्टिन' अपने आत्म कथात्मक उपन्यास इन एन आर्यन ग्लोव्हस' मे कहती है चलो जीवन का यह अध्याय भी पूरा हुआ। उसकी ताजी कब्र पर एक मुठ्ठी मिट्टी डालकर मेरे जीवन को नरक से भी बदतर बनाने वाले उस पुरूष को मैने सच्चे हृदय से माफ कर दिया मृत्यु जीवन की सारी कडुवाहटो को अपने साथ बहा ले जाती है। हॉ वह पुरुष मेरा पिता था ऐसा पिता कि जिसका नाम सुनते ही मासूम कबूतरी जैसी मेरी मॉ और हम दोनो बहने पत्ते की तरह कॉप जाती थी लेखिका फ्रान्स की क्लेट मार्टिन हो या बगला देश की तसलीमा नसरीन हो या पजाब की अमृता–प्रीतम या

वगाल की महाश्वेता देवी मैत्रेयी देवी हो या हिन्दी की प्रभा खेतान मृदुला गर्ग चन्द्रकान्ता या मैत्रेयी पुष्पा हो – सभी ने स्त्रियो के प्रति पुरूषो के जुल्म और उत्पीडन का चित्रण किया है।

मृदुला गर्ग के कठगुलाब मे मरियाना के शब्द है औरत होना बिडम्बना को जन्म देता है नहीं औरत होना एक विडम्बना है नहीं नही औरत खुद एक विडम्बना है। जहॉ औरत होगी वहॉ विडम्बना जन्म लेगी ही– मरियाना के इन शब्दो मे औरत और मन की मूलभूत सरचना से जुडे कठोर यथार्थ को एक क्षण के लिए भी अनदेखा नही किया जा सकता।

पुरूष भोगे और स्त्री भुगते यह इस दशक की स्त्री को मान्य नहीं। अब वह बन्धनो के विरोध मे खडी हो गयी हैं। वह मातृत्व–एक दो तीन चार एक के बाद शिशु को जन्म देती है उस बधन मे जकडी और फसी लाचार महिलाओ को धिक्कारती है। कठगुलाब मे स्मिता और अमिता की बात चीत है मुझे यह परातन औरतनुमा छल प्रपच पसद नही। दो टूक बाते करने का साहस हो तो मुझसे दोस्ती करना बरना अपना रास्ता नाप। [1]

स्पष्ट है कि मृदुला गर्ग कहती हैं कि स्त्री का शरीर उसकी अपनी मिल्कियत है उसके देह पर उसका अधिकार है। वह चाहेगी तभी पुरूष उसका उपभोग कर सकता है। प्रभा खेतान 'पीली ऑधी में पुरूष के निर्मम और विलासी चरित्र को उद्घाटित कर के रख देती है। जरीदार ओढनी' दरअसल उस परम्परा का बोझ है जिससे मुक्त होने मे ही उस समुदाय की मुक्ति है।

---

[1] पृ 172

स्त्री की सार्थकता सुख खोजने मे नही त्याग मे मानने वाले परम्परागत विचार चौखट को आज की स्त्री ने तोडना शुरू कर दिया है। छिन्नमस्ता' की प्रिया और आओ पेपे घर चले की कथावस्तु और उसके पात्र उनके सवाद एक तीक्ष्ण तिलमिला देने वाली अभिव्यजना है। स्त्री चाहे मारवाडी रूगटा गुप्ता परिवार की हो या बुदेलखण्ड की या अतरपुर के जाट परिवार की। लूटी जाने की पीडा उसकी अपनी है। छिन्नमस्ता की प्रिया स्त्री होने की जकडनो के खिलाफ निरन्तर सघर्ष करती हुई स्वय होने तक की यात्रा तय करती हैं सबसे टकराती है भिडती रहती है लडती रहती है। मैने दु ख झेला है। पीडा और त्रासदी मे झूलती हूँ। जिस दिन मैंने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया उसी दिन उस स्वीकृति के बाद मैने खुद को एक बडी गैर जरूरी लडाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मो के सामने सलीब पर लटकते मैंने पाया कि मैं अब पूरी तरह जिदगी की चुनौतियो का सामना करने के लिए तैयार हूँ। [1]

प्रिया की जिदगी एक आधुनिक पढी–लिखी युवती के आभिशप्त जीवन की त्रासद गाथा है। आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न कहे जाने वाले समाज मे भी एक शिक्षित और कर्तव्यी स्त्री के जीवन की भीषण सच्चाई है। चाक' की सारग, छिन्नमस्ता' की प्रिया, पीली आधी' की पद्मावती कठगुलाब की स्मिता सभी इस सच्चाई से जुडी है।

बीसवी शदी के अन्तिम दशक की स्त्री उपन्यासकारो के उपन्यासो मे यह तथ्य उभर कर सामने आया है कि औरत त्रासदी और असुरक्षा के मूल मे उसकी नारी देह है। माता होना यही उसकी सबसे

---

[1] (छिन्नमस्ता पृ10)

बडी कमजोरी है। सतान से वह इस तरह चिपटी रहती है जैसे शरीर और उसकी परछॉई। अन्यथा चाक की सारग क्या कभी सर झुकाती? आखिर सन्तान यह तो उसके शरीर से जुडा है मन से जुडा है नस–नस मे बहते रक्त से जुडा है। बीसवी शदी की स्त्री उपन्यासकारो ने अपनी रचनाओ मे स्त्री को अधिकार अस्मिता स्वय को पाने और सुरक्षित रखने की दिशा मे नारी सघर्ष के विभिन्न स्तरो को प्रस्तुत किया है।

अन्तिम दशक के उपन्यासो विशेषरूप से आवा' वेतवा बहती रही इदन्नमम चाक–मे महिलाओ की सघर्ष जुझारू बृत्ति से टकराना स्त्री को एक नई छवि प्रदान करता है। बेतवा बहती रही' की उर्वशी की पीडा वहॉ शुरू होती है जब उसे उसके पिता के उम्र के व्यक्ति से ब्याह के लिए विवश किया जाता है। वह विधवा युवा बहू का विवाह देवर उदय से करवा देती है कहती है– अन्याय वह नही होने देगे हमारे रहते अनर्थ नही हो सकता। [1]

इदन्नम्' मे बऊ' अपनी पोती की सुरक्षा के लिए सघर्ष करती है और चाक' मे समय की गतिमानता मे चाक से समान ऊपर से नीचे नीचे से ऊपर कभी दबती कभी तनती कभी रोती कभी गरजती, दहाडती सारग के रूप मे स्त्री का खरा रूप व्यक्त है। सारग दिल–दिमाग से बदल रही है। सारग प्रतीक है तीव्र गति से होते सामाजिक परिवर्तन का। सारग पत्नी वहू, भाभी तथा मॉ सब भूमिकाओ मे हमे मिलती हैं पर आखिर मे वह चन्दन की मॉ है। उसमे आया हुआ परिवर्तन आज की पढी लिखी नारी मे आया परिवर्तन है। यह परिवर्तन विचार है– अब स्त्री दब्बू भी नही और भागने वाले भी नहीं। अब वह दबी जबान, दरवाजे के आड से नही दरवाजे के चौखटे पर घर ऑगन के बीच खडी रहकर गरज कर

---

[1] पृ 42

अपनी बात कहती है यह सामाजिक परिवर्तन है। इन उपन्यासो मे स्त्री विषयक कठिनाइयो का वर्णन ही नही जीवन के खरे रूप और उसकी भयानकता और उससे उबरने के मार्ग सुझाने की दिशा मे स्त्री उपन्यासकारो के उपन्यास महत्वपूर्ण भूमिका निवाहते है। एक पत्नी के नोट्स' मे ममता कालिया ने कहा है कि बाहरी दुनिया के दबाव और शाश्वत दायित्व आज नारी को जटिल आत्मसघर्ष का पाठ पढा रहे हैं। आओ पेपे घर चले की आइलिन कैभी अग्नि सभवा की आइवी आदि पात्रो के द्वारा प्रभा खेतान की धारणा है कि आधा हिन्दुस्तान ही नहीं आधी दुनिया पुरूष शोषण का शिकार है। औरत कहॉ नही रोती? और कब नहीं रोती? वह जितना ही रोती है उतना ही औरत होती जाती है। जाहिर है कि रोने से नसीब नही बदलेगा सघर्षशील बनकर ही उसे अपनी राह खुद बनानी होगी राह खोजनी होगी राह बदलनी होगी। अन्तिम दशक की लेखिकाओ ने इस ओर दिशा निर्देश दिया है।

वीसवीं शदी के अन्तिम दशक मे स्त्री उपन्यासकारो ने अपने कृतियो पर समय की मुहर लगाई है ये समय के सच्चे दस्तावेज है जिसमे भारतीय नारी का चित्रण हुआ है।

आवा' आधुनिक समाज मे स्त्री चेतना स्त्री स्वतनत्रता और नारी की प्राय सभी समस्याओ के चित्र को वास्तविक रूप में हमारे समक्ष रखता है।यह नारी स्वातत्र्य की मीमास का उपन्यास है।

आवा' की प्रमुख पात्र नमिता है जिसके चारो ओर पूरी कहानी घूमती है। वह उपन्यास मे एक जगह मुखर होकर अपनी मॉ से कहती है– देखोगी एक दिन अच्छी नौकरी ही नही करूँगी छूटी पढाई भी पूरी करूँगी' उसमे चेतना का एक बीज अकुरित होता है।

'आवॉ' के नारी पात्र निर्बल भी हैं और सबल भी। वे पहले समर्पण करती है और फिर जागरूक होकर अन्याय और शोषण का

सामना करती है। चित्रा जी ने उपन्यास मे कही भी नारी समस्याओ को छोडा नही है। उनके उपन्यास की कथा के साथ–साथ नारी विमर्श भी चलता है। वे नारी की समस्याओ की तरफ बार–बार ध्यान आकृष्ट करती हैं। चित्रा जी समाज मे नारी की स्थिति को जानती भी हैं और समझती भी हैं इसी कारण उन्होने आवा' मे नारी विमर्श को उससे जुडे हुए प्रश्नो को प्रस्तुत किया है पूरे दायित्व और चेतना के साथ।

मैत्रेयी पुष्पा ने इदन्नमम' मे जो नारी चरित्र हैं मन्दाकिनी कुसुमा भाभी और मन्दा की बाल सखी सुगना वह सब कही–कही समाज मे पुरूष के समक्ष चुनौती बनकर उभरते हैं।

मदाकिनी अपने गॉव सोनपुरा मे बाल सगिनी सुगना और श्यामली मे कुसुमा भाभी से अन्तग रूप से जुडी रहती है। कुसमा भाभी का चरित्र आत्म निर्णय और दृढ सकल्पो से निर्मित नारी चरित्र है। पति यशपाल की परित्यक्तता कुसुमा भाभी (दाऊ जू) अमर सिह से प्रेम करती है और प्रेम के फलस्वरूप प्राप्त सतान पर गर्व भी करती है। और यह सब उसके पति के ऑखो के सामने होता है। ऐसी नारी का चित्र पुरूष के सामने चुनौती ही है।

कुसुमा भाभी सामाजिक वर्णनाओ पर खुली चुनौती बनकर उभरती है लेकिन यही साहस उसकी बालसगिनी सुगना मे नही आ पाता।

मन्दाकिनी घटना क्रमो मे बडे सहजढग से धीरे–धीरे उभरती है। स्त्री होना मन्दाकिनी का आत्म सघर्ष है। कैलाश मास्टर द्वारा किया गया बलात्कार सयोग से उसकी मानसिक ग्रन्थि बनते–बनते रह जाता है। यहॉ कुसुमा भाभी का सहारा उसकी ताकत बनता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने बीसवी सदी के अन्तिम दशक के हिन्दी लेखन मे नारी के अबलत्व और उसकी निरीह रागमयता' के अध स्वीकार और

वेशर्त समपर्ण नकारते हुए राष्टकवि और कमायनीकार को काफी पीछे छोड दिया है। कुसुम और दाऊ जी (अमर सिह) के अनैतिक सम्बन्धो के प्रसग मे मानसकार की बहु परिचित पक्तियो –अनुजबधू भगिनी सुतनारी। सुनिसठ कन्या समयेचारी। से भिडते और टकराते हुए जिस तरह के मन्दा और कुसुमा के बहाने दिये है उससे पुरूष प्रणीत व्यवस्था और वर्चसव पर सीधा हमला होता है– कुसुमा ने बीच मे ही रोक दिया– विन्नू हमे एक बात समझाओ अरथाओ किये रिस्ते–नाते सम्बन्ध और मरजाद किसने बनाई? किसने सिरजी है बन्धनो की रीत?जो नाम लेती हो उनमे मनुव्यास ने? रिसियो मुनियो ने? देवताओ कि राच्छसो ने?

मन्दाकिनी पढना रोककर भाभी को गौर से देखने लगी। क्या उत्तर दे इन सवालो का ? भाभी ये रीति–रीवाजे उन्होने ही बनाये है जिनने ये किताबे लिखी हैं जिनके ऊपर ये किताबे लिखी गयी है।

गलत बनायी है मन्दा। एकदम पक्षपात से रची हैं। बताओ तो अगिन को साच्छी धरके गॉठ बॉधने का क्या मतलब? पति और पत्नी को साथी–सहचर कहे तो विरथा है कि नही?

कितेक उलटा है विन्नू, वेअरथ। यह सम्बन्ध वडा थोथा है।

लो एक खूँटै से बॉधा पागुर दुसरा सरग मे उडता पछी। ढोर और पछी सहचर नही हो सकते मन्दा [1]

आधुनिक सत्री की बदलती सोच और पुरूष प्रधान समाज व्यवस्था के प्रति विद्रोह को प्रकट करने का साहस अन्तिम दशक की लेखिकाओ की मुख्य विशेषता हैं।

---

[1] इदननमम् प 83

प्रमुख समस्याये

हिन्दी मे उपन्यासो के आरम्भ काल से ही मानवीय समस्याओ पर ध्यान केन्द्रित किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी मे जिस रूप मे कविता मे जन–जीवन के वृहत्तर सन्दर्भ आये उस रूप मे उपन्यासो मे नही इसलिए या तो उपन्यास घर परिवार की दुनिया तक सीमित रहे या जासूसी ऐयारी और तिलस्मी दुनिया तक लेकिन प्रेमचद ने वीसवी शताब्दी के दूसरे दशक मे ही जब कविता मे छायावाद चल रहा था तब यथार्थ वादी समस्याओ से उपन्यास का ऐतिहासिक चरण आरम्भ किया–यह हिन्दी उपन्यासो के लिए वरदान सिद्व हुआ। प्रेमचद ने नायक की परिभाषा ही नही बदली बल्कि साहित्य के सरोकारो को जन–जीवन के यथार्थ से जोडा जिसे उनके बाद के उपन्यास कारो ने व्यापक फलक प्रदान किया।

वीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक मे स्त्री दलित मनुष्य की गरिमा और सघर्ष को लेकर अनेक महत्वपूर्ण उपन्यास आये। खासकर महिला लेखिकाओ ने तो स्त्री की सम्पूर्ण समस्या को अपने उपन्यासो के माध्यम से समाज के सामने नगा सच' की तरह रख दिया।

अन्तिम दशक के उपन्यासो यह भी दिखाया गया है कि कैसे कैसे स्त्री शोषित होती है। भारतीय समाज मे स्त्री की स्थिति दशा एव भूमिका का प्रश्न बेहद ज्वलत प्रश्न है जिसे नारी लेखिकाओ ने उटाया है। 'क्या उस पर न सावन सूखे न भादो हरे' वाली कहावत ही चरितार्थ होती रहेगी या कुछ परिवर्तन आयेगा। पुरूष समाज ने स्त्रियो के स्वतत्र विकास के लिए क्यो कोई सम्भावनाए नही छोडी। स्त्री मे ज्ञान, विवेक, प्रतिभा और परिस्थितियो से जूझने की ताकत है, लेकिन पग–पग पर पुरूष उसका शोषण करता है। विचित्र स्थिति तो यह है कि तमाम

विपरीत परिस्थितियो के बावजूद वह उनसे टकराती जूझती हुई वह अपनी जगह जमीन को तलाशने मे समर्थ हुई है।

स्त्री जितनी आजाद हुई है कहना यह कहना है कि वह वैचारिक आर्थिक शारीरिक सामाजिक राजनीतिक रूप से अधिक आत्म निर्भर हुई है या उस दिशा की ओर अग्रसर है। आर्थिक स्वतन्त्रता सिर्फ पैसा कमाना न होकर उसे बरतना भी है और न बरतने देना भी। वस्तु करण के इस समय मे स्वतन्त्रता के नाम पर (टीक सतीत्व की तरह) स्त्री अपने को वस्तुकरण का शिकार होने से बचा पायेगी ? यानी क्या वो अपने को शरीर मे घटा दिये जाने से रोक पायेगी [1]

वास्तविकता यह है कि भरतीय सास्कृतिक वर्चस्व मे स्त्री स्वतन्त्रता के लिए कोई स्थान नही रहा है। उसे पराश्रित पराधीन बनाने के लिए पुरूषो ने जो हजारो वर्षो से ज्ञान–विज्ञान कला सस्कृति साहित्य दर्शन चितन की दुनिया से दूर रखा वह क्यो ? क्या इसलिए कि वे शिक्षित चेतन सजग आत्म निर्भर न बन सके वह अपने अधिकारो की मॉग न करने लगे।

अन्तिम दशक की स्त्री लेखिकाओ ने स्त्री की सामाजिक समस्या मानसिक समस्या वैवाहिक समस्या साम्प्रदायिक समस्या उनकी परम्परागत समस्याओ को उजागर किया। कैसे एक स्त्री का इन विविध आयामो से शोषण होता है इन समस्याओ का यथार्थ चित्रण मिलता है।

अलका सरावगी का कलिकथा वाया बाईपास' इस रूप मे इतिहास प्रस्तुत करता है कि आगे आने वाले समय के लिए मिशाल बने। कलिकथा वाया बाईपास' के किशोर बाबू अपने इतिहास के उस पृष्ठ को

---

[1] जयोत्सना मिलन लकीर के इस तरफ स्त्री पृ0 58

ढूढते है जो मारवाडियो की कजूसी धन कमाने की अधी लालसा और देश विरोधी छवि के रूप मे केवल बगाल ही नहीं बल्कि पूरे देश मे विद्यमान है। उन्हे लगता है कि सिराजुद्दौला के साथ जिन लोगो ने गद्दारी की थी उसमे उनके पितामह तो नही थे। किशोर बाबू इतिहास की एक एक घटना को पढते जॉचते हैं। उन्हे उस अग्रेज टैगर्ट से घृणा है जो उनके पितामह की देश विरोधी गति–विधियो मे सहायक था। उन्हे हर उस बात से चिढ है जो धन कमाने की घिनौनी चाल के रूप मे मारवाडी चल रहे थे। कलकत्ता की स्थापना और मारवाडियो की अपनी छ पीढी का इतिहास लिखकर अलका सरावगी ने न केवल मारवाडियो के निजी जीवन का चित्र खीचा है बल्कि देश की आजादी और उसके बाद के पतन का भी सघन चित्र बनाया है जिसमे शातनु जैसे सुभाष बाबू के अनुयायी भी है जो स्वाधीनता के बाद एन जी ओ और अन्य गति विधियो मे लिप्त होकर धन कमा रहे हैं।

चाक विल्कुल दूसरी मन स्थिति और जीवन प्रसगो को लेकर लिखा गया उपन्यास है। स्त्री की स्वतन्त्रता की पुरजोर मॉग से और बेचैनी से प्रारम्भ हुआ यह उपन्यास अतृप्त यौनइच्छा मे जाकर समाप्त होता है। लेखिका मैत्रेयी पुष्पा स्वय महिला लेखन मे अपनी टिप्पणियो और लेखन से स्वतत्र पहचान बना चुकी है। उनके पास गॉव के अनुभव है गॉव की भाषा एव मुहावरा है। स्त्री को भी यौन सम्बन्धे मे स्वतन्त्रता चाहिये जैसे कि पुरूष को प्राप्त है यही कारण है कि अपनी मौसेरी बहन रेशम की हत्या का बदला लेने के लिए कटिवद्ध सारग स्कूल अध्यापक से देह सम्बन्ध बनाने मे ही अपनी स्वतत्रता समझती है। बहन की हत्या से उसका पूरा परिवार दु खी है उसकी लडाई मे ससुर और पति भी शामिल होता है। यहॉ जिस स्त्री स्वतन्त्रता की अदम्य इच्छा से उपन्यास का ताना–बाना बुना गया है, वह आकर्षित करने वाला है। इस तरह वे स्त्री

स्वतन्त्रता की पुरजोर माग करने वाली वे पहली महिला नही है बल्कि छटे दशक से ही महिलाओ की यह मॉग रही है। यह उनकी मुख्य समस्या है। स्वतत्रता प्राप्त करने के लिए ही उन्होने चाहे सही रास्ता अपनाया चाहे गलत।

इदन्नमृम के बारे मे रामधारी सिह दिवाकर' के बारे मे लिखा है– मैला ऑचल जिन्दगीनामा मुर्दाघर आदि उपन्यास अलग–अलग अचलो की जीवन स्थितियो के कथात्मक उपस्थापन ऑचलिकता' की अवधारणाओ को तोडते और बनाते हुए जिस वृहत्तर मानवीय बोध से जुडते है मैत्रेयी पुष्पा के सद्य प्रकाशित उपन्यास इदन्नमम् को भी उसी अनुरूपता से देखा जाना चाहिये लगता है आचलिकता के बहाने समाजशास्त्रीय अध्ययन की कथात्मक प्रस्तुति भी बद्धमूल होती जा रही है इसके अन्य कारण भी है लेकिन प्रत्यक्षत' अचलो की सनातन पीडा और उससे मुक्त होने की छटपटाहट है।[1]

सामती समाज मे परिवार से बाहर हिसा उत्पीडन दमन और शोषण से अपनी अस्मत और अस्मिता का बचाव करने के लिए औरते परिवार के पुरूष मुखिया की मॉ बहन बेटी पत्नी प्रेमिका, या रखैल के रूप मे सुरक्षा सरक्षण तलाशती है लेकिन परविार के पुरूष सत्ता के हिसक असमर्थ या न होने पर स्त्री प्राय असुरक्षित और असहाय महसूस करती है और ऐसे मे परिवार से बाहर किसी अन्य पितृसत्तात्मक पुरूष की शरण खोजती है। अधिकाश स्त्रियॉ परिवार के भीतर बाहर (सुरक्षित होकर भी) आहत या अपमानित होती या की जाती रहती है या जीवन मृत्यु के बीच दुविधाग्रस्त औरते सत्ता पुरूष के दुर्ग मे घिरी–घुटी ऐसी ही जीती मरती रहने के विवश है।

---

[1] हस अगस्त 1994 इदन्नमम्' आचलिक सन्दर्भो में उभरती नारी चेतना का अख्यान पृ 86

परिवार के भीतर बाहर सुरक्षा और सरक्षण की प्रक्रिया मे स्त्री जब पुरूषो के हाथो बार–बार छली जाती है तो अपने–अपने मनचाहे या उपलब्ध रास्ते खुद चुनती है या कोई और रास्ता मिलने तक ही पुरूष सत्ता के शरण मे रहती है। इदन्नमम्' की प्राय सभी प्रमुख महिला पात्र पुरूष प्रधान द्वारा निर्धारित (सही गलत नैतिक–अनैतिक) सम्बन्धो की हर नैतिक मर्यादा पर प्रश्न चिन्ह लगाती हुई परिवार की परम्परागत चारदीवारी को तोडती लॉघती देह और धरती के आर–पार देखती पुरूष पराधीनता से मुक्त जो होगा देखा जायेगा की चुनौती स्वीकारते हुए कदम–कदम पर लोक–जीवन मे यातना और उपेक्षा की शिकार होती यह औरत पराजित होकर समर्पण या समझौता नहीं करती।

मैत्रेयी इन सवालो को किन्ही विदेशी सन्दर्भो विचारान्दोलनो और किताबो के जरिये नहीं उठाती। उनके उपन्यास मे इस तरह की कोई दबी–छुपी विचारधारा भी दिखाई नही देती। मैत्रेयी की परम्परा मे यदि महादेवी वर्मा अमृताशेरगिल हैं तो अमृताप्रीतम और कमलादास भी। हिन्दी उपन्यासो मे यह बहस आजादी के आठ–दस बरसो मे उठ चुकी है कि सामाजिक नैतिकता की दृष्टि से स्त्री–पुरूष के लिए यदि अलग–अलग मानदण्ड और दो तरफे रवैये अपनाये गये तो यह बेमानी होगी और आगे का समाज इसे शायद ही अगीकार करे।

बीसवीं सदी के आखिरी बरसो की कथाकारो ने किसान की समस्या स्त्री की समस्या असकी आजादी और जमीन से जुडे आर्थिक सवालो को फिर से उठाते हुए बार–बार राष्ट्रीय आन्दोलन का वर्णन अपनी कथा मे किया है।

इसमे तो शुद्ध से एक ऐसी समस्या और चुनौती है जो धीरे–धीरे कथनक को उस दिशा की ओर ले जाती है जो बऊ और मन्दाकिनी के जीवन की प्रतिज्ञा सकल्प और सघर्ष की दिशा कही जा

सकती है। ऐसा निर्भय मन और अडिग सकल्प अगर इन दोनो के पास है तो इसका कारण उस विराट मे इनके अखण्ड विश्वास के चलते हे जो इनके चारो ओर हजारो सालो से सेनाओ की तरह खडा है। लेखिका ने हिन्दू, मुस्लिम सम्बन्धो की सघनता और नये राजनीतिक माहौल मे उसकी विकृति और त्रासद परिणति को भी मार्मिक और भावुक ढग से प्रस्तुत किया है।

नारी का मुक्ति सघर्ष' एक लम्बी इतिहास यात्रा है। उसका यह सघर्ष कभी आत्म–सघर्ष के रूप मे और कभी पुरूष सघर्ष के रूप मे प्रकट होता रहा है।सामाजिक और राजनैतिक सघर्ष की उसके मुक्ति सघर्ष मे पडाव बने हैं। इस सघर्ष युद्व मे वह प्राय ही पराजित हुई है कभी–कभी विजेता भी बनी है। मगर आज जब कि वह आत्म परीक्षण के लिए तत्पर है पुरूष के प्रश्नो का जबाब देने के लिए तैयार है स्त्री जीवन का हक–हिसाब करना जाग गयी है सब समझने लगी है सब कहने लगी है और सब लिखने भी लगी है तब जाकर कहीं उसके अस्तित्व को स्वीकारा भी जा रहा है। इसी स्त्री–अस्तित्व की स्वीकृति को लेकर सक्रिय चिन्तन यात्रा मे गतिशील प्रभा खेतान का उपन्यास पीली ऑधी और छिन्नमस्ता' मुक्तिकामी नारी की कहानी है।

पीली ऑधी' के सन्दर्भ मे दरअसल सामाजिक वर्चस्व के महत्वकम मे सर्वोच्च शिखर पर राजपुरूष था बाकी सब उसकी रियाया से अधिक कुछ नही। सूदखोर महाजन और व्यसायी की हैसियत बीच की कडी भर थी। समाज के निचले तबको का शोषण करके राजसत्ता की जरूरतो की भरपाई करने की भूमिका निबाहने भरकी । अपनी सामर्थ्यभर जब तक वह इस दायित्व का निर्वाहकर पाता था तब तक कुछ दूर तक सुरक्षित था बरना उसके पास घर–बार छोडकर पलायन करने के अलावा कोई रास्ता नही बचता था। राजनीतिक स्थितियो मे भी परिवर्तन होने पर

का उपयोग करने वाला। और शायद इसलिए सोमा गौतम को भूलना चाहती थी। जिसको उसने केवल झेला था सहन किया था मगर जिसको कभी जिया नहीं था।[1]

छिन्नमस्ता' मे भी स्त्री के अस्तित्व की उसके स्वतन्त्रता का सवाल उठाया गया है। किस प्रकार प्रिया अपनी स्वतन्त्र पहचान बनाती है कहॉ–कहॉ वह शोषित होती है और कैसे उबरती है अपनी निरीहता से।

साधन सम्पन्न उच्चवर्गीय सयुक्त परिवारो मे बेटी से बहू तक प्राय हर स्त्री तमाम भौतिक सुख–सुविधाओ के बावजूद अनाथ और असहाय सी व्यवस्था के सम्मोहन मे सुरक्षा खोजती हुई व्यवस्था का एक हिस्सा बनने की पूरी चेष्टा मे ही जिदगी विता देती है लेकिन छिन्नमस्ता' की नायिका अन्तत कहती है–'नरेन्द्र की व्यवस्था के सामने हार मानने का अर्थ यह नही हुआ कि तुम सारे मुकामो पर हार गयी। उसे वही छोड दो वह जहॉ है तुम खुद अपनी व्यवस्था बन सकती हो, अपनी जमीन' इस यात्रा मे लेखिका ने नारी स्वातत्र्य की भावना का वास्तविक रूप उद्घाटित करने के लिए स्थित और समस्या' का चिन्तन मनन और बौद्धिक विश्लेषण भी किया है।

उच्चवर्गीय सयुक्त परिवारो मे आर्थिक सत्ता के उत्तराधिकार की जटिलताओ के कारण ऊपरी तौर पर अभी भी सयुक्त परिवार बचे हुए है। भले ही अन्दर से उनमे छोटे–छोटे परिवारो की इकाइयॉ बन गयी हो या बनने की प्रक्रिया मे हो। छिन्नमस्ता' को उच्चवर्गीय सयुक्त परिवार के विषैले और दमघोटू वातावरण से निकलकर अपने व्यापार और पूजी कमाने, बढाने के बाद व्यक्तित्व के विकास या वौद्धिक और मानसिक

विकास के लिए हर सभव साहस(दु साहस) और प्रयास करती विद्रोही स्त्री की आत्मकथा या आत्मविश्लेषण या आत्म सघर्ष के रूप मे देखा जा सकता है। कुलीन परिवारो मे औरतो की सामाजिक आर्थिक और मानसिक स्थिति के मकडजाल को चीर–फाड कर देखने समझने सुधारने सुलझाने की मगलाकाक्षी मे किया गया यह एक गभीर समस्या शास्त्रीय अध्ययन है। हिन्दी उपन्यास की नायिका परिवार पूजी और परम्परा की चौखट लॉघ देशी–विदेशी सभी सीमाओ के उस पार तक– स्त्री पक्ष की वकालत' के साथ–साथ एक खतरनाक बौद्धिक विमर्श का जोखिम उठाती है।

चित्रा मुद्गल स्वय श्रमिक सगठन से जुडी हुई थी इसलिए उन्होने अपने उपन्यास आवा' मे एक मजदूर की बेटी और उसके जीवन से जुडी हुई समस्याओ को उठाया है।

अपने उपन्यास आवा' मे चित्रा जी ने नारी विमर्श के कई स्तरो को उभारा है इसमे प्रमुख हैं आर्थिक सामाजिक दैहिक मानसिक वैवाहिक साम्प्रदायिक व परम्परागत्त विमर्श। चित्रा जी ने गौतमी व नमिता के माध्यम से आर्थिक विमर्श को दिखाया है। सामाजिक स्तर पर नारी–विमर्श समाज मे स्त्री की दशा उसका स्थान और उसकी समस्याओ का चित्रण भी चित्रा जी ने किया है।

यह एक वृहद उपन्यास है इसलिए नहीं कि भौगोलिक अर्थो मे वह समाज के बडे भाग की जानकारी देता है यह ट्रेड यूनियन के राजनीतिकरण भीतरी सत्ता लोलुपता और भ्रष्टाचार से अवगत कराता है।

---

[1] पीली ऑधी पृ 249

आवॉ मे चित्रा जी ने स्त्री–पुरूष के वैवाहिक सम्बन्धो तथा उनके परस्पर सम्बन्धो के बारे मे खुलकर चर्चा की है उन्होने गौतमी सजय कनोई सिद्धार्थ और किशोरीबाई के माध्यम से स्त्री–पुरूष के परस्पर व वैवाहिक समस्याओ का चित्रण किया है एक ओर जहॉ पुरूष–स्त्री को देह के ऊपर नहीं स्वीकारता वही दूसरी ओर स्त्री–पुरूष का पवित्र प्रेम भी है जो कि किशोरीबाई के प्रेम मे है। आवा' मे पुरूषो की विकृति मानसिकता और अभद्रता से स्त्रियो को क्या–क्या समस्याये होती हैं उनको खुलकर प्रकट किया गया है। पुरूष की विकृति मानसिकता और अभद्रता का चित्रण हमे अन्ना साहब नमिता के मौसा स्मिता के पिता सिद्धार्थ व सजय कनोई मे दिखता है।

चित्रा जी ने इसमे स्त्रियो व मजदूरो के जीवन की समस्याओ की अत्यधिक सूक्ष्म पडताल की है।

स्त्री का जीवन ही नहीं उसकी भावनाए, कल्पनाए अनुभव आकाक्षाए जजीरो मे जकडी हुई है। निर्भीक स्त्रियो लेखिकाओ से समाज डरता है। इसीलिए उन्हे पितृसत्तात्मक नैतिक मूल्यो मे जकडी हुई शालीन पतिव्रता समर्पणशील स्त्रियॉ ही आदर्श की प्रतीक मानी जाती है। विद्रोही स्त्रियो से उन्हे डर लगता है, क्योंकि उनकी कलम उनके घिनौने अमानवीय चेहरो को बेनकाब करती है उनमे जागरूकता का एहसास होता है केवल वह स्त्री लेखिका स्त्री अस्तित्व की स्वतन्त्रता अस्मिता के लिए सघर्ष कर सकती हैं

मृदुला जी ने अपने उपन्यास कठगुलाब के माध्यम से स्त्री और पुरूष सम्बन्ध को लेकर नया दृष्टिकोण पेदा किया है इसमे की सारी स्त्रियॉ बजर हैं कठगुलाब है बॉझ है। और सारे पुरूष नामर्द, नपुसक और (नर–सुअर) हैं।

कठगुलाब' की मारियाना का यह कहना कि औरत खुद एक विडम्बना है' खास बात है समाज अपनी दोयम स्थिति का अहसास सदियो से जरीदार ओढनी की तरह कधो पर पडे परम्पराओ के बोझ को उतार फेकने मे अपनी मुक्ति तलाशने की कोशिश।

उपभोक्ता (भोगवादी) सस्कृति के दुष्चक मे धँसा पुरूष और उसका प्रतिनिधि प्रवक्ता (विपिन) मन प्राण से तो स्त्री को जीत नही सकता इस लिए दैहिक–भौतिक उपलब्धियो की प्राप्ति मे अन्य पुरूषो को हराकर स्त्री को हराने (जीतने) का अभिनय करता रहता है।[1]

पुरूष अपने अह की दृष्टि वश की वृद्धि अनित्य को नित्य बनाने के मोह और यौनानद के लिए स्त्री को देह और कोख तक ही जानता और समझता है इसके अलावा न समझना चाहता है और न समझाना। आनद के लिए स्त्री देह की सुन्दरता और वश वृद्धि के लिए मातृत्व की सार्थकता पर ही सारा शास्त्रार्थ शोध और सविधान रचा–रचाया है। दूसरी तरफ सत्ता और सम्पत्ति के उत्तराधिकारी(पुत्र) के लिए इतनी मइक्रो मेनीपुलेशन' या आर्टिफिशीयल हैचिग क्यो? क्योकि पुरूष को किसी स्त्री के माध्यम से खुद अपनी सतान चाहिए यानी ऐसा बच्चा जिसके बारे मे उसे जानकारी और विश्वास हो कि वह उसकी ही सतान हैं। सतान यानी असली उत्तराधिकारी या वैध पुत्र। यही तो पुरूष होने का उत्तराधिकारी प्रमाण पत्र है।

वर्षो पहले अपने मॉ–बाप की मृत्यु के कारण स्मिता अपने बहन नमिता के साथ रहती पढती हैं। जीजा के हाथो बलात्कार की शिकार होती है लेकिन प्रतिरोध का समुचित सामर्थ्य न होने के कारण कोई कानूनी कार्यवाही नही कर पाती। प्रतिहिंसा कि लिए ताकत और बल

---

[1] पृ 200

जुटाने के लिए अमेरिका जाकर समृद्ध होने का प्रयास करती है। शिक्षा और आर्थिक आत्मनिर्भरता हासिल करने के बाद उसकी समस्या समाप्त होने के बजाय बढी है क्योकि उसके अपेक्षाओ के अनुरूप नया पुरूष' अभी पैदा ही नही हो रहा है। मौजूदा सामती पूजीवाली समाज व्यवस्था मे ऐसे पुरूष के जन्म की कोई उम्मीद भी तो नही है। पुरानी नैतिकता के आदर्श पूर्णतया टूट–फुट गये है मगर नयी आदर्श समाज व्यवस्था और चेतना का विकाश नही हुआ है । जब तक व्यक्तिगत सम्पत्ति के उत्तराधिकार और विवाह से बच्चो की वैधता बनी रहेगी तब तक नये सम्बन्धो का स्वस्थ विकास नही हो सकता। मौजूदा परिवार व्यवस्था का बेहतर विकल्प सिर्फ समाजवादी व्यवस्था मे ही देखने को मिलता है, मगर पूजी पुत्रो को वह व्यवस्था कैसे रास आती या आयेगी।

स्मिता का अमेरिका जाकर समृद्ध होने का सपना मारियान से नारी–वादी विमर्श की ट्रेनिग ऑक्सफॉम परियोजना के तहत भारत वापसी, इसी परियोजना मे असीमा का सहयोग महत्वाकाक्षी मध्यवर्ग की इन स्त्रियो द्वारा नर्मदा को भी अपने साथ मिला लेना एक के बाद एक का परिवार से स्वतत्र होते जाना, प्राय सभी स्वतत्र स्त्रियों का मौन सघर्ष है।

कठगुलाब' की मूल समस्या श्रम और उत्पादन के श्रोतो से कटे और परोपजीवी लोगों के बजर' की कहानी है।

भाषा–शिल्प–

विचारो की अभिव्यक्ति भाषा मे होती है और विषय की अभिव्यक्ति शैली मे। भाषा से ज्ञात होता है मनुष्य क्या सोचता है और शैली से पता चलता है कि कैसे सोचता है। साहित्य मे भाषा और शैली पर बहुत विचार किया गया है। भाषा का प्रकरण तो स्वतत्र रूप से भाषा

विज्ञान का अध्ययन क्षेत्र ही बन चुका है। शिल्प जैसा प्रकरण भी भाषा–विज्ञान के ही अर्न्तगत शैली–विज्ञान जैसी शाखा का अध्ययन क्षेत्र निर्मित हो चुका है। यह जरूर है कि आधुनिक काल मे भाषा–विषयक अध्ययन पर अधिक जोर दिया गया है जो कदाचित् पहले कम था अब भाषा–विज्ञान की परिधि मे कथा–भाषा काव्य भाषा और नाट्य भाषा जैसे अध्ययन भी शामिल कर लिये गये है। कथा–भाषा के अन्तर्गत कहानी अख्यायिका और उसकी शिल्प प्रविधि के अध्ययन किये जाते हैं। भाषिक अध्ययन को इस बात के निर्णय के लिए आधार उपस्थित करते हैं कि किसे हम काव्य भाषा कहेगे और किसे कथा–भाषा। इसी तरह नाटय भाषा आलोचना भाषा और पत्र भषा के अन्तर को भी समझने और समझाने के प्रयास आधुनिक भाषा शास्त्रीय अध्ययन मे किये जा रहे है।

अब प्रश्न उठता है कि क्या लेखक या कथा लेखिका को अपने कथा लेखन मे क्या पहले भाषा शास्त्रीय अध्ययन में पारगत होकर तब लिखने बैठना चाहिये या फिर जब तक उसकी शिल्प–विधि से परिचय न हो जाय तब तक कलम उठानी ही नही चाहिये। साहित्य लेखन मे ऐसा नही होता है। किसी विधा के शास्त्र को समझकर उसमे उतरना एक विशेष आग्रहशील विवेके–यात्रा जरूर हो सकती है परन्तु कभी ऐसा आवश्यक नहीं कि प्रतिमान निर्धारित करके साहित्य की समझ विकसित की जाय। प्राय ऐसा हुआ है कि निर्धारित प्रतिमान पर रचा गया या लिखा गया साहित्य सर्वस्वीकार्य नही हो पाता सर्वजनीन नही बन पाता इसीलिए आग्रह मुक्ता बेहतर साहित्य और भाषा दोनों के लिए पहली शर्त है।

प्रभा खेतना का उपन्यास छिन्नमस्ता' और पीली ऑधी' मे बैचारिक आग्रहशीलता तो लक्षित की जा सकती है, परन्तु साहित्य के स्तर पर और विशेषत भाषा तथा शिल्प , विन्यास के स्तर पर वे आग्रह

मुक्त दिखलाई पडती है। बल्कि कहा जा सकता है कि मुक्त भाषा मे मुक्त विचारो की अभिव्यक्ति इन उपन्यासो का भाविक सौन्दर्य है। भाषा की दृष्टि से समकालीन हिन्दी उपन्यासो पर विचार किया जाय तो प्राय सभी उपन्यास इसी मुक्त भाषा विन्यास के सौन्दर्य खडे करते है। इसी अर्थ मे उन्हे नया भाषा के माध्यम से समाज की परख की जाती है और समाज के माध्यम से भाषा की सरचना। किसी समाज की गहरी जॉच पडताल के लिए भौतिक ऑखे ही पर्याप्त नही होती भाषा की ऑख उसे ठीक–ठीक कह देती है। इस दशक के कथा लेखको पास भाषा की समझदार ऑखे है। ये अनदेखा को देखा की तरह नही बल्कि देखे हुए को वास्तविक भाषा मे कहने की कोशिश करती है। वैसे साहित्य मे सब देखा हुआ ही नही कहा जाता परन्तु चाहे प्रत्यक्ष देखा के आधार पर ही नव समाज के सृजन का सपना देखा जा सकता है। आज जो सच लगता है या है वह कभी सिर्फ किसी के दिमाग मे सपना या केवल कल्पना रहा होगा। व्यक्ति और समाज दोनो की ही अपनी–अपनी सीमाए है अन्तर्विरोध और गतिरोध भी। समाज की मगल कामना के विना व्यक्तिगत महत्वाकाक्षाओ के जगल में एक न एक दिन आग लगने के अलावा दूसरी कोई स्थित या सम्भावना ही नही है। व्यक्ति के गौरवमय अतीत का कोई न कोई आदि' अवश्य है जिसके बाद रास्ता बन्द हो जाता है। मानव समाज का भविश्य अनदेखा अन्जाना भले ही है मगर है उज्जवल और अनन्त। पीली ऑधी' भविष्य की स्त्री का सपना भी है और नये सविधान की रूपरेखा भी [1]

---

[1] समय के उस पार पृ 65

पीली ऑधी' मे प्रभा खेतान ने एक भाषा ससार गढा है। छिन्नमस्ता' मे भी भाषा–शिल्प से ही उसकी मारवाडी सस्कृति पता चलती है इन दोनो उपन्यासो मे भारत की अनेक भाषाओ और बोलियो के भडार खोजे जा सकते है। हिन्दी के खडी बोली का बर्तमान स्वस्थ रूप तो इसमे है ही उसकी तमाम बोलियो और उप बोलियो के दृष्टान्त भी इसमे मौजूद है।

राजस्थानी भाषा की कडक और उसके लोक मुहाबरो की रौनक उपन्यास के तमाम पृष्ठो मे अटे पडे है। पीली ऑधी के आरम्भिक पृष्ठो मे ही लेखिका ने सकेत दे दिया है कि इस उपन्यास की हिन्दी राजस्थानी आच्छादित है विवाह के समय पीहर हुलस कर गाया जाने वाली बडी आवाज का एक राजस्थानी गीत इस प्रकार है।

म्हारी ननदल बाई तो सुकुमार
ए ननदोई म्हाने प्यारा लागो जी। [1]

आगे शगुन विचारती हुई पीली आधी की एक वीणनी गुनगुना उठती है–

उड उड रे म्हारा काला कागला जे म्हारा पीव जी घर आवे। खीर खाड के थाल परोसू थारी सोने चोच मढाऊ रे कागा थारी जलम जलम गुण गॉऊ रे कागा जलम जलम [2]

---

[1] पीली ऑधी पृ 10

[2] (वही पृ 10)

कथाभाषा मे वर्णात्मक भाषा की विशेष उपयोगिता ठहरती है। राजस्थानी भाषा की शब्दावली कितनी मनमोहक भी होती है इन पक्तियो मे देखा जा सकता है।

काको जी कल ही तो मॉ जी को बता रहे थे। राम की मॉ तुम तो छप्पनियो के अकाल की कल्पना नही कर सकती ठोर डागर की तो किसको चिन्ता थी। चारो तरफ हड्डियो के ककाल के ढेर लग गये थे प्यास से आदमी तडफडाने लगे थे। भूख और गरीवी देखी नही जाये। दिन मे एक बार बाजरे की लप्सी मिल गयी या किसी को दो टिक्कड खाने को मिल गये तो बहुत बडी बात थी। क्या करते लोग, रोजगार की खोज मे सब निकले । सेठ साहूकार सब निकले, उनके मुनीम गुमाश्ते निकले। कोई अजमेर मालवा की ओर गया, कोई पजाब की तरफ तो कोई बबई की ओर। वापू जी ने मालवा मे अफीम का व्यापार तभी शुरू किया था। अपनी अफीम की पेटियॉ चीन और जापान तक जाती। साथ ही बडे ताऊ जी ने चुरू मे गद्दी खोली महाजनी का काम बढाया। [1]

छिन्नमस्ता' मे भी मारवाडी सस्कृत भाषा के रूप मे है। साथ ही अवधी और भोजपुरी का मिश्रित रूप भी मिलता है। इसका प्रयोग इन्होने बहुत अच्छा किया हैं, जैसे, इस वाक्य खण्ड मे–'अरे मोर बचवा बडा अनर्थ हो गइल बडा बाबू का आफिस मे हार्ट फेल हो गइल। हमार देवता जैसन मालिक नाहीं रहिले अरे भगवान ! ईका जुलुम करिले रे ? [2]

---

[1] (वहीं पृ 10–11)

[2] ('छिन्नमस्ता' पृ 19)

अधिकतर इसमे खडी हिन्दी के स्वस्थ रूप का ही प्रयोग किया है। इसमे भाषा की आवेगमयता दर्शनीय है।

प्रभा जी ने अपने दोनो उपन्यासो मे अग्रेजी शब्दावली के स्वाभाविक प्रयोग किये है। स्वाधीन भारत के नागरिक है मगर अग्रेजी सिस्टम के पोषक है। उनकी कही कही बात–चीत का लहजा अग्रेजी अग्रेजी भाषा और अग्रेजी स्टाइल मे प्रकट होता रहता है। कुछ उदाहरण पहले पीली ऑधी' सें–

1– दीदी यु नो जब पहाड पर जाते है ना तब माई मॉम इर्लो मेरे सलवार कमीज पहनलेती है। शीइज सो स्लिम

ग्रेट । छोटी आराधना अब ऑखे नचाते हुए बोली जस्ट इमेजिन पापा। बडी दीदी की ताई जी बैडमिटन खेलती हुई कैसी लगेगी'

फैन्टास्टिक । अवर पिंकी हैज इमैजिनेशन। [1]

2 उसके बदले दैट ओल्डी होली काऊ? हाऊ आई हेट हर [2]

1 डोट बी सिली प्रिया । तुम विल्कुल सहज और स्वाभाविक हो।[3]

2 यु आर क्रेजी प्रिया। तुम अब भी चालीस के ऊपर नही लगती' [4]

पीली ऑधी मे राजस्थानी गीतो के सम्पुट कहीं कही मिलते है जिनके आलोक मे यह कहा जा सकता है कि प्रभा खेतान

---

1 पीली ऑधी पृ 198

2 वही पृ 167

3 छिन्नमस्ता' पृ 211

4 वही पृ 218

के लेखकीय व्यक्तित्व पर स्थानीय सस्कृति और क्षेत्रीय भाषिकता की छाप है।

इन दोनो उपन्यासो मे कथा शैली अत्यन्त स्वाभाविक है यह स्वाभाविकता उपन्यास की पठनीयता मे आस्वाद भरती है। कहीं भावुक प्रसग है तो कही समझने योग्य विचार लोक के सदर्भ सदर्भ और प्रसग की विषयानुकूलता लेखिका की स्मृति मे सदैव सजीव बनी रहती है।

चित्रा मुद्गल ने 'आवा' के भाषा शिल्प को विल्कुल उपन्यास के अनुरूप ढाला है। इस उपन्यास मे पात्रो के चरित्र और उनके व्यवहारानुसार भाषा का प्रयोग हुआ है जहाँ भाव भाव कोमल है वहाँ भाषा मे भी कोमलता है और ज्यो ही भाव उग्र हो रहे हैं भाषा भी उग्र रूप धारण कर ले रही है। चित्रा जी ने उपन्यास मे मुम्बईया बोली, अवधी, खडी बोली स्थानीय बोली, देशज शब्द व अरबी–फारसी के शब्दो का प्रयोग किया है। इन सब भाषाओ ने मिलकर उपन्यास की भाषा को अद्भूत व चमत्कार पूर्ण बना दिया है।

आवा' उपन्यास मे लेखिका चित्रा जी ने अवधी भाषा का हिन्दी खडी बोली के साथ अत्यन्त सरल सहज व आत्मीय प्रयोग किया है। उपन्यास के पात्र रहते तो है उपन्यास की कथाभूमि मुम्बई मे, लेकिन मूलत अवध के हैं इसीलिए लेखिका ने अवधी भाषा का भी प्रयोग किया हैं, जिसमे उपन्यास की भाषा व शिल्प मे रोचकता उत्पन्न होती है।

हेठी कैसी, मान लेने मे भैया जिसकी बान उसी को साजे, न हम हुक्का–फरशी वाले ठहरे न गिलौरियॉ सजाने वाले झाड–झूड कर टाड पर रखा छोटे प्रेशर कुकर का खोखा उठा लाई मॉ सग सुतली।[1]

---

[1] आवा पृ 36

इससे स्पष्ट होता है कि चित्रा जी ने अबधी भाषा को खडी बोली हिन्दी के साथ मिला कर उपन्यास की भाषा को नवीन रूप प्रदान किया है।

चित्रा जी ने आवा' मे कहावतो का भी प्रयोग किया है ये कहावते उपन्यास व भाषा के अनुरूप हैं। तथा इनका प्रयोग सही ढग व सही स्थान पर हुआ है। कुछ कहावते द्रष्टव्य हैं–

1 आधी छोड सारी को धावै आधी मिलै न सारी पावै।

2 मॉ मरे मौसी जिये आदि।

चित्रा जी ने अपने उपन्यास मे मुहावरो का भी प्रयोग किया है इस उपन्यास की अनुभूति की भाषा तद्भव तत्सम व सहज बोल–चाल की भाषा है जो अनेक दिलचस्प स्वाभाविक व प्रभावी मुहावरो का अविष्कार करती है कुछ उदाहरण इस प्रकार है–

सीधी उगली घी न निकलता तो भिडना ही पडता भिड जाती तू क्यो झगडे से डरती है?

अरेSSS इन चिरकुटो की सुनते ही तेरे प्राण पखेरू उड जाए, साढे तीन हजार तनख्वाह नही ले रही मैं?

इस उपन्यास की भाषा मे मुम्बइया बोली का भी प्रभाव है। इस उपन्यास के अधिकाश पात्र मुम्बइया बोली का ही प्रयोग करते हैं क्योकि उपन्यास की कथाभूमि मुम्बई की है। उदाहरण

शाहबेन द्वारा देवी शकर ठीक है पिच्छू तू इतना सुबू इदर काय को आई?

'आवा' की भाषा मे कौतुहल क्षिप्रता और पठनीयता है। 'आवॉ' की कथा सुगठित तथा सुसम्बद्ध है तथा सहज ही हृदय मे कौतूहल जगाये रखने मे समर्थ है।

इन्होनें अपने उपन्यास मे भाषा की अनेक स्तरो पर रचना की है। जब वे विचार प्रखर होती हैं तो उनकी भाषा स्वय ही अकामक हो

जाती है। भाषा के अन्दर से कोमलता के बजाय ऐसे वाक्य झरने लगते हैं जो आन्तरिक मर्म बनकर बाहर निकलते है–

भीड उसे ढेला खाये सैकडो हजारो मधुमक्खियो के छत्तो सी लगती जो मौके की ताड मे स्वय ढेले लिये बैठी स्त्रियॉ देखते ही अपने ऊपर फेक लेती।

चित्रा जी की भाषिक क्षमता पूर्ण रूप से इस सवेदना को व्यक्त करने मे सक्षम हुई है। उनकी इसी सवेदना के कारण पाठक इस उपन्यास को पढते समय इससे आत्मीयता स्थापित कर लेता है। उदाहरण– आओ पाण्डे बिटिया तनिक अपनी सुनदा बहिनी का मुॅह देखि ले SSS देखि लो बिटिया कैसे दगा दे गई , इन बूढ हाडन को। अरे हम कहॉ से जागर लायेगे। छौनी इत्ता कि तेरी दुधमुॅही को पाल–पोस खडा कर दे कहॉ से करेजे मे ताप भरे SSS रे SSS [1]

भाषा का सहज प्रवाह कथानक को आगे बढाने में ही नही उसकी कुटिलताओ और क्षुद्रताओ की गॉठे खोलने मे भी सक्षम है। कथा मे थोडी सी नकारात्मक सोच उत्पन्न हुई है जिसका उपन्यास मे अपना महत्व है। उदाहरण नमिता की मॉ मे–

मेरे इतने हाथ–पैर बॅध गये कि अब तेरे इशारे पर उठक–बैठक करनी होगी? आदत पड़ गयी टकराने की कजडिन की कोई भी शुभ कारज विना रोना पीटना मचाये पार नहीं लगने देती [2]

चित्रा जी की वर्णन क्षमता अद्‌भुत है। उन्होने अपने उपन्यास में प्रसगो के बीच से अचानक प्रसग उठा लेने और छोड देने की शैली का

---

[1] पृ स 151

[2] पृ सं 33

भी प्रयोग किया है जो उपन्यास को अद्‌भुत बनाता है। नये विम्ब और नये प्रतीक भी उपन्यास को विशिष्ट बनाते हैं। उदाहरण इस प्रकार है–

1 पश्चाताप आदमी को बरगलाता नहीं सहीं रास्ते पर लाता है। [1]

2 सुख की ही बिरादरी नही होती दु ख का अपना कुटुम्ब छोटा नही होता' [2]

आवां' मे भाषा और शिल्प की चित्रात्मकता के माध्यम से भावो को इस प्रकार से व्यक्त किया है कि पढने वाले भाव विह्वल हो जाते है।

सहस्रादि पर्वत श्रृखला की एक के भीतर एक जन्मती ऊचाइयो और हरी–भरी धुध मे डुबी सुरमई घाटियो की हौक–भरी गहराइयो की सुषमा उसे जैसे किसी अलौकिक जगत मे खींच ले गयी। 3

उपन्यास लेखिका चित्रा जी ने अपने उपन्यास मे एक नवीन प्रयोग किया है जिसे भाषा और शिल्प का कलात्मक प्रयोग कहते है उन्होने उपन्यास के कुछ पात्रो पर इसका सजीव चित्रण किया है।

आवां' मे शब्दो का ताना–बाना उन्होने इस प्रकार बुना है कि इसमे जहॉ एक ओर सस्कृत के शब्द है वही अरबी फारसी के शब्दो का प्रयोग किया है। इसमे चित्रा जी ने स्थानीय शब्द देशज अवधी व अग्रेजी के शब्दो का प्रयोग किया है जिन शब्दो का प्रयोग हिन्दी लेखन या बोल–चाल मे प्रचलित है उन्होने शब्द चयन मे

---

[1] (पृ 372)

[2] पृ 372

3 पृ 280

स्पष्ट हो जायेगा बऊ का एकालाप देखिये— मोरे महेन्दर होते तो क्या ठूठो मे अकेले डुकरते रह जाते हम? सो सोच लई विन्नू कि दया—माया छोड महेन्दर की मताई। विनती गुहार की लुज—पुज केचुरी त्याग और खोज कोई निसकट गैल। थाने चौकी पै गुहार पुकार पोहचा के देख ली। ऐन लड गये तो सोच लिया कि अन्धे बहरे है पुलिस—थाने। [1]

इसी प्रकार की भाषा चाक' मे भी देखी जा सकती है— हम जाटिनी जेब मे विछिया धरे फिरती है मन आया ताके पहर लिये का पल्लौ हो गयी? [2]

भाषायी सरचना मे स्वाभाविकता सहजता लाने के लिए भाषा सम्बन्धी दृष्टिकोण उदार होना चाहिए। मैत्रेयी के लेखन मे हम ऐसा ही पाते है। लेखिका ने स्वय अपनी और पात्रो की भाषा मे विविध भाषाओ बोलियो के उन सभी शब्दो का खुलेमन से प्रयोग किया है जिनका प्रयोग आम तौर पर बोल—चाल मे होता है। देखिये उर्दू का पुट लिये दादा की भाषा— सोचते है गॉव मे सलाह कर ले। विकरम बलभद्र कौन होते है अपनी राय सलाह देने वाले। हमारा सग तो दे रहे हैं गॉव के लोग। कहते हैं न जल की एक लहर गद्दारी कर जाये तो पूरी जखीरा डूब जाता है। सो देख लो कैसा परन निभाया है बच्चा—बच्चा ने। [3]

अग्रेजी के भी कुछ एक शब्द यहॉ—वहॉ प्रयुक्त हुए हैं। सवादो मे इनका प्रयोग इस प्रकार है— दाऊ जू दवाई नहीं खाते टेम से' [4]

बिल्डिग तो है ही आप ही वुला दो कहीं से डाक्टर' [1]

---

[1] 'इदन्नमम् पृ 45

[2] चाक पृ 104

[3] 'इदन्नमम्' पृ 108

[4] वही पृ 125

भाषा भावानुकूल एव विषयानुकूल होना अर्थात् भाव एव विषय के अनुरूप भाषा का परिवर्तित होते रहना सर्जनात्मक भाषा का एक विशिष्ट लक्षण है ऐसी सम्बेदनाशील भाषायी सरचना जीवन्त अनुभव की मॉग करती है वही स्वय पाठक के लिए जीवन्त हो जाती है चाक और इदन्नमम' की भाषा ऐसी ही है।

मार्मिक स्थलो पर भाषा प्राय आलकरिक हो गयी है इसमे भाषा की चरूता बढ गयी है। कुसुमा द्वारा दाऊ जू के प्रति अपने समर्पण भरे प्रेम की अभिव्यक्ति की भाषा दर्शनीय है–

पर इतेक जरूर है कि दाऊ जू के लाने अमर जल की तरह हम हर रात हाजिर रहते है। वे तिरपित रहे। अफरे रहे। हॉफते कॉपते जीते रहे और क्या चाहिये हमे? जाने हमारे पिरीत मे बल है कि उनके बिसवास मे हौसला जमराज अभी तक तो दूर खडा है विन्नू। [2]

मृदुला गर्ग की भाषा दूसरे ही प्रकार की है। कठगुलाब' का भाषा शिल्प बेजोड है। इनके भाषा शिल्प से ही इनके साहस का पता चलता है। कठगुलाब स्त्री और पुरूष के सम्बन्धो को लेकर लिखा गया है। इन्होने शब्दो का चयन इस प्रकार किया है जो कि इसमे व्यक्त भावो को पूरी तरह अभिव्यक्ति देते हैं। मूल रूप से तो पूरा उपन्यास खडी बोली हिन्दी मे लिखा गया है परन्तु अग्रेजी शब्दो का भी विशद् वर्णन मिलता है। और तो और कठगुलाब मे नारी मुक्ति' आन्दोलन का झडा उठाये स्त्री शक्ति का प्रतिनिधित्व करती समाजशास्त्री मारियान द्वारा गालियो की बौछार भी करायी है– कपटी धुर्त नामर्द बास्टर्ड या यू सन ऑफ ए बिच' । यू इयो टेट बास्टर्ड' ।

---

[1]वही पृ 297

[2] 'इदननमम्' पृ 126

अलका सरावगी की भाषा पूर्णत समृद्ध है। उनका कलिकथा वाया बाईपास' है तो मारवाडी परिवार की कथा परन्तु लिखा बगाल की पृष्ठ भूमि पर गया है। इसलिए इसमे बगला कहावत भी दिखायी पडती है। उदाहरण–

आडाली धानेर चिउडा विन्नी धानेर खोई
फोडित पुरा पाटाली गुड सिलिमपुरा दोई
ओ बोन्ध जाइयो आमार बाडी
तोमार लाइका भइजा तोइरी
आउस धानेर मूडी [1]

बगाल की भाषा का उन्होने अपने उपन्यास मे बहुत अच्छा प्रयोग किया है। अग्रेजी उर्दु और देशज शब्दो का भी प्रयोग मिलता है।

भाषा ही लेखक या कवि के रचना ससार को व्यक्त करने का माध्यम होती है। एक उपन्यासकार का लक्ष्य अपने कल्पित ससार को मूर्त विश्वसनीय और सजीव रूप मे प्रस्तुत करना होता है जिसके लिए उसे अपनी भाषा को सर्जनात्मक क्षमताओ से सम्पन्न करना पडता है। उपन्यास का भाषा विधान एक दुष्कर कर्म है क्योकि उपन्यास साहित्य विधाओ मे सर्वाधिक मिश्रित विधा है। इसकी रचना तो गद्य मे होती है, पर शायद ही कोई विधा हो जिसकी प्रविधि का प्रयोग उपन्यासकार न कर लेता हो। उपन्यास मे रचनाकार की भाषा के साथ विविध पात्रो की भी अपनी–अपनी भाषा होती है फलत भाषा सरचना का फलक और विस्तृत हो जाता है। ऐसे वैविध्य पूर्ण भाषा की रचना के लिए जबर्दस्त

---

[1] कलिकथा वाया बाईपास पृ 127

भाषाधिकार अपेक्षित है और यह अधिकार इस दशक की लेखिकाओ मे पूर्णत दिखाई देता है इसमे सन्देह नही।

अध्याय–5

लेखिकाओ के उपन्यास मे स्त्री विमर्श

स्त्री विमर्श के अतर्विरोध' जानने समझने की गभीर बौद्धिक प्रखरता के साथ डा0 प्रभा खेतान ने लिखा–

अक्सर मै सोचती हूँ कि औरत अपने बारे मे ऐसा कुछ लिखे जिसे किसी पुरूष ने अभी तक न लिखा हो। क्या लिखना चाहिए? मै अब भी नही समझ पा रही हूँ। ऐसी कोई स्पष्ट विचारधारा मेरे पास नही किन्तु इतना जानती हूँ कि स्त्री के अनुभवो की अभिव्यक्ति कुछ विशेष और अलग रगो और रेखाओ की पहचान है। कम से कम कुछ तो ऐसा अखोजा रहा है जिसे केवल औरत ही खोज सकती हैं।

स्त्री के बारे मे अलिखित अखोजा अछूता या अद्वितीय क्या है– पता नहीं परन्तु कुछ तो ऐसा होगा जो विल्कुल हम स्त्रियो का निजी सच होगा हमारा अपना भोगा, जिया हुआ सच। हो सकता है लेकिन समस्या तो यह है कि वे जो पढी–लिखी नही हैं बेजुबॉ है कम से कम नादानी की आड ले लेगी मगर हम जैसी तेज तर्रार साहित्यिक सास्कृतिक स्त्रियॉ क्या करे? पुरूषो की सधी मजी हुई आलोचनात्मक भाषा का सामना कैसे करें? अपनी जाति और वर्ग के पुरूषो का ही साथ देगी हमारा नही कारण? केवल इसलिए कि हम सवर्ण है सुविधा सम्पन्न है? शहर मे हैं? अब हम किसके सामने रोये। यह शहरी सुविधा सम्पन्न सवर्ण स्त्रियो की स्थायी मनोग्रथि है। प्रभा खेतान स्वय स्वीकार करती हैं सस्कृत सस्था और धार्मिक सुविधाए अभिजात स्त्रियो को अधिक मिली है, किन्तु इन्ही सुविधाओ ने कहीं उनकी चेतना को और अधिक जडीभूत भी बना दिया है। अपनी कुलीनता के नशे मे वे बेहोश हैं भारतीय मर्यादा की गलबहियॉ उन्हे बार–बार व्यवस्था के सम्मोहन की ओर ढकेलती हैं तथा अपनी खुद की पीडा की नग्नता को देखने समझने

के बजाय वे पुरूषो द्वारा प्रदत्त पीडा के रस मे ही पगी रहती है और हमारे सामने चुनौती यही बनी रही है कि बार–बार ऐसा क्या लिखा जा सकता है जो सबको चौका दे।[1]

शायद ऐसी ही चुनौती का परिणाम है छिन्नमस्ता' तालाबदी' आओ पेपे घर चले अपने–अपने चेहरे' और पीली आधी।

छिन्नमस्ता' के फ्लैप न2 पर इसके बारे मे लिखा गया है– यह उपन्यास प्रिया नामक एक ऐसी नारी का आख्यान है जो निरतर शोषित है समाज की जर्जर मान्यताओ से भी और पुरूष की आदिम भूख से भी टूट जाने की हद तक लेकिन वह टूटती नही बल्कि शोषक शक्तियो के लिए चुनौती बनकर एक नई राह पर चल पडती है। और यहॉ से आरम्भ होती है उसकी बाहरी और आन्तरिक यात्राये सघर्षो का एक अटूट सिल–सिला बीच–बीच मे वह शिथिलता अनुभव जरूर करती है लेकिन उसके सामने एक लक्ष्य है–समाज की जिन बर्बर मर्यादाओ और शक्तियो के सामने एक वह मेमने की तरह मिमियाती रही थी वे देखे कि नारी सदा ऐसी ही निरीह नही रहेगी और सचमुच प्रिया उभरती है अपनी निरीहता से अपनी खोई हुई अस्मिता को पुन प्राप्त करके वह एक सबल नारी के रूप मे उपस्थिति होती है। सक्षेप मे कहे तो प्रिया के माध्यम से लेखिका ने नारी स्वतत्र्य की भावना का वास्तविक रूप उद्घाटित किया है।

स्त्री सम्बन्धी आचार–विचार मे यद्यपि अभी भी मूलभूत अन्तर उपस्थित नही हुआ है परन्तु स्त्री सम्बन्धी समस्याओ ने इधर सबका घ्यान अपनी ओर आकर्षित किया है। न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति (स्त्री स्वतन्त्र न

---

[1] औरत अस्तित्व और अस्मिता अरविन्द जैन पृ63

रहे अथवा स्त्रियो को स्वतन्त्रता की योग्यता नही है) कहने वाले मनु और 'जिमि सुतत्र भएँ विगरहि नारी' कहने वाले गोस्वामी तुलसीदास के इस देश मे भी नारी स्वतत्रता की आवाज बुलन्द होने लगी है। और अब नारियॉ पूर्णत स्वतत्रता चाहती हैं चाहे वह देह के स्तर पर हो या आर्थिक सामाजिक पारम्परिक स्तर पर। खासकर अन्तिम दशक की लेखिकाओ ने नारी स्वतत्रता का नारा बुलन्द किया है। पितृसत्ता के खिलाफ मातृत्व के खिलाफ वैवाहिक सस्था के खिलाफ अपनी आवाज उठायी है।

इन लेखिकाओ ने अपने कथा--साहित्य मे सदियो से नारी पर होते आ रहे उत्पीडन को पहचाना है और इस स्त्री विमर्श ने मर्दवादी राजनीति का खुले शब्दो मे पर्दाफाश किया है। प्रश्न यह उठता है कि क्या ये लेखिकाए स्त्री विमर्श इस पितृक राजनीति पितृक मुहावरे को तोडने मे समर्थ है। क्या ऐ लेखिकाए इस दृष्टि से एक अलग मुहावरा तैयार कर रही है? अथवा उसी पितृक मुहाबरे मे जकड कर रह गयी है? इन लेखिकाओ को स्वय निपटना है।

एक कटटर पथी राष्ट्र मे तसलीमा का नारी मुक्ति के लिए सघर्ष दुनिया की तमाम औरतो के लिए एक चुनौती है। उनका समूची स्त्री जाति को दिया गया जो साहसिक सदेश है उसे आत्मसात करने की जरूरत है नारी यह दुनिया तुम्हारी है। इस दुनिया मे तुम अपनी इच्छा से जीओ। यह दुनिया यदि एक नदी है तुम उस नदी मे तैरती रहो। यह दुनिया यदि आकाश है तुम पूरे आकाश मे विचरण करती फिरो, जीवन यदि तुम्हारा है जो दरअसल तुम्हारा ही है तो वह जीवन तुम जैसी

इच्छा हो जीओ नारी तुम अपना हक खुद हासिल करो। उसे अब पुरूष की गुफा से लहुलुहान होकर न निकलना पडे।[1]

नारी और उसके आत्म सघर्ष पर कम नही लिखा गया है। तमाम कविताए है। इस आशय की तमाम कहानियॉ है इन सन्दर्भो की और उपन्यास भी कम नही है इन्हे केन्द्र मे रखते हुए। अब तो आलोचना विमर्श और टिप्पणियॉ भी मिलने लगी हैं नारी को समझने और खोजने की फिराक मे। प्रभाखेतान मैत्रेयी पुष्पा मृदुलागर्ग चित्रामुद्‌गल अलका सरावगी नारी हैं किन्तु लेखिका भी। उनका लेखन तो नारी केन्द्रित होकर ही आगे बढ रहा है। जाहिर है एक तो स्त्री दुसरे लेखिका तीसरे चिन्तन विषय स्त्री। अत स्त्री को सम्पूणत जीती हुई ये लेखिकाए बहुत कुछ अनकहा कह रही हैं और लोगो के कहे और खोजे का जबाब भी दे रही हैं। प्रभाखेतान ने एक जगह प्रश्न किया है कि क्या पुरूष का दृष्टिकोण स्त्री के प्रति कभी उदार होगा? मुझे लगता है कि ऐसा शायद ही हो अपनी तमाम उदारता के बाबजूद साहित्य के क्षेत्र मे भी निर्णय लेने का अधिकार पुरूष ने अपने हाथ मे रखा'[2]

पीली ऑधी' और छिन्नमस्ता' का सामाजिक यथार्थ स्त्री–विमर्श है। स्त्री को घुटन–पूर्ण सामाजिक यातना–गृह से मुक्त करना है। यह मुक्ति सिर्फ किसी मारवाडी घराने की स्त्रियो के लिए नही किसी सोमा प्रिया और चित्रा के लिए नही अपितु समाज की पुरूष चारदीवारी मे कैद किसी भी स्त्री के मुक्ति के लिए है।

---

[1] तसलीमा नसीन औरत के हक में पृ 127

[2] औरत अस्तित्व और अस्मिता हमारी भूमिका प्रभा खेतान पृ स 16

विवाह' स्त्री की नियति है। विवाह जैसी सस्था के अपने कानून–कायदे है उसके अनुसार उसे चलना भी है। चलती है तो वह आचरण शीला नारी है उल्लघन करती है तो व्यभिचारिणी कहलाती है। प्रभा जी ने छिन्नमस्ता' और पीली ऑधी' मे विवाह सस्था के इस मिथ को तोडने का प्रयास किया है।

दरअसल स्त्री का स्त्रीत्व उसका मातृत्व होता है। मातृत्व के विना स्त्रीत्व किस काम का। इस स्त्री मनोविज्ञान पर अनेक उपन्यास लिखे गये है। पीली ऑधी उस परम्परा की एक कडी है। मातृत्व की स्त्री सार्थकता को लेकर उषा प्रियवदा ने पचपन खम्भे लाल दीवारे लिखा है। यह एक सुशिक्षित और आत्मनिर्भर स्त्री का व्यथा है। पारिवारिक और आर्थिक कारणो से विवाह न कर सकने वाली इस उपन्यास की स्त्री प्रेम करती है देह सम्बन्ध बनाती है पर मातृत्व की आकाक्षा मे कोई स्पप्न नहीं पालती।

यह सर्वज्ञात और सर्वमान्य तथ्य है कि स्त्री योनि के विना सन्तानोत्पत्ति असम्भव है (टेस्ट टयुब बेबी के अलावा) मनु अगर यह कहते हैं कि ब्रह्मा ने स्त्रियो की रचना गर्भ धारण करने के लिए की है तो उनका मूल अभिप्राय स्त्री के मॉ या जननी होने बनने या बन सकने से भी रहा होगा और सन्तानोत्पत्ति से भी। स्त्री चाहे तो आजीवन कुमारी नहीं रह सकती रहेगी तो नरक जायेगी। जैनेन्द्र कुमार के अनुसार स्त्री की सार्थकता मातृत्व है' का मतलब सिर्फ इतना ही है कि स्त्री जीवन विना मॉ बने निष्फल है निरर्थक है। जैनेन्द्र की माने तो स्त्री को अपना जीवन सार्थक करने के लिए विवाह करना ही पडेगा क्योकि विना विवाह के बच्चे अबैध' और हरामी' कहलायेगे। और वह खुद कुल्टा' और छिनाल' या व्यभिचारिणी' कहलायेगी। विवाह के बाद अगर पति से

सन्तान ना हुई तो वह बॉझ कहलायेगी आजन्म कुमॉरी रहने की उसे कोई स्वतत्रता नही [1]

पीली ऑधी' उपन्यास की स्त्री सोमा' विवाह के पारम्परित स्वरूप को चुनौती देती हुई विवाहिता होकर भी पर पुरूष से प्रेम करती है देह–सम्बन्ध बनाती है मातृत्व के लिए और अपने पूरे परिवार से टकराती है और मॉ बनती है।

छिन्नमस्ता' की प्रिया अपने ही बडे भाई द्वारा यौन शोषण का शिकार होती है और यह बात किसी से न कहने की सौगन्ध के साथ प्रिया को लगता है यह मेरा कलक' है। इस दुर्घटना से वह उबर नही पाती है। यहॉ प्रिया का सघर्ष अपने अस्तित्व को लेकर है। अपनी सफलता के पीछे उसने कितना दु ख झेला है एक स्थान पर वह स्वीकार करती है–

मैने दु ख झेला है पीडा और त्रासदी मे झूलसी हूँ जिस दिन मैने त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया उसी दिन उस स्वीकृति के बाद मैने खुद को एक बडी गैर जरूरी लडाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मो के सामने सलीब पर लटकते मैने पाया कि अब मैं पूरी तरह जिन्दगी की चुनौतियो का सामना करने के लिए तैयार हूँ। [2]

प्रिया' के माध्यम से लेखिका ने यह कहा है कि स्त्री कैसे–कैसे शोषित होती है और रोती है–

---

[1] औरत अस्तित्व और अस्मिता मातृत्व: स्त्री की सार्थकता या बेडियॉ? पृ 45

[2] पीली ऑधी पृ 10

औरत कहॉ नही रोती? सडक पर झाडू लगाते हुए खेतो मे काम करते हुए एयरपोर्ट पर बाथरूम साफ करते हुए या फिर सारे भोग एश्वर्य के बावजूद मेरी सासू जी की तरह पलग पर रात–रात भर अकेले करवटे बदलते हुए। हाड मास की बनी ये औरते अपने–अपने तरीके से जिदगी जीने की कोशिश मे छटपटाती ये औरते! हजारो सालो से इनके ये ऑसू बहते आ रहे है। [1]

प्रिया को अपने औरतपन से चिढ है वह सदैव दस साल की लडकी ही रहना चाहती है।

उसके दर्शन के प्रोफेसर डा0 चटर्जी ने उससे गुरू दक्षिणा मे सिर्फ एक चीज चाही थी– पहले अपने स्त्री होने की गुलामी को समझो [2] बहुत सी किताबे देते हुए उन्होने समझाया था कि औरत होना बुरा नही है औरत होने की ऑसू भरी नियति को स्वीकारना बुरा है। आत्मा ही आत्मा की गुरू हो सकती है अत व्यक्ति की देन की कृतज्ञ स्वीकृति के बाद उन्होने उसे आगे बढने की सलाह दी। एक गुरू के रूप मे डा0 चटर्जी का यह मत्र उसकी अन्तर्चेतना मे धॅसकर उसे अनुप्रेरित करता रहा।

प्रिया अपनी स्वतत्र पहचान चाहती है इसलिए वह अपना व्यवसाय शुरू करती है और स्वतत्र पहचान के लिए सघर्षरत रहती है। इसीलिए पति से विद्रोह भी करती है–

---

[1] (पीली ऑधी पृ 220)

[2] वही पृ 116

नरेन्द्र मै पैसो के लिए काम नही कर रही। फिर किस लिए कर रही हो? सुबह से रात तक फिरकी की तरह नॉचती हो किसलिए? हॉ बोलो जबाब दो? अपनी आइडेटिटी व्यक्तित्त्व विकास के लिए। [1]

पिछडे अचल के जीवन यथार्थ के विविध आयामो को उद्घाटित करने वाली इदन्नमम् और चाक की कथा मे मुख्य रूप से दो ही केन्द्रक है औरत एव सम्पत्ति। सारा सघर्ष इन्ही दो आधारो पर घटित होता दिखाया गया है। इन छलो को सहते झेलते उनसे जूझते एव उनके विरूद्ध सघर्ष करते हुए भी प्रधान रूप से नारी को ही उभारा गया है। वस्तुत लेखिका का केन्द्रिय सरोकार है। विपन्न मानसिकता के दोमुहे समाज मे आज भी नारी मात्र वस्तु। मात्र सम्पत्ति। विनिमय की चीज। औरत सदैव रहती है– सहने के लिए झेलने के लिए और जूझने के लिए। [2]

इदन्नमम् मे अनुस्यूत नारी चेतना का स्वरूप छिपा है। नारी यातना का बयान जो कि बेतवा बहती रही मे अधुरा रह गया उसी बयान को इदन्नमम् मे पूरा किया गया है। इसमे नारी मुक्ति से सम्बद्ध नये सन्दर्भ एव नये विचार है। इसके पूर्ववर्ती उपन्यास उवर्शी की कहानी जहॉ अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी की आर्दता जगाकर समाप्त हुई है वही इद्न्नमम् की मन्दा कुसुमा सुगना और चाक की सारग आदि या देवी सर्वभूतेषु शक्ति रूपेण सस्थिता है और कोई भी आततायी उन्हे उत्पीडित कर झुका पाने मे असमर्थ हैं।

---

[1] (वही पृ 215)

[2] बेतवा बहती रही

पुरूष सत्तात्मक समाज ने नारी शोषण के लिए न जाने कितने उपकरण एव हथियार बना रखे है जिनका वह आरम्भ से ही प्रयोग करता आ रहा है। सबसे बडी खूबी यह है कि ये सारे उपकरण हथियार सस्कार रूप मे नारी की मानसिकता बन गये हैं। जिन हथियारो के सहारे पुरूष नारी को सदियो से छलता रहा है उसमे सबसे प्रमख है भावना'। भावना' की जमीन पर पुरूष सदैव कुचलता रहा है नारी को—अर्थ एव सेक्स इन दो मोर्चो पर। मातृत्त' प्रेम आदर सेवा' आदि शब्दो के मायाजाल मे पुरूष सत्ता ने इस तरह उलझा रखा है कि इन शब्दो को ही अपनी पहचान' (कि मातृत्व नारी का अनिवार्य हिस्सा है सेवाभाव उसका सबसे बडा गुण है आदि) मानकर नारी चुपचाप शोषित होती रहती है। डा0 निर्मला जैन कहती है— समय के साथ जिस मानसिकता को असलक्ष्य कम मे पुरूष पुरूष सत्तात्मक समाज ने विकसित और नारी ने अर्जित किया उसमे मानव के व्यक्तित्व और व्यवहार का दो टुकडो मे अस्वाभाविक विभाजन कर दिया गया—हृदय पक्ष और बुद्धि पक्ष। हृदय पक्ष को स्त्री के हिस्से मे डालकर बुद्धि पक्ष पर पुरूष ने अपना एकाधिकार जमाने और जतलाने का जो अतर्क्य अभियान आरम्भ किया उसका सिलसिला आज भी कायम है। [1]

तात्पर्य यही है कि भावना को प्रधानता देने वाली और इसे ही अपनी पहचान मानने वाली नारी अपनी मनोकाक्षा पूरी भर करने के लिए भावना' की बात करने वाले युवक पुरूष से छली जाती रही है। इसी सच को उद्घाटित करती है इदन्नमम्' मे 'प्रेम' की दास्ता। प्रेम वह विधवा स्त्री है जिसे रतन यादव अपने प्रेमपाश मे बॉधता है। प्रेम रतन यादव के

---

[1] कथा एव नारी सन्दर्भ डा0 निर्मला जैन हस जुलाई 94 पृ 41

प्रेम को सच्चा सबल समझती हैं। परन्तु रतन यादव न केवल उसकी 'भावना' को आघात पहुँचाता है और आर्थिक शोषण करता है बल्कि उसे शारीरिक यातना भी देता है। यह सब कुछ वह केवल प्रेम के साथ ही नही करता बल्कि यह तो उसका पेशा है तीन विधवाओ की जमीन चॉपे बैठा है रतन यादव। किसी को भगाकर तो किसी को बहला फुसलाकर। और उससे बढकर है उसका बेटा राजू यादव । वह पट्ठा पिस्तौल की नोक पर करता है सारे काम। वकील जज सब उसके बस मे [1]

नारी शोषण का एक बडा कारण है उसकी आर्थिक कमजोरी। यह आश्रित होना पुरूष के नारी–शोषण अभियान मे बहुत ही सहायक सिद्ध हुआ। यद्यपि आज यह आर्थिक पराश्रितता तेजी से टूट रही है लेकिन ग्रामीण एव पिछडे क्षेत्रो मे तथा निम्न वर्ग मे यह समस्या जस की तस बनी हुई है। ऐसे क्षेत्रो मे यह समस्या दूसरे रूप मे विद्यमान है। मजदूर तबके की स्त्रियो की एक बडी त्रासदी यह भी है कि इस धनोपार्जन के चलते जो अन्तत उसका नहीं रह जाता है उसके चलते शारीरिक शोषण का भी शिकार होना पडता है।

नारी जाति की यह नियति एक त्रासदी ही है कि 'पतिव्रता' का प्रमाण देना केवल उसी का कर्त्तव्य माना जाता है पुरूष का नही। यदि नारी अपवित्र (पुरूष सत्ता की शब्दावली मे) हो जाती है तो इसके लिए भी उसे ही दोषी माना जाता है। इस दोष का दण्ड देते समय पुरूष सत्ता यह नही सोचती कि कैलाश मास्टर ने लाख चीखने–चिल्लाने के बावजूद नाबालिग मन्दा से जो रिश्ते मे उसकी भानजी लगती थी जबरन

---

1 इदन्नमम् पृ 135

बलात्कार किया था। उसमे मन्दा की रजामदी कहॉ थी? शोषित होने से इन्कार करने की असामर्थ्यता एव शोषित होने के बाद चरित्रहीनता के आरोप मे सामाजिक निर्वासन की पीडा नारी की नियति बन गयी है।

इदन्नमम' मे हर नारी अपने–अपने स्थान पर सघर्ष की तैयारी मे है या सघर्ष कर रही है। सबके सघर्ष की अपनी–अपनी जमीन एव पहचान है। गिरिराज किशोर लिखते है– बऊ का सघर्ष जिस प्रकार का है उस प्रकार का मन्दा का सघर्ष नही हैं। जिस प्रकार का मन्दा का सघर्ष है उस प्रकार का कुसुमा का सघर्ष नही है। यह बात उल्लेखनीय है कि हर स्त्री अपने सघर्ष सघर्ष का अलग वृत्त रखती है और उसे उसी मे रहने के लिए वाध्य होना पडता है। [1]

यह बात बिल्कुल उचित है। बऊ अपने परम्परागत सोच के दायरे मे रहते हुए अपनी पोती मन्दा की सुरक्षा के लिए रतन यादव से सघर्ष करती है। हर आघात के बाद नये साहस के साथ जीने के लिए तैयार हो जाती है। प्रेम भी अपनी तरह से एक प्रगतिशील नारी है जो विधवा के लिए बनाये गये सारे नियमो को तोडकर अपने प्रेमी या जीजा रतन यादव के साथ चली जाती है। लेकिन जैसे ही उसे पता चलता है रतन यादव ने उसे मोहरा बनाया है वैसे ही वह दायर मुकदमा वापस ले लेती है।

कुसुमा भी उत्पीडन एव दमन के विरूद्ध आवाज उठाने वाली है जिसे दहेज के चलते बॉझपन का झूठा आरोप लगाकर यशपाल त्याग देता है एक बस्तु की तरह। परित्यक्तता कुसुमा अन्तत तथाकथित सारी मर्यादाओ को ताक पर रखते हुए रिश्ते मे ससुर लगने वाले आजन्म कुऑरे दाऊजू का हाथ थाम लेती है। सबके सामने वह अपने प्रेम को

---

[1] स्त्री मन की सार्थक पहचान गिरिराज किशोर समकालीन भारतीय साहित्य अक्टूबर –दिसम्बर 99 पृ 160

स्वीकार करती है और यशपाल के हिसात्मक प्रतिरोध के बावजूद सतान को जन्म देकर अपने ऊपर लगे बॉझपन के लॉछन को हटा देती है।

मन्दा का जूझना अलग ढग का है। घर की चौखट से बाहर निकलकर बृहत्तर सामाजिक सरोकार से जुडकर शोषित एव बचितो के अधिकारो की लडाई का नेतृत्व कर मन्दा समाज के उस विधान का माखौल उडाती है जिसमे लडकी का घर की चौखट से बाहर निकलना ऐसे सार्वजनिक कामो मे भाग लेना एक अपराध से कम नही समझा जाता है। इस तरह मन्दा समाज की आधारभूत सोच पर चोट करने वाली पात्र है मन्दा सघर्ष के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध है। जब उसे पता चलता है कि जगेसर ने सुगना का विवाह उसकी इच्छा के विपरीत अभिलाष सिह के लडके से तय कर दिया गया है तो वह सुगना को अपने पिता का घर छोड कर मॉ के साथ अपने यहॉ चले आने का सूझाव देती है। कहती है छोड दे वह घर। मैं देखती हूँ जगेसर कक्का को। कल ही रिपोर्ट करके आऊॅगीं थाने मे'[1]

चाक स्त्री विमर्श का उपन्यास है जो इस विमर्श की देशज प्रकृति का खुलासा करता है। वे इस विमर्श को पढी–लिखी नौकरी पेशा बुद्धिजीवी स्त्री की सीमा से बाहर निकाल कर गॉव और खेत खलिहान मे काम करती स्त्री से जोडती है। गॉव मे स्त्री उत्पीडन और हत्या का लम्बा इतिहास रहा है। खेरापातिन चाची द्वारा सुनाई जाने वाली चदना की गीतिकथा और मोतिनीनल की प्रेम कथा भले ही गॉव की हवा मे डोलती हो, लेकिन स्त्री और उसकी प्रेम की दृष्टि से यह एक बेहद कूर और सवेदनहीन गॉव है। बाप की आज्ञा से जवान विधवा बेटी–पॉचन्ना बीबी

---

[1] इदन्नमम् पृ 355

की छातियो की काली जगह को जलते हुए चिमटे से दागने की परम्परा जैसे गॉव मे आज भी जीवित है। उसे रेशम ने झेला है। मनोहर की बहू जिरौली वाली चॉदनी रात मे नगी होकर धन कुटटा घुमाकर छत पर नाचती है। उसके गाये गीत के बोल रात के सन्नाटे मे दूर–दूर तक गूँजते हैं उधारौ दै दे भाएली मोए एक रात भरतार पति की करनी की सजा आखिर स्त्री कब तक भोगेगी? उसका पहला गर्भ काट–काट जबर्दस्ती इसलिए नष्ट कर दिया गया था क्योकि उसके पति को सदेह था कि वह उसका न होकर चरन सिह बौहरे का है। रात के सन्नाटे मे उठा शोर स्कुल की कोठरी मे अकेले पडे श्रीधर को बेचैन करता है। अपने औरतपन के लिए लडती औरत क्या सचमुच चुडैल हैं जैसा कि उसे आमतौर पर कहा जाता है? उसका इलाज क्या ओझा और पडित करेगे? ढोलावाले दादू रानी मझा की कथा सुनाते हैं। क्या सुनती है ये औरते ? या फिर सुनकर भी समझती नही श्रीधर सोचता है यही प्रताडना देखकर तुम्हारे बीच कोई मझा उठेगी सारग जो अपनी मर्जी से अपना बच्चा पैदा करेगी। भले बालक हीसविरे (जगल) मे जनमे। उसकी कोख का फैसला करने वाला कोई राजा होगा न कोई मालिक और न कोई देवता। नल की तरह जनम लेने वाला प्यारा सा बच्चा सिर्फ अपनी मॉ को पहचानेगा किसी राजा पिरथम को नही। जिरौली वाली को दी गयी यातना व्यर्थ नही जायेगी तुम्हारे मन मे विक्षोभ की एक चिन्गारी छिटकी यही क्या कम है? लपटे भी उठेगीं जो छीन लेगी अपने हक को इन वीर्य वर्द्धक जडी–बूटी और शिला–जीत खाने वाले मर्दो से [1]

---

[1] चाक पृ 214

इस तरह हम देखते है कि चाक और इदन्नमम्' दोनो मे नारी के दमन उत्पीडन एव शोषण का ही नही बल्कि युगानुकूल सत्य के रूप मे इस उत्पीडन दमन एव शोषण के विरूद्ध नारी के उठते कदमो की भी बडी मुकम्मल तस्वीर प्रस्तुत की गयी है। खुद मैत्रेयी का दृष्टिकोण इतना सतुलित है कि कही भी अतिवादी नारी सोच एव घोर आदर्शवादी सोच नहीं दिखाई पडी है। इसका सबसे बडा प्रभाव यह है कि इन उपन्यासो मे नारी की सघर्ष यात्रा मे पुरूष को भी सहयोगी दिखाया गया है।

नारी को मात्र वस्तु एव सम्पत्ति मानने वाला यह पुरूष सत्तात्मक समाज उसे किसी भी आरे से सॉस नही लेने देता। उसके अत्याचार से पीडित नारी यदि आह' भी भरती है तो उसे भी वह अपनी शान के खिलाफ मानता है। सच तो यह है कि नैतिकता मर्यादा पवित्रता धर्म एव सदाचार आदि की बाते भी पुरूष अपनी सुरक्षा एव नारी के मानमाने उपयोग के लिए हथियार उपकरण के तौर पर करता है। इतिहास साक्षी है कि नारी शोषण मे खुद नारी की मानसिकता जो मौलिक नही बरन अर्जित होती है बहुत बड़ी भूमिका निभाती है। नारी अबला है उसे पुरूष का सबल चाहिये ही नारी तो एक कोमल बेल है उसे खडा होने के लिए पुरूष वृक्ष का सहारा लेना ही होगा। जैसे पुरूष सत्ता द्वारा निर्मित मुहाबरो को नारी द्वारा अपनी पहचान' मान लेना उनकी गिरी हुई स्थिति का बहुत बडा कारण है।

मृदुला गर्ग के कठगुलाब मे मारियाना के शब्द है—औरत होना विडम्बना को जन्म देना होता है नहीं औरत होना एक विडम्बना है। जहॉ औरत होगी वहॉ विडम्बना जन्म लेगी ही— मारियाना के इन शब्दो मे औरत और मन की मूलभूत सरचना से जुडे कठोर यथार्थ को एक क्षण के लिए अनदेखा नही किया जा सकता है।

पुरूष भोगे और स्त्री भुगते–यह इस दशक की स्त्री को मान्य नही । अब वह बन्धनो के विरोध मे खडी हो गयी है। वह मातृत्व–एक दो तीन चार एक के बाद एक शिशु को जन्म देती, उस बधन मे जकडी और फसी लाचार महिलाओ को धिक्कारती है। कठगुलाब मे स्मिता और अमिता की बात–चीत है मुझे यह पुरातन औरतनुमा हल प्रपच पसद नही। दो टूक बाते करने का साहस हो तो मुझसे दोस्ती करना वरना अपना रास्ता नाप [1] स्पष्ट है कि मृदुलागर्ग कहती है कि स्त्री का शरीर उसकी अपनी मल्कियत है उसके देह पर उसका अधिकार है। वह चाहेगी तभी पुरूष उसका उपभोग कर सकता है।

इस दशक मे विवाह के मिथक टूटे हैं। आधुनिक स्त्रिया विवाह सस्था पर प्रश्न उठाती है मातृत्व पर प्रश्न उठाती हैं। यह सब पितृसत्तात्मक व्यवस्था का किया धरा है। इसी के द्वारा स्त्रियॉ गुलाम बनती हैं। कठगुलाब' मे नीरजा का विवाह सस्था मे कोई विश्वास एव आस्था नही है। वह एक शिक्षित युवती है जो डाक्टरी की पढाई कर रही है।

अन्तिम दशक की स्त्री उपन्यासकारो के उपन्यासो यह तथ्य उभरकर सामने आया है कि औरत की त्रासदी और असुरक्षा के मूल मे उसकी नारी देह है। मैं आज समझ यह पाई हूँ दुर्बलता मे नारी हूँ। इन लेखिकाओ ने अपनी रचनाओ मे स्त्री को अधिकार अस्मिता स्व' को पाने और सुरक्षित रखने की दिशा मे स्त्री–विमर्श को विविध स्तरो पर प्रस्तुत किया है।

---

[1] पृ 172

चित्रा जी का आवां' नारी चेतना की देशज प्रकृति पर जोर देता है। चित्रा जी जिन पात्रो के माध्यम से नारी चेतना और नारी विमर्श पर जोर देती हैं। उनके उपन्यास के प्राय सभी महिला पात्र हैं जो किसी न किसी रूप मे इन विमर्शो से जुडी है। उनमे प्रमुख हैं उपन्यास की नायिका व मुख्य पात्र नमिता देवी शकर पाण्डेय किशोरी बाई, सुनदा स्मिता की बहन और हैदराबाद प्रवास के दौरान उसकी सेविका नीलम्मा।

आवां' मे ऐसे अधिकाश नारी पात्र है जो पहले शोषित होती है और फिर जागरूक होकर शोषण का विरोध करती हैं। शोषको का मुकाबला करती हैं, लडती है लेकिन हार नहीं मानती। इस उपन्यास मे हर नारी पात्र की अपनी एक कहानी है एक व्यथा है हर स्त्री किसी न किसी रूप मे शोषण का शिकार हुई है। किसी भी स्त्री का कान्तिकारी होना पुरूष को बर्दास्त नहीं। पुरूषो को नारी दुर्बल सिमटी हुई और पराधीन ही अच्छी लगती है। जहॉ किसी नारी ने साहस दिखाया वही पुरूष के तेवर विगडे। नारी मुक्ति के पक्ष मे कितनी ही बाते कितने ही भाषण पुरूष दे सकते है लेकिन जहॉ उनके सामने कोई स्त्री प्रतिद्वन्दी के रूप मे आई वही वे अपने असली रूप मे आ जाते है। पुरूष सदैव स्त्री को अपने सामने छोटा ही देखना चाहता है।

आधुनिक समाज मे स्त्री चेतना, स्त्री स्वतत्रता और नारी की प्राय सभी समस्याओ का चित्रण आवां' मे है। वास्तव मे आवां' नारी स्वातत्र्य की मीमासा का उपन्यास हैं

तद्‌भव' के सितम्बर अक्टूबर 2000 के अक मे ज्योतिष जोशी ने लिखा है– – आवां' नमिता के सघर्ष उसकी यातना और अत मे उसकी असल जमीन की सही शिनाख्त करता है। इसलिये यह कहना बडा सहज है। अगर नमिता की जगह कोई पुरूष चरित्र होता तो शायद स्त्रियो की भयावहता इतनी न होती , पर उसकी विरूपता मे कोई अन्तर

नही आता । तथ्य यह है कि एक निम्न वर्गीय परिवार का जिम्मेदार कामकाजी मुखिया अन्तिम सॉसे गिन रहा है। घर मे अवोध बच्चे है घर की गृहिणी को परिवार का दुःख नही व्यापता ऐसे मे उस घर मे ईमानदार व्यक्ति का चैन के साथ जीना दूभर हो जाता है नमिता चुकि बडी सतान है इसलिए आर्थिक तगी की हालत मे पढाई को जारी नही रख पाती और घर की दशा सुधारने के लिए उलझती होती है। उसकी सारी मुश्किलो की जड उसकी इमानदारी है उसकी मनुष्यता है। उसमे सम्बन्धो को जीने की चाह है इसलिये वह सदेह करना नही जानती यह नही कहेगे कि पैसा उसे चला रहा है और वह उसी के लिए सब कुछ करती जा रही है उसमे स्वाभिमान जिदा है पैसे को वह हर हाल मे अपने से ऊपर नही मानती मानती होती तो अधाडी कार्यालय की अच्छी भली नौकरी क्यो छोडती अपनी परिस्थितियो से बेहतर लाचार होने के बावजूद नमिता अन्दर से दृढ और गैरतमद है। [1]

आवा' के नारी पात्र निर्बल भी है और सबल भी। वे पहले समपर्ण करती है और फिर जागरूक होकर अन्याय और शोषण का सामना करती हैं। चित्रा जी ने उपन्यास मे कही भी नारी समस्याओ को छोडा नही है उनके उपन्यास की कथा के साथ–साथ स्त्री विमर्श भी चलता है। वे नारी की समस्याओ की तरह बार–बार ध्यान आकृष्ट करती है। चित्रा जी समाज मे नारी की स्थिति को जानती भी हैं और समझती भी हैं इसी कारण उन्होने आवा' मे नारी–विमर्श को उससे जुडे हुए प्रश्नो को प्रस्तुत किया है, पूरे दायित्व और चेतना के साथ।

---

[1] तद्भव सितम्बर–अक्टूबर 2000 पृ स 215–216

जब तक स्त्री को समाज मे सम्मान उचित स्थान और न्याय नही मिलेगा। तब तक स्त्री स्वातत्रय नारी चेतना सब झूठी कल्पनाए है। सच्चे अर्थो मे सामाजिक सम्मान और न्यास के लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब स्त्रियो की सामाजिक राजनीतिक और आर्थिक प्रकिया मे भागीदारी सुनिश्चित हो। यह केवल स्त्रियो का मामला नही है। स्त्रियो की अधिकार सम्पन्नता न केवल स्वय उनके जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित करता है बल्कि वास्तव मे पुरूषो और उनकी सतानो पर भी प्रभाव डालता है। जिन पर हमारे परिवार और समाज के साथ–साथ देश का भी भविष्य निर्भर करता है।

बौद्धिकता

महिलाए पुरूषो के विरोध मे नही बल्कि अपने अन्यायपूर्ण अत्याचारी अतीत के विरूद्ध हैं। उन्हे पुरूषो से नहीं पुरूषो के सामतवादी और पूँजीवादी रवैये से मुक्ति चाहिये। वे बौद्धिक स्वतन्त्रता की आकाक्षा से भरी बैठी है। स्त्री केवल बच्चो को जन्म देने मे ही समर्थ नही है। वह स्वय को भी एक सत्यान्वेषी के रूप मे जन्म देने मे सक्षम है। वह प्रतिकियावादी ताकतो के खिलाफ है और अगर इन ताकतो मे स्त्री शामिल है तो वह उन समुदाय विशेष के भी विरोध मे है। एक स्त्री दमन का विरोध वस्तुत इसलिए भी करती है वह और उसके भीतर मॉ है–सृजन की मॉ है। इस अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा मे वह बौद्धिक आवाज उठा रही है।

स्त्रीत्व मातृत्व और शील जैसे बडे–बडे शब्दो के आडम्बर ने स्त्री को शारीरिक, मानसिक भावात्मक और आत्मिक बन्धनो मे ऐसा जकड रखा है कि अपनी घुटन को चुपचाप पीते रहने के अतिरिक्त उसके पास कोई उपाय नही रहा है। स्त्री मुक्ति की इतनी बाते और आन्दोलन होने के बावजूद भी मनुष्यता का यह आधा हिस्सा अभी भी उसी घुटन मे जी रहा है क्योकि उसकी जड तक नहीं पहुँचा गया है जहॉ से यह पीडा पनप रही है।

सयुक्त परिवारो मे अगर पुरूष के व्यक्तित्व का बौद्धिक और मानसिक विकास असभव है तो अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसे परिवारो मे स्त्री की स्थिति कितनी दयनीय होगी। मध्यम वर्गीय सयुक्त परिवारो के टूटने का मुख्य कारण आर्थिक ही है। इसीलिए औद्योगिकीकरण, नगरीकरण और शिक्षा के प्रसार के साथ–साथ वे अधिक तेजी से टूटते विखरते रहे है, जो अब तक आते–आते प्राय समाप्त हो गये है।

उच्चवर्गीय सयुक्त परिवारो मे आर्थिक सत्ता के उत्तराधिकार की जटिलताओ और पेचीदागियो के कारण ऊपरी तौर पर अभी भी सयुक्त परिवार बचे हुए है।

छिन्नमस्ता' को उच्चवर्गीय सयुक्त परिवार के विषैले और दमघोटू वातावरण से निकलकर अपने व्यापार और पूजी कमाने बढाने के बाद व्यक्तित्व के विकास या बौद्धिक और मानसिक विकास के लिए हर सभव साहस (दुस्साहस) और प्रयास करती विद्रोही स्त्री की आत्मकथा या आत्मविश्लेषण या आत्मसघर्ष के रूप मे देखा जा सकता है। शायद पहली बार हिन्दी उपन्यास की नायिक परिवार पूजी और परम्परा की चौखट लॉघ देशी–विदेशी सभी सीमाओ के उस पात तक स्त्रीपक्ष की वकालत के साथ–साथ एक खतरनाक बौद्धिक बिमर्श का जोखिम भी उठाती है।

प्रिया के लिए उसका व्यवसाय उसकी पहचान है। इसलिए उसने अपने लिए मोटो निर्धारित किया है– काम को काम की तरह किया जाना चाहिये। अपने व्यवसया के प्रति उसका गहरा और एकनिष्ठ समर्पण नरेन्द्र को परेशान करता हैं उसके अपने फ्रेम मे औरत का जो चित्र जडा है प्रिया का यह सब करना उसे उस सब से बेमेल लगता है एक उसने प्रिया के सामने रूपयो से भरा वीफ्रकेस उलटते हुए चिल्लाया था कि तुम्हे रूपये चाहिये न ये लो रूपये कितना चाहिये। रात दिन रूपये के पीछे भागती रहती हो। तब प्रिया कहती है– नरेन्द्र मै व्यवसाय रूपये के लिये नही कर रही। हॉ चार साल पहले जब मैने पहले पहल काम शुरू किया था, तब मुझे रूपयो की भी जरूरत थी। पर आज मेरा व्यवसाय मेरी आइडेटिटी है। यह आये दिन की विदेशो की उडान यह मेरी जिदगी के कैनबास को बडा करती है। नित्य नये लोगो से मिलना

जुलना जीवन के कार्य जगत को समझना। मुझे जिदगी उद्देश्यहीन नही लगती।[1]

छिन्नमस्ता की नायिका अन्तत कहती है नरेन्द्र की व्यवस्था के सामने हार मानने का यह अर्थ नही हुआ कि तुम सारे मुकामो पर हार गयी। उसे वहीं छोड दो जहॉ वह है। तुम खुद अपनी व्यवस्था बन सकती हो अपनी जमीन । एक स्थान पर अपने दोस्त फिलिप से कहती है—

यही कि बाद मे एक दिन मैने सोचा कि एक पुरूष पैसा कमाता है और दो चार लोगो को पाल देता है लेकिन स्त्री यदि सीमाए लॉघ जाय तो वह पारम्परिक समाज उसके लिए खत्म हो सकता है। पर मानव समाज तो बहुत बडा है। औरत होकर मैं जो समाज को दे सकती हूँ वह नरेन्द्र पुरूष होकर कभी नहीं दे सकता।[2]

इस यात्रा मे लेखिका ने नारी स्वातन्त्र्य की भावना का वास्तविक रूप उद्घाटित करने के लिए स्थिति और समस्या का चितन मनन और बौद्धिक विश्लेषण किया है।

नायिका जिस धनाढ्य परिवार की बहू है वह अभी भी हिन्दू सयुक्त परिवार के एडसन्स और एड ब्रदर्स की शैली मे व्यापार करता घराना है जहॉ व्यापार सम्पत्ति और प्रबन्ध पर पुरूषो का एकाधिकार हैं। ऐसे व्यापार मे स्त्रियो की सक्रिय भागीदारी असभव है क्योकि कुछ भी बॅटवाने का या पाने का कोई कानूनी अधिकार उसे नही है।

बौद्धिकता के कारण ही स्त्रियो मे स्वाभिमान की भावना आयी है। जिससे उनकी आर्थिक निर्भरता की प्रवृत्ति बढी है। प्रिया जब नरेन्द्र

---

[1] छिन्नमस्ता पृ 10–10

[2] वही पृ 210

से रूपया मॉगती है तो उसका अभिमान आहत होता है वह कहती है– नरेन्द्र से रूपया मॉगने मे हमेशा चोट लगती है। मेरा आहत अभिमान और उसके ताने– [1]

आगे कहती है– उफ! इस आदमी से मुँह लगना और बहस करना! मैने तो कभी अम्मा को आलू–परवल का हिसाब लिखते नही देखा। बाबू जी से कभी अम्मा ने रूपये नहीं मॉगे। जो आया उसमे खर्चा चला नही तो कम खा लिया। अम्मा ने थिगली लगी धोती पहन ली पर मॉगा नही। क्यो मॉगे ? स्त्री का कोई स्वाभिमान नही ? [2]

पीली ऑधी' के प्राय सभी सन्दर्भ अतीत और वर्तमान के बीच वाद–विवाद सवाद करते दिखलाई पडते हैं। सोमा स्त्री के अतीत मे झॉकने और उसके शास्त्र को समझने के लिए प्रतिबद्धता नही पालती। वह स्त्री के वर्तमान सन्दर्भो और उसके मनोविज्ञान को जानना समझना चाहती है। उसे अच्छी तरह मालूम है कि अतीत सिर्फ अतीत होता है वह उसी रूप मे लौटकर कभी प्रत्यक्ष नहीं होता। वह जानती है वर्तमान मे जीते हुऐ एक ओर अतीत का साक्षात्कार किया जा सकता है। और दूसरी ओर भविष्य का बेहतर निर्माण भी। इसलिए वह वर्तमान सिर्फ वर्तमान मे रहना चाहती है।

प्रभाखेतान ने अपने लेखो और उपन्यासो मे स्त्री' पर बराबर विमर्श किया है। अस्तित्ववादी दर्शन की विदुषी होने के कारण उन्होने जमकर स्त्री अस्तित्व की खोज की है।

---

[1] वही पृ 191

[2] वही पृ 191

स्त्री के अन्तर्मन को समझ पाना किसी रहस्यलोक का साक्षात्कार करना है। वह क्या–क्या सोचती है। मन के भीतर के कर्मलोक मे क्या–क्या करती है इसे कोई स्त्री ही शायद ठीक से समझ सकती है। स्त्री के भीतर प्रवेश करके उसके मनोलोक को टटोलना प्रभा खेतान द्वारा पीली ऑधी' मे सम्भव हुआ है। एक स्त्री स्त्रीत्व बोधलेकर अन्तत' क्या चाहती है उसका अनावरण करती हुई लेखिका ने सोमा के भीतर झॉकने का प्रयास किया है। मातृत्व की प्रबल इच्छा रखने वाली सोमा चाहती है नही मेरा शौक चाहत से जुडा हुआ है मैं एक बच्चे को गोद मे लिए चुपचाप ढलती हुई शाम को देखना चाहती हूँ। बजती हुई शख–ध्वनि आरती की घटियॉ आकाश क्षितिज और टुकडा–टुकडा रगीन बादल। [९]

दरअसल स्त्री के अन्तर्विरोधो से प्रभा खेतान का पूरा परिचय रहा है। स्त्री–पुरूष के अनुकूल और प्रतिकुल दोनो ही स्वरूपों से उनका साक्षात्कार हुआ है उनका मानना है कि स्त्री–पुरूष सम्बन्धो को लेकर उपलब्धि का हिस्सा पुरूष के खाते मे और जिम्मेदारी का हिस्सा स्त्री के खाते मे जाता रहा है। प्रभा जी ने पीली ऑधी' मे कहीं–कही सोमा की बौद्धिकता भी प्रमाणित करती चलती है। वह प्रेम चाहती है प्रेम के सामने भौतिक वैभव कुछ भी नही है। वह अन्दर ही अन्दर घुटती रहती है एक जगह सुजीत से कहती है' मै अन्जान नही सुजीत। सुख–सुबिधा धन का महत्व सब कुछ समझती हूँ लेकिन इनकी जरूरत की सीमा तक? इस बडे घर मे मुझे दो वक्त का अच्छा खाना कुछ साडिया एक एअर कडीशन कमरा। बस यही सब कुछ तो मिला है। मैने आभाव नही जाना लेकिन तुम भी तो कभी भूखे नही रहे। तब फर्क? स्टेट्स का? रूँगटा हाउस का? हॉ सुजीत रूँगटा हाउस का महत्व बहुत बडा है। ऊँची–शान है। लेकिन मेरी नही। मुझे किसी भी निर्णय का अधिकार नही। मैं यहॉ कुछ भी नहीं। कुछ भी नहीं। सुजीत मैं मरना नहीं चाहती। जीना चाहती

हूँ। जीना तुमको डर लगता है सुजीत? तुमको मुझसे डर लगता है? [1]

ऐसी सोच एक वौद्धिक नारी की ही हो सकती है। वह अपना एक स्वतत्र अस्तित्व चाहती है। वह चाहती है कि लोग उसे जाने न कि किसी रूँगटा हाउस की वजह से जाने ।

प्रभा जी ने चित्रा' को भी एक वौद्धिक नारी के रूप मे भी दिखाया है। सोमा के आने पर वह सुजीत से लडती नही है और न ही सोमा को दोष देती है। शायद इसीलिए वह कह पाती है–

सोमा कुछ कहने की जरूरत नही है। पिछले रविवार को मुझे सुजीत ने बता दिया था लेकिन फिर भी सब कुछ नही बताया। यह नही कहा था कि तुम उसकी सतान की माँ बनने वाली हो। कैसी अजीब बात है कि उन्होने मुझे इतना कमजोर समझा। सच का सामना करना कोई कठिन काम तो नही। [2]

परन्तु सोमा स्वय को उसका अपराधी समझती है और कहीं न कही उसके मन मे अपराध बोध रहता है तभी चित्रा आगे कहती है–

चुप! अपराध बोध से ग्रसित होकर बच्चे को मत बडा करना। जो कुछ भी घटा वह कोई नया तो नही। मै भी तो किसी अन्य पुरूष के प्रेम मे पड सकती थी। इसमे तुम्हारा क्या दोष है? [3]

यहाँ स्त्रियो में स्वाभिमान भी दिखाया गया है। वह चाहती हैं कि उनके उपर कोई दया न करे वह अपना हक चाहती है अपना

---

[1] पीली आधी पृ 245

[2] वही पृ 259

[3] वही पृ 2E

अधिकार चाहती है। वह प्रेम अधिकार से चाहती है भीख मे नही। इसका उदाहरण सुजीत की पत्नी चित्रा है

हॉ दुख तो हुआ था। मैंने पहले कहॉ ना जब सुजीत से पहले पहल इस सम्बन्ध की चर्चा की थी तो मै भी रोई थी। खूब–खूब रोई थी। सुजीत को धोखेबाज कहा था। फिर बाद मे लगा कि यह धोखा तो मैं स्वय को दे रही हूँ। जब प्रेम ही नही तब किस बात की जलालत? प्रेम की भीख नही मॉगी जाती। मेरा अपना कोई आत्म सम्मान नही? और फिर यह किस शास्त्र मे लिखा है कि किसी से प्रेम करो तो ताउम्र करते जाओ। [1]

मैत्रेयी पुष्पा का चाक स्त्री–विमर्श का उपन्यास है जो इस विमर्श की देशज प्रकृति का खुलासा करता है। वे इस विमर्श को पढी लिखी नौकरी–पेशा बुद्धिजीवी स्त्री की सीमा से बाहर निकालकर गॉव और खेत खलिहान मे काम करती स्त्री से जोडती है।

व्यक्तिगत स्तर पर रेशम की हत्या से प्रतिशोध की आग से सुलगती हुई ग्रामीण समाज के मूल्य रहित वर्चस्वबाद के आतक से क्षुब्ध बेटे चदन की सुरक्षा के लिए चित्रित सारग को शिक्षित पति रजीत ने भरपूर आश्वासन दिया था कि वह सारग की लडाई लडेगा पर जिस दिन उसे जात मर्यादा की क्षति की आशका हुई वह सारग को उसकी औकात समझाने लगा। सकेत था कि वह रजीत सिह जाट की बहू के रूप मे अपने बजूद को न भूले। और सारग थी कि हर क्षण बदलने के लिए अपनी पहचान बनाने के लिए तडफ रही थी।

---

[1] वही पृ 260

रजीत के भाई दलजीत ने पूँजीवादी विकास से प्रेरित होकर यह समझाया कि गॉव की जगह जमीन वेचकर शहर मे प्लाट खरीदने बेचने का धधा करो वह भी नही तो मुर्गी पालन करो सरकार से कर्ज मिल जायेगा। बैठा–बैठी का रोजगार है यह। रजीत यह समाधान मान लेता है कि वह तो गॉव मे ही रहेगा लेकिन उसका बेटा चदन दलजीत के साथ आगरा चला जाएगॉ पढने के लिए । सारग चदन को भी शहर भेजने के खिलाफ है। वह गॉव के दरिन्दो से लडना चाहती है। चन्दन को शहर भेजने के प्रश्न पर रजीत और सारग के बीच जो विवाद होता है उसमे नारी की बौद्धिक चेतना का उसके अधिकार का एक नया रूप सामने आता है। सारग कहती है– जैसे चदन अकेले तुम्हारा ही बालक हो। तुम ही उसके कर्ता–धर्ता तुम ही पालन हार मै कुछ नही मै कुछ नहीं कुछ भी नही ऐसा क्यो लग रहा है आज? यहॉ पर यह प्रश्न सामने आते है कि बालक का अभिभावक क्या केवल पुरूष है स्त्री नही? उसके बारे मे निर्णय क्या केवल पिता करेगा मॉ की राय का कोई महत्व नही?

पहले तो रजीत की बात चल जाती है। और चदन अपने चाचा दलजीत के साथ आगरा चला जाता है। चन्दन का जाना सारग को वैसा ही लगता है जैसा कुछ दिन पहले धौरी गॉय के बछडे प्रथम' का मर जाना। लेकिन आगे चल कर सारग चुपके से पत्र लिखकर चदन को गॉव बुलवा लेती है। यह है अधिकार का उपयोग। सारग यह स्थापित कर देती है कि पुत्र के बारे मे वह भी स्वतत्र निर्णय कर सकती है।

सारग का अन्तिम स्वतत्र निर्णय है पचायत के चुनाव मे प्रधान (मुखिया) पद के लिए चुनाव लडने का वह रजीत से पुछे बिना। सारग अपनी जगह अडिग है तभी तो वह आल्हा गाने वाले मास्टर श्रीधर के प्रति अनायास ही आकर्षण महसूस करती है। स्कूल के एक आयोजन के

प्रसग मे श्रीधर गॉव मे घूमता हुआ उसने देखा उसे बराबरी से मूढे पर बैठा तो दिल जुडा गया उसका वह सोचती है– तो तुम वही हो मास्टर जिसकी मुझे तलाश है। बहादुरी के नाम पर मक्कारी के किस्से नही सुनाते। इन छोटे–छोटो के दिल मे वीरता के बीज बोने आये हो यही मानसिकता है जो सारग की बौद्धिकता की ओर सकेत करती है और उसे नारीवाद की सीमा से ऊपर उठाकर उदात्त बना देती है। श्रीधर प्रजापति बच्चो के साथ सारग के ऑगन मे चला गया तो सारग ने उसे तिलक लगाया और अनायास ही पैर छू लिये। यह वीरता का अभिनदन है और उसी के प्रति नमन भी। एक क्षत्रिय जाट महिला कुम्हार के पैर छू लेती है। जैसे मीरा ने रैदास को गुरू बनाकर नमन किया।

इदन्नमम मे भी कथा लेखिका ने एक बौद्धिक नारी का चित्र खीचॉ है। उसकी बौद्धिकता से ही प्रभावित होकर सोनपुरा के लोग उसका साथ देते हैं उसे अपना नेता मानते है। तभी महाराज जी कहते है– तै ते तो आगे–आगे चल बेटा! फिर अनुगामी तो चले आयेगे स्वत ही [1]

सोनपुरा के लोगो ने आखिरकार मन्दा के नेतृत्व में सघर्ष करके अपना अधिकार (पहाडी पर मजदुरी) पा ही लिया।

नि सन्देह ही भ्रष्ट राजनीति ही विकास कार्यो को बाधित करने के लिए उत्तरदायी है। नेतागण विकास के प्रति सच्चे मन से समर्पित नही होते बरन् वे तो केवल वोट–बैंक सुदृढ करने की युक्तियो मे लगे होते है। तभी तो मन्दा राजा साब पर व्यग करते हुए कहती है, 'राजा साब दिन मे आते तो ठीक रहता। देखते तो सही कि पॉच साल मे कितना बदल गया

---

[1] 'इदन्नमम् पृ 211

है यह गॉव गॉववासी दर्शन भी कर लेते। जिन तेरह–चौदह साल के लडके–लडकियो ने इनको पहले देखा होगा कि न देखा होगा वे अब अठठारह के हो रहे है।[1] कितनी बडी विडम्बना है भारतीय लोकतन्त्र की। इससे भी बढकर कटुसत्य यह है कि विश्व के सबसे बडे लोकतान्त्रिक देश (भारत) मे वोट की खरीद फरोख्त होती है। मैत्रेयी इस बात को मन्दा के शब्दो मे व्यक्त करती है– हर वोटर को उसके वोट की कीमत धरते है आप के कार्यकर्ता दो सौ तीन सौ चार सौ और पॉच सौ तक मे निपटा लेते है सौदा।[2]

शराब का ठेका किस तरह मजदूरो के लिए हानिकारक सिद्ध हो रहा है उसे मन्दा बताती है– कैशर क्या आया शराब का ठेका सग लाया। सो तबाह हो रही है गृहस्तियॉ, उजड रहे है बाल–बच्चे। आदमी पी–पी कर बेसुध हुआ जा रहा हैं। आपकी पुलिस निहत्थो को ही करती है परेशान । बताइये किससे कहे?[3]

आवा' उपन्यास मे चित्रा मुद्‌गल जी ने नारी बिमर्श से जुडी हुई सभी बातो को उठाया है उन्होने अपने उपन्यास मे जिन नारी चरित्रो को उभारा है उन्हे यह बताने के लिए उभारा है कि स्त्री की मुक्ति का सवाल नारी विमर्श का सवाल आज भी कितना कठिन है और जटिल है। यह एक आवॉ है जिसमे स्त्री निरन्तर तप और सिर्फ तप रही है चिटख और बिखर रही है जल कर भष्म हो रही है राख बन रही है और कहीं कुछ आयामो पर किसी नीलम्मा किसी सुनन्दा और किसी किशोरी बाई की तरह पक और मजबूत हो रही है।

---

[1] इदननमम पृ 332
[2] वही पृ 332

[3] वही पृ 331

चित्रा जी ने सुनन्दा के माध्यम से एक सशक्त महिला पात्र की रचना की हैं । जिसमे साम्प्रदायिकता से धर्मान्धता से लडने का साहस है धैर्य है। इसी लडाई मे उसकी मॉ किशोरी बाई उसके साथ है लेकिन दुर्भाग्यवस सुनदा हिन्दू–मुस्लिम बलवाइयो का शिकार हो जाती है वे सुनदा की हत्या कर देते है यह तो सुनदा की बौद्धिक क्षमता थी कि वह प्रेम को धर्म और जाति से ऊचा मानती है–

प्रश्न यह था कि मै औरो की सुख सन्तुष्टि के लिए अपने सच को घोट दूँ या अपने स्व' के लिए सरक्षण के लिए उसके उगने को देह धरने दूँ, उसे एक पेरी की पूरी काया ग्रहण करने दूँ सुहेल ने प्रेम करने के समय तो कोई शर्त नही रखी? ब्याह करना होगा तो उससे नही इसलाम से करना होगा या उसे हिन्दुत्व से? [1]

तदभ्‌व के सितम्बर–अक्टूबर 2000 के अक मे ज्योतिष जोशी जी ने लिखा है– आवा' नमिता के माध्यम से जिस स्त्री–विमर्श को प्रस्तुत करता है उसका सूत्र सीमोन द बोउवार' के दे सेकेण्ड सेक्स' से जुडता है। नारीवाद अपने को समर्थ बनाने के काम आये तो वरेण्य है केवल नारे उछालने भर से स्त्री की सामाजिक स्थिति नही बदल सकती। परिवार समाज और राष्ट्हित के दायित्वो को विमुखता और निरतर वैयक्तिक सुखों की खातिर स्वतन्त्रता का अतिक्रमण ही यदि नारीवाद का घोषित उद्‌देश्य है तो आवा की नमिता अपने आचरण से उसका निषेध करती है। [2]

---

[1] आवा पृ स 191

[2] आवां पृ स 216 तद्‌भव 'सितम्बर–अक्टूबर 20002

पुरूष के वर्चस्व और उसकी आचारगत निरकुशता की बचाव की दृष्टि से हर्षा नमिता को हाथ मे सूचा लेकर चलने का सुझाव देती है ताकि पुरूषो की शारीरिक ज्यादियो का माकूल जबाब दिया जा सके।

नीलम्मा का भी आत्मविश्वास और स्वाभिमान उसके स्वावलम्बन और कर्मठता से उपजता है। उसके अनुभव उसे अच्छे–बुरे की पहचान कराना सिखा देता है। पुरूषो की भक्षक दृष्टि से मुकाबला करने का साहस उसकी बौद्धिक क्षमता से ही आता है। नैतिकता और अनैतिकता का भेद करने और उसका विरोध करने का विवेक उसमें जागृत होता है। अपने दैहिक शोषण के एहसास के बाद नमिता मे जो चेतना जागृत होती है वह नीलम्मा के जीवन बोध और चेतना से प्रेरित होती है नमिता के ही शब्दो मे– नीलम्मा ने बहुत बडी ताकत दी है सच कहूँ नीलम्मा ही मेरी ताकत बन गयी है। [1]

इस दशक के उपन्यासो मे नारीं का जो स्वरूप चित्रित हुआ है उसमे अन्य गुणो के साथ बौद्धिकता भी है। चाहे स्त्री पढी– लिखी आधुनिक हो जैसे प्रिया या सोमा–या कम पढी–लिखी जैसे–मन्दा, सारग यें सब पूर्णत बौद्धिक नारियॉ है।

---

[1] आवा पृ स 543

<u>विद्रोहवृत्ति</u>

कहा जाता है कि पिछले छ–सात वर्षो मे महिला लेखिकाओ ने अपने साहित्य मे स्त्रियो का एक अलग ही रूप दिखया है। वे अपने अधिकार के प्रति जागरूक हुई है तथा उनमे विद्रोह वृत्ति भी है।

सदी के अन्तिम वर्ष मे पूरी सदी अपनी सफलताओ ओर विफलताओ के साथ हमारे सामने खडी है। जातिभेद आधारित सामती व्यवस्था मे शुद्र और स्त्री सर्वाधिक शोषित रहे है। स्त्री भी मनुष्य है और उसे अधिकार है कि वह मनुष्य की गरिमा से युक्त जीवन जिये। समाज म स्त्री की दमनकारी शक्तियॉ प्रबल है परन्तु ये सघर्ष करती है। पति की पूरक शक्ति के रूप मे कधे से कधा मिलाकार हर काम मे सहयोग देती है। पुरूष द्वारा शासित होकर भी ये शक्ति सम्पन्न है, इनके चरित्र मे नैतिक साहस भी है।

छिन्नमस्ता' की प्रिया अपने अस्तित्व के लिए अपनी पहचान के लिए विद्रोह करती है। दर्शन शास्त्र से समाजशास्त्र तक सभी प्रमुख किताबी विचारो के वावजूद प्रिया की जिन्दगी विरोधाभास का बडल' ही बनी रहती है खोई हुई अस्मिता को पुन प्राप्त करने के सघर्ष मे प्रिया के सामने जो मॉडल है वह उसे लगातार बही बनाता है जिसके खिलाफ उसकी सारी लडाई विद्रोह या क्रान्ति है–

प्रिया निरन्तर शोषित है। दाई मॉ ने यदि मॉ जैसी ममता देकर उसे पाला न होता तो पता नही उसका क्या बनता। मॉ की उपेक्षा और अपने को मनहूस समझी जाने के कारण ही शायद वह बीमार रहने लगी थी। एक बार सभी लोग पिकनिक करने के लिए रॉची के हुडरू फाल जाने की तैयारी कर रहे थे। दोनो भइया लोग बाबू जी के साथ आगे वाली गाडी में बैठते हैं। लेकिन जब गाडियॉ स्टार्ट होने लगी तो प्रिया की मॉ ने कहा कि एक बच्चा उनके साथ कर दिया जाय तो राधा

ने गेट खोल कर प्रिया को आने के लिए कहा। यहॉ पहली बार विद्रोह करती हैं और उतरने से इकार कर देती है– नही मैं नही उतरूँगी।

प्रिया के मुँह से यह पहला विद्रोह का वाक्य था।

आती है या नही ? हरिया ला तो इसे अम्मा की आवाज कडकी'

प्रिया सोचती है–

मैं कहना चाह रहीं थी–लेकिन क्यो अम्मॉ क्यों ? आपको मेरी क्या जरूरत पड गयी ? पर बोलने की हिम्मत नहीं हुई । बस ऑखे बरसने लगी। बाद मे अम्मा राधा से कह रही थी सरोज मानती नही विल्लू तो बादरा है तग करके रख देता है' नीलू अम्मा की लाडली थी वह कोने वाली खिडकी पर चुपचाप बैठी थी। क्या मै ही दब्बू थी जिसे अम्मा के हुकुम पर हमेशा नाचना पडता। [1]

अपने व्यवसाय के प्रति वह पूरी तरह से समर्पित है। उसकी तरक्की देखकर उसका पति नरेन्द्र चिढ जाता है क्योकि उसक अपने फ्रेम मे औरत का जो चित्र जडा है प्रिया का यह सब करना उसे उस सबसे बेमेल लगता है। शुरू मे नरेन्द्र को ये लगा ही नही कि अपने निजी व्यवसाय के रूप मे प्रिया की छोटी सी शुरूआत उस पर उसके स्वामित्व के अन्त की शुरूआत भी है। इसलिए यह अफसोस उसे हमेशा बना रहता है कि उसने शुरू मे हीं उसके पर न कतर कर उसे इतनी आजादी क्यो दी। नरेन्द्र ने साफ कहा था कि यदि लदन जाओगीं तो इस घर से हमेशा के लिए जाओगी। पहले तो प्रिया बात बनाने की कोशिश करती

---

[1]छिन्नमसता पृ स 101

है। लेकिन जब नरेन्द्र पर असर नहीं होता तो वह दृढ निश्चय के साथ कहती है– चीखो मत नरेन्द्र। बस इतना सुन लो कि मै लन्दन जाऊगी।[1]

लदन से आने के बाद वह नरेन्द्र से अलग हो जाती है सजू नरेन्द्र के पास ही रहता है। उसी दिन शाम को नरेन्द्र फोन करता है यह जानने के लिए कि प्रिया अपने साथ क्या–क्या लाई है तो वह कह देती है–

नरेन्द्र तुम्हारा। सब कुछ तुम्हारे पास छोड आई हूँ। कुल बीस साडियॉ और किताबे लायीं हूँ।

और हॉ सजू को बीच–बीच मे भेजते रहना। ऐसा न हो कि मैं कोर्ट मे जाऊ?

बडे तैश मे बाते कर रही हो ?

नरेन्द्र आदमी की भाषा मे बाते करो।[2]

प्रिया विद्रोह करके सजू को छोटी मॉ के घर भेजती है और नरेन्द्र कोधित होता है तो तर्क–वितर्क करती है जिसका परिणाम होता है कि नरेन्द्र उस पर हाथ भी उठा देता है।

इसे वहॉ कौन ले गया ? पापा आप ?

बात मैंने ही सम्भाली मैने ही भेजा था।

क्यो ? किसके हुकुम से ? नरेन्द्र की ज्वाला अभी शान्त नहीं हुई थी

अपने घर मे अपनी बुआ और दादी के पास जाने के लिए सजू को इजाजत लेनी पडेगी।'

---

[1] वहीं पृ स 14

[2] वही पृ स 180

सुनो प्रिया ! सजू अब कभी वहॉ नही जायेगा।

नरेन्द्र ने एलान किया।

तब तुम भी सुन लो मै जाऊगी और सजू केवल तुम्हारा ही बेटा नही मेरा भी हक है उस पर । वह भी जायेगा। दया ममता इन्सानियत कुछ भी नहीं तुम लोगो मे ? मै पूछती हू पापा किसके सहारे चलते–फिरते नजर आते हैं ? कौन है जो पापा का ख्याल रखता है ?

प्रिया ? तुम चुप करो मै कहता हूँ, चुप करो। नहीं मै चुप नहीं करूँगा । अब नहीं। नीना मेरी ननद है। सजू की बुआ हैं। इस घर की बेटी है। [1]

स्त्री और उसके अस्तित्व के लिए निरन्तर सोचने और लिखने वाली प्रभा खेतान ने अपने उपन्यास पीली ऑधी' मे नारी को उसकी अस्मिता के साथ जीने का उत्साह प्रदान किया है पुरूष के वर्चस्व और एकाधिकार पर पुनर्प्रश्न खडे किये है। स्त्री को आत्म सघर्षरत रहने की प्रेरणा प्रदान किया है। इस समग्र अभिव्यक्ति के लिए उन्होने चुना हैं सोमा को। सोमा पुरूष के हठीले वर्चस्व को तोडती है और साथ स्त्री के भी सडे–गले रूढिपोषक विचारो से टकराने के लिए तैयार रहती है।

पीली ऑधी मे पीढी–सघर्ष दिखाई पडता है। यह तथ्य तो सर्वविदित है कि यदि ऐसा सघर्ष होगा तो विद्रोह का होना स्वाभाविक है–एक दिलचस्प प्रसग देखा जा सकता है–

अचानक सोमा को न जाने सब कुछ कैसा लगने लगा। इस पूरे घर को जैसे पजे मे दबोचे हुए ताई जी उन्मत्त अट्टाहास करती हुई घूम रही हैं। एक औरत की इतनी क्षमता। सोमा ने सोचा मम्मी बेचारी तो पापा की एक घडकी से रो देती है। उसने मन ही मन निश्चय किया, नहीं

---

[1] छिन्नमस्ता पृ स 146

विद्रोह करना होगा। पहले दिन से आज से अभी से इसी क्षण से वुढिया जो बोलेगी उसका उलटा करूँगी। देखूँ मेरा क्या विगाड लेती है।[1]

सोमा दो पाटो के बीच मे फँसी पडी थी एक तरफ पति गौतम था पौरूष विहीन पति और दूसरी तरफ उसकी इच्छा की प्रतिपूर्ति में सहायता करने वाला उसका प्रेमी सुजीत। ऐसे मे किसी परम्परावादी कुटुम्ब की स्त्री का भटकना सामाजिक दृष्टि से उपयुक्त न था परन्तु वह स्त्री किसी समृद्ध सेठ घराने की स्त्री होकर भी प्रभा खेतान की रची हुई वर्तमान स्त्री थी। उसे नये निर्णय मे ही, नये मार्ग पर चलने पर ही सफलता दिखाई पड रही थी। वह परम्परा तोडती है पति से विद्रोह करती है–

सोमा उठकर सीधी खडी हो गयी। भय नही कातरता नहीं। उसने बस स्पष्ट शब्दो मे कहा– मैं तलाक चाहती हूँ गौतम!

और मै यदि किसी से कुछ नहीं कहूँ, तुम्हारे इस पाप को अपना लूँ तब भी तुम तलाक चाहोगी ?

हॉ गौतम तब भी मैं तलाक चाहूगीं'

वह तुम्हारा यार विवाहित है। एक वच्ची का बापॅ है।

मैं सब कुछ जानती हूँ गौतम'

हॉ गौतम ! मैं अपने पैरो पर खडी हो सकती हूँ शायद इस घर से बाहर तुमको एक हजार की नौकरी नही मिले लेकिन मुझे मिल जायेगी।[2]

---

[1] पीली ऑधी पृ 181

[2] वही पृ 252

सोमा विवाहित स्त्री होते हुए भी एक विवाहित पुरूष से प्रेम करती है। उसे इस सम्बन्ध को लेकर कोई ग्लानी कोई अपराध बोध नही है। वह विवाह सस्था (बधन) को तोडकर एक पराये पुरूष के साथ रहती है वह सुजीत से कहती है– विवाह एक सस्था है रजिस्टी के कागजों पर सही किया हुआ नाम है। तलाक की व्यवस्था कानून ने बनायी है। कानून मनुष्य के स्वभाव को समझकर ही बनाया जाता है। यदी दो व्यक्ति एक साथ नही रह सकते यदि कोई गहरी कमी हो तब इस बन्धन को तोडा जा सकता है। बल्कि तोड ही देना चाहिये।[1]

सोमा को सभी लोग समझते है पर वह अपने निर्णय पर अडिग रहती है क्योकि वह वर्तमान नारी विचारों की सम्बाहिका प्रभा खोतान की स्त्री थी। उसे विद्रोह करना था सडी गली रूढियो के प्रति। गौतम और सोमा के रिस्ते पति–पत्नी के थे मगर पत्नी (सोमा) पति (गौतम) से मुक्त होना चाहती है। यानि एक स्त्री एक पुरूष से विद्रोह करती है। पुरूष से हाथ छुडा पाना किसी भी स्त्री के लिए कठिन होता है। हर बार किसी भी बात को सोमा को क्षमा याचना के लिए विवश करने वाला गौतम कभी किसी स्थिति मे क्षमा न मागने पर उसे प्रताडित करने मे आत्म सन्तोष अनुभव करता है। सोमा भी साफ कहती है कि उसने सुजीत के साथ जो सम्बन्ध बनाया है गलती से नही सोच समझ कर बनाया है–

मैने जानबूझ कर सोच समझ कर किया है'[2]

---

[1] वही पृ 245

[2] वही पृ 250

एक बार सोमा पुजारी भैया को ढोगी कहती है तो गौतम लड पडता है। और उसे पुजारी भैया से माफी मॉगनें के लिए कहता है परन्तु सोमा इन्कार कर देती है—

नहीं मै सीरियस हूँ, विल्कुल डेड सीरियस तुम्हे पुजारी भैया से चलकर मॉफी मॉगनी होगी।

नही मॉगोगी तो लो भोगो मजा' और सच मे उसने इतनी जारे से कलाई मरोडी थी कि सोमा चीख उठी। [1]

सारग की कथा नयी है यानी कुरबान होने के सिलसिले मे पूर्ण विराम लगा देने का प्रयत्न है। रेशम की हत्या के बाद सारग प्रश्न उठाती है— तमाम बूढे—बढे गुमसुम क्यो रह गये ? इनकी जिह्वा क्यो लकडा गयी ? ये महापुरूष शाबाशी के पात्र है या धिक्कार के ? इनकी लाज—लिहाज हम क्यो करते हैं? 'इस समय ऐसा लगता है कि सारग के रूप मे महाभारत की द्रौपती बोल रही है।

इस उपन्यास मे एक अनोखा चरित्र हैं गॉव के स्कूल मे आया नया मास्टर श्रीधर प्रजापति। यह मास्टर सारग को आकृष्ट करता है सघर्ष की नयी ताकत देता है अन्याय के प्रति विद्रोह की क्षमता को और बढाता है। इस चरित्र का अनोखापन केवल शिक्षक होने के कारण नहीं बल्कि शिक्षक होना तो साधारण बात है। असली बात यह है कि वह शिक्षक है सामाजिक राजनीतिक अधिकार पाने के लिए लडने के नये दौर मे है। उसके व्यक्तित्व मे जागरण की चेतना तो है ही जागरण के पीछे काम कर रही शक्तियो का आधार हैं इनसे श्रीधर को नयी शक्ति मिलती है। यही कारण है कि श्रीधर एक स्कूल मास्टर होकर भी गॉव की खुखार आततायी और रूढिवादी शक्तियो का डटकर विद्रोह करता है। गॉव के

---

[1] वही पृ 139

सामाजिक ही नही राजनीतिक शक्ति सतुलन को भी बदलने के लिए योजनाबद्ध रूप से लडता है। इसके लिए शिक्षा के माध्यम से बच्चो से लेकर महिलाओ और अन्य तबको मे नयी चेतना फैलाता विद्रोह का नया पाठ पढता है। वह आने के साथ ही नयी चेतना यानी जनतान्त्रिक अधिकार के लिए सघर्ष की चेतना फैलाने लगता है। गुलकदी नये मास्टर के बारे मे सारग को बताती है–नया मास्टर रामायण नही आल्हा की चौपाई सुनाता है– हम न भगि है रण समूहे से। सारग को भी नयी ताकत मिलती है क्योकि रजीत लडाई से भाग चुका है और सारग को भी समझाता है – सम्भालो खुद को। ये नादानी की बाते करना भूल जाओ त्रिया चरित्र पसारना तुम जैसी औरत को शोभा नही देता। तुम जैसी औरत कहने का मतलब है यह याद दिलाना कि सारग गुरूकुल मे पढी हुई है और फिर रजीत की पत्नी है।

अतरपुर का सघर्ष जो रेशम की हत्या किये जाने और उसका विरोध करने से शुरू हुआ था वह अन्तत पचायत पर कब्जा करने की लडाई मे तब्दील हो जाता है। सारग ने जो सघर्ष अपने या नारी की स्वतन्त्रता अथवा आत्मनिर्णय के अधिकार के लिए शुरू किया था वह नारी की राजनीतिक सत्ता कायम करने यानी पचायत पर नारी का प्रभुत्व कायम करने के लिए सारग के उम्मीदवार के रूप मे मैदान मे उतरने तक पहुँचता है। आत्मनिर्णय की इस हद तक कि उम्मीदवार बनने की अनुमति रजीत से लेने का तो प्रश्न ही नही उठता। यह जानते हुए कि रजीत भी उम्मीदवार बन सकता है सारग उसको अपनी उम्मीदवारी की सूचना तक देना जरूरी नहीं समझती और श्रीधर एव भॅवर के कहने पर उम्मीदवार बन जाती है।

करमीबीर के मरने के सिर्फ पॉच महीने बाद रेशम अपने अज्ञात प्रेमी का गर्भधारण करके वह दिलेरी से उसका ऐलान भी करती

है। अपनी सॉस हुकम कौर से कहती है– अम्मॉ तुम विरथा ही दॉत कटकटा रही हो। तुम्हारे पूत की चिता ठडी हो जाने से क्या मेरी देह की आग बुझ जाती ? जीतो मरतो का भेद भी भूल गयी तुम? बेटा के सग मै भी मरी मान ली ? [1]

ऐसी भाषा के व्यक्तित्व मे अद्‌भुत 'जुझारूपन एव 'साहस' देखने को मिलता है। इदन्नमम् मे हर–नारी अपने–अपने स्थान पर सघर्ष की तैयारी मे है। या सघर्ष कर रही है। परिवार के भीतर–बाहर सुरक्षा और सरक्षण की प्रकिया मे औरते पुरूषो के हाथो जब बार–बार छली जाती है तो अपने–अपने या उपलब्ध रास्ते खुद चुनती है। पुरूष स्त्रियो को सुरक्षा या सरक्षण देता है तो बदले मे स्त्री–देह दॉव पर लगाती है या उसकी सम्पत्ति कभी–कभी दोनो ही। वह पुरूष–सत्ता की शतरज सम्पत्ति और सम्बन्धो के समीकरण और मानसिक सस्कार के सकटो को साफ–साफ समझती–समझाती आधी–दुनिया' अपने मानवीय अधिकारो के हनन दमन के विरूद्ध प्रतिरोधक शक्ति को सगठित और सुदृढ करने की कोशिश मे चौपाल तक जा पहुँचती है।

कुसुमा इस उपन्यास की सबसे सशक्त महिला पात्र है। पति यशपाल की परित्यक्ता कुसुमा आरम्भ मे तो सस्कारजन्य निरीहता के चलते पति को अन्याय का तनिक भी विरोध नही करती है और चुपचाप सौत की पीडा सहती है परन्तु जैसे ही रूगण दाऊ जू के प्रेम का सम्बल मिलता है उसके भीतर दबी कुचली नारी उठकर खडी होने लगती है उसमे विरोध करने की ताकत आ जाती है। इस प्रेम के फलस्वरूप प्राप्त सतान को सबके सामने दाऊ जू' का घोषित करने मे तनिक भी

---

[1] चाक पृ.19

नही डरती। यशपाल मारने–पीटने के स्तर पर उतर आता है और बच्चा गिराने को कहता है–

लाज लिहाज त्याग कर चीख पडी वह – ओ नकीले! खैर मना कि बच्चा दाऊ जू का है। नही तो यह किसी का भी होता जात का आन जात का गैल चलते आदमी का।

तुम होते कौन हो हमारी नाकेबन्दी करने वाले ? तुम्हे क्या हक' कुत्ता की जात नही गिनते हम तुम्हे।

नहीं जाऊगी ! कभी नहीं! आकास–पाताल एक हो जायॅ तो भी नहीं [1]

वह अपने सासह के बल पर यशपाल के घर मे अपने और अपने बच्चे के लिए स्थान पा ही लेती है।

चित्रा जी का आवॉ' नारी चेतना की देशज प्रकृति पर जोर देता है चित्रा जी जिन पात्रो के माध्यम से नारी चेतना पर जोर देती है उनमे उपन्याय मे प्राय सभी महिला पात्र है! उनमें प्रमुख है उपन्यास की नायिका व मुख्य पात्रा नमिता किशोरी वाई सुनदा स्मिता की बहन और हैदराबाद प्रवास के दौरान उसकी सेविका नीलम्मा।

नमिता के अन्तर्वाह्य सघर्ष और उसकी चेतना के स्वरूप पर थोडा सोचने की जरूरत है। परिवार की आन्तरिक कलह और तगी से ऊबकर वह आत्म निर्भर होने की कोशिश करती है कामगार अघाडी कार्यालय मे पिता तुल्य अन्ना साहब उसके साथ दुर्व्यहार करते हैं। 'स्वय अर्जन का नितात अपना ही आत्मसुख होता है। इसमे तृप्ति मिलती है शक्ति का अनुभव होता है।

---

[1] 'इदन्नमम्' पृ स 133

सुनदा की नारी चेतना अपनी समस्याओ तक सीमित नही है अपने और सुहेल से उत्पन्न साम्प्रदायिक उन्माद को समाप्त करने का सकल्प उसकी इसी विद्रोह भावना का परिणाम है।

किशोरी बाई की बेटी सुनदा सुहेल से प्रेम करती है। धर्म परिवर्तन को तैयार न होकर भी वह अपने बच्चे को जन्म देती है। सुहेल के अब्बा उसके सामने शर्त रखते है कि उसकी शादी सुहेल से तभी हो सकती है जब वह अपना नाम व धर्म परिवर्तन कर ले। वह स्पष्ट कहती है– मेरा मातृत्व विवाह के तुच्छे प्रमाण पत्र का मोहताज नहीं। [1]

सुनदा के अन्दर अपने होने वाले बच्चे को अकेले पालने की ताकत है। उसे यह परवाह नही है कि समाज क्या कहेगा ? इसी दृढ निश्चय के साथ ही वह ऐसा वाक्य बोल पाती है।

चित्रा जी ने परम्परा के खिलाफ भी विद्रोह दिखाया है। आवॉ की नारीपात्र पाम्पराओ को तोडती ही नहीं उनके साथ जुडी भी है। इस उपन्यास की मुख्य पात्र व नायिका नमिता अपने पिता देवी शकर पाण्डेय का किया–कर्म व तर्पण परम्परा से विद्रोह करके स्वय करती है। जबकि किया कर्म व तर्पण करने का हक सिर्फ पुत्र को होता है पुत्री को नही । विमलाबेन भी परम्परा से विद्रोह करके सुनन्दा की अर्थी को कन्धा देती है।

आजकल' दिसम्बर 1999 के अन्त मे माजदा असद ने लिखा है– उपन्यास के माध्यम से पूरी सस्कृति को प्रस्तुत किया गया है यह सस्कृत इतनी यथार्थ ढग से दिखाई गयी है कि पाठक यह सोचने पर विवश हो जाता है कि इक्कीसवी सताब्दी मे हमारी मानसिकता क्या होगी,

---

[1] आवा' पृ 111

क्या परिवर्तन आयेगा या हम इसी तरह शोषण के चक्र मे पिसते रहेगे ? लेखिका का चिन्तन वास्तव मे महत्वपूर्ण है। उपन्यास का आकार बडा है लेकिन पूरा उपन्यास पढने के बाद यह कहा जा सकता है कि इतनी गहन समस्याओ को छोटे से कलेवर मे समेटना सम्भव नहीं था। सबसे अहम बात यह है कि इस उपन्यास को पढते हुए पाठक की जिज्ञासा निरन्तर बनी रहती है कौतुहल बढता है और रोचकता उपन्यास को और महत्वपूर्ण बना देती है।[1]

[1] आजकल' पृ 43

जागरूकता

नवजागरण के दौरान समाज सुधार के आन्दोलनो मे नारी की सामाजिक स्थिति को सुधारने के प्रयास तो हुए पर इन शुरूआती प्रयत्नो से उसकी मानसिकता पर बहुत दूर तक असर नही पडा सिर्फ एक चेतना पैदा हुई या पुरूष बनाम स्त्री के रूप मे देखने के लिए प्रेरित किया जिन मोर्चो पर पुरूष स्त्री को लगातार मात देता रहा है एक है अर्थ और दूसरा है सेक्स। समाज मे स्त्रियो की स्थिति पर केन्द्रित उपन्यास तो आरम्भ से ही महिला और पुरूष कथाकारो ने लिखे। परन्तु अन्तिम दशक मे लिखे गये उपन्यासकी स्त्री कुछ बदली हुई है। वह अपने को नये सिरे से तलाश रही है अपनी भूमिका की नये सिरे से व्याख्या कर रही है। इस दशक की स्त्री जागरूक स्त्री है।

इस दशक की स्त्री अपनी सफलता के लिए जागरूकता को प्रथम शर्त मानती है। छिन्नमसता' की प्रिया एक जागरूक स्त्री है। वह अपनी पहचान बनाना चाहती है। उसने अपने ही घर मे देखा अपनी दादी मॉ और बहनो को अर्थात एक साथ तीन पीढियो को। बारह की उम्र मे विवाह और उसके बाद हर दस–दस महीने बाद बच्चा। उसकी बहन सुमित्रा के अठठारह की उम्र मे चार बच्चे हैं इसलिए नीलू मॉ के साथ ही रहता है। अपने छोटे–छोटे सुखो को नकारती और प्रिया को काटती–कतरती मॉ। अपने घर की दिनचर्या प्रिया को कर्मकाण्ड जैसी लगती। ढेरो अन्धविश्वासो और अशिक्षा के अधेरे मे भटकता परिवार। दादी ने आज तक कभी साडी के नीचे पेटीकोट नही पहना है। प्रिया को यह बडा अजीब लगता है। वह अपने बहन और भाभी जैसी नहीं होना चाहती है। वह आधुनिक स्त्री। स्त्री वह घुट–घुट कर नहीं मरना चाहती– 'अम्मा।

तुम्हारी जैसी जीजी लोगो जैसी जिदगी मै नही स्वीकारना चाहती थी। मै बडी भाभी जी की तरह घुट–घुट कर नहीं मरना चाहती।[1]

प्रिया को परिवार मे रूढि परम्पराए सब का पालन करना पडता है वह जागरूक होते हुए भी विद्रोह नहीं कर पाती है। तभी तो मार खाकर भी नरेन्द्र के साथ समझौते की कोशिश करती है। एक बार प्रिया के ससुर ने प्रिया से कहा–

बेटा प्रिया तुम पढी लिखी हो।

पढे–लिखे तो ये भी हैं पापा'

नहीं अपना–अपना मानस होता है। तुम्हारी सवेदनाए गहरी हैं और इसीलिए मैं तुमसे ही कह रहा हूँ बेटा। मेरे लिए तुम्हारा जीवन नरक हो जाये यह मैं कैसे बर्दाश्त कर सकता हूँ।[2]

जागरूक और बुद्धिमान स्त्रियॉ पुरूष समाज को नहीं भाती है। यदि वह स्वतन्त्र निर्णय लेने लगती हैं तो उनमें वह सौ–सौ कमियॉ निकालता है। तभी तो जब तक प्रिया नरेन्द्र के अधीन रहती तब तक उसे बुरा नहीं लगता है लेकिन जैसे ही प्रिया ने स्वतन्त्र निर्णय लेना शुरू किया नरेन्द्र उसकी राह मे रोडा बनने लगा– मैने नरेन्द्र के अधीन रहकर जो कुछ भी किया वह सब स्वीकृत था मगर कार्य जगत मे जब मै। स्वतन्त्र निर्णय लेने लगी मुझसे उसकी निगाह मे पत्नी की भूमिका नहीं निभ सकी थी मरी हर बात मे उसे सौ–सौ खामियॉ नजर आने लगी थी।

आज की नारी अन्धविश्वासो को नहीं मानती है। ब्रतउपवास उसे ढकोसले लगते हैं। तभी तो सोमा करवा चौथ का ब्रत रखने से

---

[1] 'छिन्नमसता' पृ 91

[2] वही पृ 149

इन्कार कर देती है। हॉ ससुराल मे रोज एक न एक देवता की पूजा ब्रत और उपवास। माघ मे महीने मे करवा चौथ का ब्रत था पहले दिन रात को ताई जी ने बुलाकर कहा कल सुबह से ही कुछ नही खाना है।[1]

सोमा सोचती है कि जब ताई जी सब कुछ इतने नियम आचरण से करती हैं तो ? कैसे विधवा हो गयी और वह ताई जी से पूछ भी देती हैं– लेकिन ताई जी इतने नियम आचरण के बावजूद आप कैसे विधवा हो गयी और देखिये ना निमली बाई का और फिर रेवा बाई को ।[2]

पीली ऑधी' मे जिस परिवेश की कथा है उसका समृद्ध है। ताई जी वर्तमान से समझौता करने के लिए तैयार नहीं है। उनका विश्वास परम्पराओ मे है धार्मिक आस्थाओ मे है मान सम्मान की रक्षा मे है। यदि समकाल से प्रश्न करने के लिए कोई खडा है तो वह है सोमा।

चित्रा ने ही सोमा को अपने पैर पर खडा होने के लिए कहा। चित्रा ने ही सोमा को बी एड की परीक्षा दिलवाई और कालेज मे नौकरी भी। उसने स्पष्ट कहा कि – जो तुम्हारे साथ घटा, वह तुम्हारे साथ या किसी और भी औरत के साथ घट सकता है। कम से कम अपने पैर पर खडी औरत भीख तो नहीं मॉगती।[3]

इदन्नमम्' की मन्दा कम पढी लिखी होने के बावजूद कुशाग्र वुद्धि से सम्पन्न है। विषय परिस्थितियो मे उचित निर्णय लेने की क्षमता है उसके पास। वह प्रौढ विचारो की धनी है। हलाकि उसके प्रौढ विचार उसकी उम्र से मेल नहीं खाते परन्तु उसका भी एक कारण है कुसुमा

---

[1] पीली आ्धी पृ 186

[2] वही पृ 187

[3] वही पृ 260

भाभी कहती है हम जानते है तुम उमर मे कम सही पर विपत झेलने मे कम नही। सही गलत का सॉचा सार तो विपत झेलकर समझ मे आता है।[1]

वस्तुत मन्दा के मानस–लोक की दो स्थापनाये हैं– जब तक मनुष्य आत्मरत रहता है अपने दु खो से नही उभर पाता। समष्टिगत प्रेम मानव को दु खो से वाहर खीचता है और अपने हिस्से की लडाई जब तक हम दूसरो से लडवाते रहेगे तब तक उसकी कीमत हमे चुकानी पडेगी। अपने गॉव सोनपुरा मे इन्हीं दो सकल्पो के सहारे मन्दाकिनी शाषितो एव वचितो के साथ जुड जाती है। मन्दा धैर्य के साथ एक क्रमिक ढग से भ्रष्ट नौकरशाही एव, पुलिसतत्र पूजीवादी शोषण के तमाम उपकरणो राजनीतिक दॉव–पेच एव छल रूग्ण ग्रामीण–सास्कृतिक मानसिकता–सस्कार पुरूष सत्ता के सारे समीकरणो के बीच सम्मानपूर्वक जीने की राह और सामूहिक सहयोग एव सघर्ष के लिए जन समर्थन तैयार करती है, जो नि सदेह हिम्मत एव हौसले का काम है।

अभिलाख सिह के शोषण एव कुकृतियों के विरूद्ध राउतो मे चेतना जागृत करती है तुम्हारा मालिक क्यो हुआ ? वह भीख नही देता तुम्हे । न सदाव्रत लुटाता है तुम्हारे लिए। तुम्हारे पास तुम्हारी मेहनत है तुम्हारे लिए। तुम्हारा जीवट है। फिर क्यो घिघियाते हो इनके सामने? इस तरह तौहीन न करो। परिश्रम की ।[2]

---

1 'इदन्नमम्' पृ 88

2 वही पृ 303

जिस तरह मन्दा अभिलाख सिह जैसे भेडिये के खिलाफ राउतो के मन मे जागरूकता लाती है उसी तरह राजा साहब के राजनीतिक छल–छद्म का जबाब उन्ही की भाषा मे चुनाव का वहिष्कार करके देती है। इसी तरह थाने मे दीवान के अश्लील हरकतो के जबाब मे वह उसे चाँटे देती है जो उसके साहस का ही परिचायक है।

मन्दा घर की चौखट से बाहर निकलकर वृहत्तर सामाजिक सरोकार से जुडकर शोषितो एव वंचितो के अधिकारो की लडाई का नेतृत्व कर मन्दा समाज के उस विधान का माखौल उडाती है जिसमे लडकी का घर की चौखट से बाहर निकलना, ऐसे सार्वजनिक कार्यो मे भाग लेना एक अपराध से कम नही समझा जाता है। बऊ लाख कहती रही शादी करने को और जगेसेर लाख उसके चरित्र पर लाछन लगाते रहे पर मन्दा ने न तो विवाह किया और नहीं कदम पीछे हटाया । मन्दा को जब पता चलता है कि जगेसर ने सुगना को अपने पिता का घर छोडकर माँ के साथ अपने यहाँ चले आने का सुझाव देती है। कहती है– छोड दो वह घर मैं देखती हूँ जगेसर कक्का को । कल ही रिपोट करके आऊँगी थाने मे।[1]

किसी भी क्षेत्र मे बगैर जागरूकता के सफलता नहीं पाई जा सकती है यह आज की नारी को बखूबी मालूम है।

आवाँ ने नीलम्मा का भी आत्म विश्वास और स्वाभिमान उसके स्वावलम्बन और कर्मठता से उपजता है उसके अनुभव उसे अच्छे–बुरें की पहचान करना सिखा देता हैं। पुरूषो की भक्षक दृष्टि से मुकाबला करने का साहस उसमे धीरे–धीरे आता है। नैतिकता और अनैतिकता का भेद करने और उसका विरोध करने का विवेक उसमे जागृत होता है। अपने

---

[1]वही पृ स 355

दैहिक शोषण के एहसास के बाद नमिता मे जो चेतना जागृत होती है वह नीलम्मा के जीवन बोध और चेतना से प्रेरित होती है। नमिता के ही शब्दो मे – नीलम्मा ने बहुत बडी ताकत दी है सच कहूँ नीलम्मा ही मेरी ताकत बन गयी है।[1]

यह उपन्यास स्त्रियो की समस्या से भरा पडा है। इस उपन्यास मे नमिता के साथ साथ गौतमी–नीलम्मा स्मिता की बहन का भी दैहिक शोषण हुआ हैं इन सभी पात्रो मे गौतमी और नीलम्मा ही ऐसी पात्र है जो शोषण के उपरान्त जल्दी जागरूक हो जाती है। और उपन्यास के अन्त मे नमिता का भी जागरूक होना दिखाया गया है। नमिता को जागरूक होने के लिए नीलम्मा और पाश की कविता की सहायता लेनी पडी जबकि नीलम्मा अपने स्वाभिमान व कर्मठता से जगरूक हुई।

---

[1] आवाँ पृ 543

अधिकार और कर्तव्य के प्रति सजगता

वास्तविकता यह है कि भारतीय सास्कृतिक बर्चस्व मे स्त्री स्वतन्त्रता के लिए कोई स्थान नही रहा। उसे पराश्रित पराधीन बनाने के लिए पुरूषो ने हजारो वर्षो से ज्ञान–विज्ञान कला सस्कृति साहित्य दर्शन चितन की दुनिया से इसलिए दूर रखा ताकि वह शिक्षित चेतन सजग आत्मनिर्भर न बन सके। वह अपने स्वत्वाधिकारो की मॉग न करने लगे।

स्त्रियो के प्रति नारी विरोधी दृष्टिकोण का खडन करती हुई सीमोन कहती हैं– स्त्री कैसे महान प्रतिभा हो पाती जब कि उसके लिए तमाम महान कार्यो के दरवाजे परम्परा ने बन्द कर रखे थे। स्वाधीन तो अभी–अभी जन्मी है। जब उसकी स्थिति थोडी परिपक्व होगी तभी उसकी भविष्यवाणी सच होगी– कब स्त्री की पारम्परिक दासता टूटेगी ? और कब वह अपने लिए एक इसान की जिदगी जी सकेगी ? वह कवयित्री होगी। वह अन्जान ऊँचाइयो को छुयेगी क्या उसका वैचारिक जगत हमसे भिन्न होगा कल वह उन अथाह गहराईयो को छुएगी जिनको हम भी उसके साथ समझ सकेगे ? हमे यह नही मालूम कि वब तक स्त्री की वैचारिक दुनिया और उद्‌भावनाए पुरूष से भिन्न होगीं या वे स्वय पुरूषो से भिन्न होगी ? इस प्रकार की भविष्यवाणी कहना कठिन है। इतना तो सच है कि अब तक स्त्री की सम्भावनाओ का दमन किया जाता है। स्त्री को अब स्वय उसके हित मे और मानवता के हित मे स्वतन्त्रता मिलनी चाहिये। [1]

---

[1] सीमोन पृ 336

आज की स्त्रियाँ न केवल पुरूष मूल्यो को कटघरो मे खडा करती है। बल्कि कभी–कभी तो पुरूष की सत्ता को पूरी तरह खारिज भी करती है। वे अपने अधिकारो के प्रति जागरूक हुई हैं। वे अपने अधिकारो को लेकर पुरूष सत्ता के समक्ष प्रश्न भी खडा करती है।

प्रिया तो अपने हक की लडाई लडती है। वह अपने ससुर की अवैध सन्तान नीना को भी अपने व्यवसाय मे शामिल करती है। जब वह नीना से कहती है कि छोटी माँ के लिए इतना कड़वा शब्द मत बोलो तो नीना भी हक की बात करती है कि क्यो नही माँगा माँ ने अपना अधिकार।

क्यो सहा ? उनसे किसी ने कहा था ? क्यो नही अपना हक माँगा ? [1]

प्रिया पति की बात न मानकर अपने व्यवसाय के सिलसिले मे लदन चली जाती है। जाते समय नरेन्द्र ने कहा दिया था कि अगर गयी तो फिर इस घर मे लौटकर मत आना' लेकिन प्रिया आती है , और जब नरेन्द्र जाने के लिए कहता है तो स्पष्ट कहती है कि इस घर पर उसका भी अधिकार है– तुम यहाँ कैसे आई ? निकल जाओ मेरे घर से।

यह घर मेरा भी है और सुनो ज्यादा हल्ला मत करो। [2]

प्रिया अधिकार की ही भाषा नही जानती वह अपने ससुर की अवैध सन्तान नीना को अपने व्यवसाय मे शामिल कर वारिस बनाकर अपने ससुर का कर्तव्य स्वय पूरा करती है। उसे छोटी माँ से सहानुभूति है।

---

[1] छीन्नमस्ता पृ 162

[2] वही पृ 165

यह अधिकार की भावना अपने 'स्व' को पहचानने की बात उससे उसके दर्शन के प्रोफेसर डा0 चटर्जी कहते है। उन्होने उसे गुरू दक्षिणा मे सिर्फ एक चीज चाही थी – सबसे पहले अपने स्त्री होने की गुलामी को समझो'[1]

बहुत सी किताबे देते हुए उन्होने समझाया था कि औरत होना बुरा नही है लेकिन औरत होने की ऑसू भरी नियति को स्वीकारना बुरा है–

स्त्री होना कोई अपराध नहीं है पर नारीत्व की ऑसू भरी नियति स्वीकारना बहुत बडा अपराध है।'[2]

एक सफल स्त्री को क्या चाहिये। सोमा इस मनोविज्ञान से परिचित है। वह नारी मुक्ति की पक्षधर है। विवाह को वह बन्धन के रूप मे स्वीकरती है जीवन सुख के रूप मे नहीं । सोमा पूर्णत निर्भीक स्त्री चरित्र है। साहसी तो इस कदर कि लिया हुआ निर्णय वापस लेने को राजी नही। जब रूँगटा हाउस को पता हो गया कि वह सुजीत के प्रेम पाश मे आवद्ध हो चुकी है निकल नही सकती । उसके पति गौतम को भी ज्ञात हो गया कि उसकी पत्नी सोमा के पेट मे उसके प्रेमी का अवैध बीज अकुरित हो रहा है तो गौतम समेत समूचे रूँगटा हाउस ने उसे समझाने की कोशिश की वापसी की मिन्नते की, मगर सोमा का वर्तमान मे जीने वाला आग्रह–ललक हरगिज पीछे लौटने को तैयार नहीं। अपना निर्णय वह स्वय लेती है। वह आधुनिक स्त्री है और अपने अधिकार के

---

[1] वही पृ 116

[2] वही पृ 117

प्रति जागरूक है। यह आज की नारी का साहस है कि वह विवाहित होते हुए भी दूसरे पुरूष से प्यार करने की बात अपने पति से स्पष्ट कहती है–

और तुम प्यार की बात करत हो ? मैने तुमसे कभी प्यार नही किया नही तुम्हारी कोई स्मृति नही। हॉ मै सुजीत से प्यार करती हूँ।[1]

श्रृखला की कडियॉ के एक निबन्ध मे आज से साठ साल पहले महादेवी वर्मा ने लिखा था– समाज की दो आधार शिलाये है अर्थ का विभाजन और स्त्री का सम्बन्ध। इनमे से यदि एक की भी स्थिति मे विषमता उत्पन्न होने लगती है तो समाज का सम्पूर्ण प्रसाद हिले विना नही रह सकता। चाक के अन्त तक आते–आते हम अनुभव करते है कि पूरूष प्रभुत्व की जानी–पहचानी यथा स्थितिवादी व्यवस्था को स्त्रियॉ चुनौती दे रही हैं। यह वही समय है जब ससद मे स्त्रियो के आरक्षण को लेकर मॉग लगातार उठ रही है।

चाक' मे एक नयी बात सामने आती है कि विधवा को भी गर्भधारण करके सतान पैदा करने और जीने का अधिकार क्यो न मिले ? भारतीय नारी के जीवन के लिए यह नई स्वतन्त्रता है।

चन्दन को शहर भेजने के प्रश्न पर रजीत और सारग के बीच जो विवाद होता है उसमे नारी के अधिकार का नया रूप सामने आता है। सारग कहती है– जैसे चन्दन अकेले तम्हारा ही बालक हो। तुम ही उसके कर्ता–धर्ता तुम ही पालन हार मैं कुछ नहीं मैं कुछ नहीं मै कुछ भी नही ऐसा क्यो लग रहा है आज ? प्रश्न इस रूप मे सामने आता है कि बालक का अभिभावक क्या केवल पुरूष है स्त्री

---

[1] पीली ऑधी पृ 255

नही उसके बारे मे निर्णय क्या केवल पिता करेगा ? मॉ की राय का कोई महत्व नही?

पहले तो रजीत की बात चल जाती है और चन्दन अपने चाचा दलजीत के साथ आगरा चला जाता है। लेकिन आगे चलकर सारग चुपके से पत्र लिखकर चदन को गॉव वुलवा लेती है। यह है अधिकार का उपयोग। सारग यह स्थापित कर देती है कि पुत्र के बारे मे वह भी स्वतत्र निर्णय निर्णय कर सकती है। चन्दन के आने के बाद गॉव के स्कूल मे उसका दाखिला करा दिया यह तीसरा स्वतन्त्र निर्णय था। रजीत कुद्ध होता है सारग से झगडता है लेकिन सारग दृढ है। दाखिला वही कराती है अभिभावक बनकर। बालक के अभिभावकत्व का अधिकार मॉ को क्यो नही। यह भी नया अधिकार नारी को चाहिये। चौथा निर्णय सारग ने किया श्रीधर के अग्रह पर एकलब्य नाटक की पाण्डुलिपि लिखने का भार स्वीाकर करके। एक और महत्वपुर्ण निर्णय उसने बाबा के कहने पर लिया, रजीत की स्वीकृति की जरूरत समझे विना घायल श्रीधर की सेवा के लिए उसके साथ अलीगढ जाने का। वह श्रीधर के अत्यन्त करीब चली जाती है? यहॉ तक कि वहॉ से लौटने पर सेवा के लिए एक रात श्रीधर के साथ रहकर रति कर वैठती है लौगसिरी के घर मे। यह सेक्स की स्वतन्त्रता के अधिकार का उपयोग है।

बेतवा वहती रही मे मैत्रेयी ने समाज के जिस दो मुँहें' चरित्र का स्वरूप उधेडा है वही चरित्र इदन्नमम्' मे भी दिखाई देता है। इस दो मुँहे चरित्र की सबसे स्पष्ट गवाही पुरूष सत्ता की वह व्यवस्था है जिसमे स्त्री एव पुरूष के लिए नैतिकता एव मर्यादा के अलग–अलग मापदण्ड हैं। स्त्री विधवा हो जाय तो उसके लिए अपने मृत पति की 'बाखर' की मरजाद' की रक्षा के लिए चौखट' पर जीवन होम कर देने के सिवा और कोई विकल्प नही है जबकि पुरूष को विधुर होने के बाद कौन कहे, विना

विधुर हुए ही एकाधिक पत्नी रखने का पूरा अधिकार है। बडी खूबी यह कि ऐसे पुरूष उन स्त्रियो पर कीचड उछालने मे सबसे आगे होते है।

कुसुमा एक स्वाभिमानी नारी है। मन्दा को समझाती हुई कहती है   औरतो के पास मान ही तो एक पूजी है। वही हमारा बल है। विटियॉ । [1]

गोविन्द सिह ने जब उसके बच्चे के पालन–पोषण के लिए यशपाल के हिस्से मे से किरिया दो किरिया' दे देने की बात कही तो कुसुमा ने उसी बखत' थूक दिया उस भीखदान पर। उसे अपना अधिकार चाहिये भीख नही।

कुसुमा दाऊ जू की सच्ची प्रेमिका की भॉति अपने कर्तव्यो का निर्वाह भी करती है। दाऊजू से उसका प्रेम केवल शरीर की भूख मिटाने के लिए नहीं था वरन् अन्तरात्मा का प्रेम था। उस प्रेम को कुसुमा अमूल्य धरोहर की भॉति सदैव अपने भीतर सयोये रहती है। दाऊ जू की मृत्यु के बाद रगीन बस्त्र तक पहनना छोड देती है। कहती है दाऊ जू जोगिन नहीं कर गये हमे हम ही त्याग बैठे हैं रगीन उन्ना कपडा दाऊ जू कै विछोह मे। [2]

इसमे सदेह नहीं कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था मे बहुत बार–डर भयो और दमन की क्रूर खाइयो के चलते प्रतिरोध की आतरिक आवाज दबी रह जाती है। परन्तु अन्तिम दशक के लगभग सामने अब ऐसी स्त्री थी जो अपनी अस्मिता को लेकर मृत्युजय सघर्ष करने आयी थी । वह दमघोटू क्रूर जटिलताओ और इतिहास से उठती सतीत्व की लपटो को

---

[1] 'इदन्मम पृ 181

[2] (वही पृ 266)

चुनौती देने लगी। वह तथाकथित शिष्ट लोगो से ऑख मिलाने मे सकुचा नही रह सकती थी न ही सामाजिक बहिष्कार से टकराने से डर रही थी। कुलटा छिनाल और पतिता जैसे बदनाम सम्बोधन उसे डराने मे कामयाब नही हो पा रहे थे क्यो कि वह इन कुत्सित धमकियो की असलियत समझ चुकी थी। जीवन की सार्थकता और सम्पूर्णता समझने वाली अपनी अनिवार्यता के साथ मुखर हो उठी । न्याय या खून' की बाते करने लगी।

सामाजिक न्याय की भावना

इतिहास साक्षी है कि नारी शाषण का एक बडा कारण रहा है उसकी आर्थिक कमजोरी। जब से पुरूष जाति ने नारी को उनकी शारीरिक एव भावनात्मक विशेषताओ के आधार पर घर की चारदीवारी मे कैद कर दिया एव कृषि पर अपना अधिकार जमा लिया तभी से नारी आर्थिक रूप से आश्रित हो गयी।

दलित वर्ग दलित वर्ग और स्त्री वर्ग दोनो ही शोषित है। इसलिए आज की स्त्री अपने लिए नहीं बल्कि जो भी शोषित है उन सबके लिए है। उन सबके लिए न्याय चाहती है। तभी तो प्रिया कहती है, औरत कहॉ नही रोती? सडक पर काम करते हुए एयरपोर्ट पर बाथरूप साफ करते हुए या फिर सारे भोग और ऐश्वर्य के बावजूद मेरी सासुजी की तरह पलग पर रात रात भर अकेले करवटे बदलते हुए।

उसे छोटी मॉ से सहानुभूति है वह उनके लिए न्याय चाहती है। छोटी मॉ उसके ससुर के मरने पर बाबू घाट पर चूडिया तोडने का अधिकार भी नहीं रखती। नीना और वह स्वय जैसे सब की सब छिन्नमस्ता हैं लावारिस औरते जिन्हे समाज की स्वीकृत नही मिली है। अपनी पहचान के लिए सघर्ष आसान नही होता।

अपने ससुर के मरने के बाद वह तडफ कर रह जाती है वह सोचती है कि कोई बए बार छोटी मॉ को ले आये। वे भी पापा के अन्तिम दर्शन कर ले। परन्तु नरेन्द्र ने कहा था अग्रवाल हाउस मे रखैल और रडिया नही आ सकती। कितना कठोर ह्रदय है नरेन्द्र प्रिया ने और न जाने क्या मन ही मन कहा। वह सोच रहीं थी कि यहॉ तो मम्मी को सान्त्वना देने वाले इतने लोग हैं परन्तु इस वक्त कौन होगा उनके पास सान्त्वना के दो शब्द भी बोलने वाला कोई नहीं होगा।

हॉ बाबूघाट पर मुझे दूर एक औरत नहाती हुई दिखी थी। अरे यह कौन ? क्या छोटी मॉ हैं? छोटी मॉ घाट पर अकेले अपनी चूडियॉ तोड रही थी। मॉग का सिन्दुर मिटाया था और अकेले विल्कुल अकेले। फिर भीड से अलग चुपचाप निकल गयी थी। ओह! आज भी ऑखे भर आती है। मेरी सास को तो दस–दस औरते थामे हुए थी। सब पत्थर दिल। पर मै किसको गालियॉ देना चाह रही थी? व्यक्ति को समाज को ? परम्परा को किसको? पता नही। या फिर ऐसी निष्क्रिय मौन स्वीकृति के लिए छोटी मॉ स्वय जिम्मेदार थी [1]

वह नीना और छोटी मॉ को लेकर चिन्तित होती है। वह चाहती है कि नीना को जायज सतान का हक मिले तभी तो वह कहती है– मैं बहुत कुछ कहना चाहती थी मै पापा से बहुत कुछ सुनना चाहती थी। पूछना चाहती थी कि पापा छोटी मॉ के प्रति आपका कोई कर्तव्य नहीं आपके बाद छोटी मॉ को कौन सम्भालेगा? नीना नीना क्या हमेशा–हमेशा एक नाजायज सन्तान रह जायेगी? [2]

इदन्नमम्' मे समाज के दो मूँहे चरित्र को सामने लाती है मैत्रेयी। इस दो मूँहे चरित्र की सबसे स्पष्ट व्याख्या पुरूष सत्ता की वह व्यवस्था है जिसमे स्त्री पुरूष के लिए नैतिकता और मर्यादा के अलग–अलग मानदड है। स्त्री विधवा हो जाय तो पति की स्मृति मे ही जीवन होम कर देने के सिवा और कोई विकल्प नही है। जबकि पुरूष को विधुर होने के बाद कौन कहे विना है। जबकि पुरूष को विधुर होने के बाद कहे विना विधुर हुए ही एकाधिक पत्नी रखने का पूरा अधिकार है यह समाज का कैसा न्याय है। इदन्मम्' मे प्रेम जब मन्दा से मिलने

---

[1] 'छिन्नमस्ता' पृ 151

[2] वही पृ 150

सोनपुरा आती है तो उस पर व्यग्य वाण छोडने मे वही जगेसर सबसे आगे रहता है जिसने व्याहता के रहते हुए ही अहिल्या को अपनी रखैल बना लिया था। समाज की इस विडम्बना से मन्दा बहुत दु खी होती है सोचती है– गॉव मे छ आठ ऐसे जोडे है जिन्होने दूसरा विवाह किया है। माना कि पुरूष है तो क्या अम्मा स्त्री होने के नाते दण्ड की माखौल की हेय दृष्ट की भागीदार है? यदि ऐसा नही हो उन पुरूषो से अटपटे प्रश्न क्यो नही पूछता कोई? उसकी निगाह नीची क्यो नही होती? वे अस्पताल जैसी सार्वजनिक जगह मे रात काटने को क्यो नही विवश किये जाते।[1]

इदन्नमम्' का कैनवस बहुत विस्तृत है। इसमे दुहरी लडाई का चित्रण है– एक तो औरतो की लडाई दूसरे वचितो की लडाई । वेद प्रकाश अमिताभ तो यहॉ तक कहते है – बचितो और शोषितो का सघर्ष ही इदन्नमम' का मुख्य प्रतिपाद्य है मन्दा की यातना और सघर्ष उसे व्यापक सघर्ष के सामानान्तर और सश्लिष्ट है।[2]

वह दलितो के लिए लडती है उन्हे उनका अधिकार दिलाती है। समृद्ध एव समर्थ लोगो द्वारा मजदूर और किसान वर्ग का दोहन हो रहा है अपने को समृद्ध एव समर्थ बनाने के लिए। इसमे लेखिका ने आज की व्यवस्था का खुला चिठ्ठा प्रस्तुत करती हैं जिसमे जगल न अपने को कटने से बचा सकता है पहाड न अपने को क्रेशर से टूटने से बचा सकता है और न ही एक साधारण किसान किसान पूँजीवादी सत्ता के तमाम उपकरणो, हथियारो के सामने अपने को किसान से मजदूर होने एव मजदूर होकर भी बेरोजगार होने से बचा सकता है। यही नही राजनीतिक

---

[1] इदन्नमम् पृ 292
[2] इदन्नमम् औरतों और वचितों की सघर्ष –गाथा वेद प्रकाश अमिताभ 'समीक्षा' जुलाई –सितम्बर 94 पृ स 17

एव नौकरशाही छल–छद्म एव विकास परियोजनाओ के सुरहरे भ्रम से भी कहॉ बच पा रहे हैं ये ग्रामीण एव पिछडे अचल के लोग? इन्ही सब सच्चाइयो का उदाहरण है –विन्ध्यअचल मे बसा सोनपुरा गॉव। विकास के नाम पर अपनी प्राकृतिक सपदा को होम कर देने के बावजूद भी इन ग्रामिणो पिछडे अचल के लोगो को क्या मिलता है? अभिलाख जैसे पूँजीपति ही तो जिनके पास शोषण के सारे हथियार मौजूद होते है सरकार की अदूरदर्शी एव विसगति पूर्ण विकास–योजनाओ मे इन गरीबो को आधारभूत सुविधाए उपलब्ध करवाने के लिए तो कोई प्राविधान नही होता। हॉ औद्योगीकरण के बहाने पूँजीपतियो की सुरक्षा की व्यवस्था अवश्य होती है। विसगतिपूर्ण नीति का ही परिणाम है कि सोनपुरा के किसान किसान न रहे। मजदूर होकर भी अपनी ही जमीन पर रोजगार भी प्राप्त नही कर सके। पहाड के ठेकेदार इन स्थानीय लोगो को पूँजीवादी शिक्षा के नियमानुसार अपने यहॉ काम देते ही नहीं। मन्दा इसका कारण समझती है। कहती है —स्थानीय मजदूर रखते नहीं ये लोग। डरते हैं सगठन न बना ले। एक मिट्टी मे जन्मे लोग एक होकर उनके विरूद्ध ही जेहाद न छेड दे। बस यही एहतियात बरतते हुए ठेकेदारो ने भूखो के मुँह की रोटी छीन ली। [1]

सरकार के पास भी ऐसे भूखो को रोटी दिलवाने उनका हक दिलवाने के लिए कोई व्यवस्था नहीं है। वह तो बस मुआवजा दे कर अपने कर्तव्यो का इतिश्री समझ लेती है।

एक पूँजीपति जब ग्रामीण क्षेत्र मे अपना पैर जमाता है तो उसका लक्ष्य वहॉ के अनपढ लोगो का हर तरह से उपयोग करना ही होता है ये बेवस एव खौफ खाये मजदूर सब कुछ सहते हैं। सोनपुरा का

अभिलाख ऐसा ही शोषक पूँजीपति है। राउतो को गुलाम की तरह इस्तेमाल करने वाला अभिलाख उनका आर्थिक ही नहीं शारीरिक शोषण करके भी केवल अपना लाभा देखता है। भयकर ज्वर से पीडित परबतिया राउत को वह शराब पिलाकर नशे मे अपना काम करवाता है क्यो कि उसका तो पइसा फॅसा पडा है सेलिग नही होगा तो मशीन मे क्या पिसेगा ? भले परबतिया की देह पिस जाये उससे उसे क्या मतलब? यहॉ तक कि अवधा को उसकी मजदूरी नही देता है। जिसे बरातियो को भोजन के रूप मे तालाब मे जीव जन्तुओं को परोसना पडा (क्योकि उस तालाब मे मझली नही थी) जिसका परिणाम उन्हे हैजा के रूप मे झेलना पडा। मन्दा दे देखा कल वाली बारात पटसन के पौधो की तरह बिछी पडी है। लोग तडफ रहे हैं। कुचले हुए केचुओ की तरह विलविला रहे है। ठीक सामने सिरीदेबी और बदलेब बिखरे पडे थे–मृत। अवधा की ऑखे पथराई हुई निर्जिव वुत सी ।[1]

यहॉ यह सवाल हो उठता है कि अवधा को निर्जीववुत' सा करने लगा उसकी उम्मीदो उसकी भावनाओ को कुचलने का अधिकार आखिर अभिलाख को किसने दिया? हड्डी चटकाकर पत्थर तोडने–ढोने के बावजूद परबतिया को तीन दिन से रोटी क्यो नहीं मिलती है? क्यो राउतो को अधिकाश दिन चेच करमेंथा खाकर हीं पेट भरना पडता है? क्यो उन्हे विलो जैसे टपरियो मे गर्मी बरसात और जाडा झेलना पडता है? यह सब इसलिए क्योकि अभिलाख उनका खून चूसने पर लगा हुआ है और उसे रोकने वाला कोई नही है अभिलाख का राउतो पर इससे बढकर अत्याचार और क्या हो सकता है कि वह उनकी स्त्रियो को भी अवसर मिलने पर बेच दिया करता है।

---

[1] [1] वही पृ स 95

यहाँ एक अनिवार्य रूप से प्रश्न उठता है कि ऐसी विगडी स्थिति के लिए अन्तत कौन उत्तरदायी है? कहना गलत न होगा कि सरकार के अन्धेपन के कारण अभिलाख जैसे लोग उत्पन्न होते है एव राउतो को उनके दुश्चक्र मे पिसना पडता है। जगलो का सरकारीकरण करते समय सरकार ये कतई नही सोचा कि केवल जगलो से ही अपना भरण–पोषण करने वाले ये राउत क्या अब अपनी स्वतन्त्रता खोकर ठेकेदारो के मजदूर (गुलाम) नही हो जायेगे। अवधा इन ठेकेदारो को शोषण बताती है – ठेकेदार हमसे मडियाई ही करवाते थे। ठेका तो ले पच्चीस पेडो का और कटावे हमसे पचास पेड। जो पकरे जॉय तो हम जेहल मे। जमानत करवाने तक न जावे ठेकेदार। जे और कह दे कि हम नही जानते इन्हे, छिप के काट रहे होगे। [2]

इसमे भी बढकर शोचनीय बात–लोकतत्र शासन व्यवस्था मे सरकार का दमन चक्र। सरकारी आदेश की अवहेलना (अपने अधिकारो की रक्षा के लिए) करने पर राउतो की क्या दशा होती है देखिये– अफसर की अगाई और घोडा की पिछाई कहाँ नो करे आदमी? अगाई काटी थी हमने ऐन तो काटी थी जब जगलो से खदेरे गये थे। जडो से काटकर फेके तो मुरझाते हुए भी तीर लाठी बल्लम लैके जूझ परे थे हम। पर अन्त मे क्या बना? क्या मिला? पुलिस ने मार–मार कर घुटने फोर दिये। भेजा चटनी बना दिया बन्दूको की वट से घिस–घिस कर। जो बचे थे वे ठुँस दिये जेहल मे। सालो मे सिरकारी हुकुम आया कि बन के बागी बन्दी छोडे जा रहे है जो मिले विटिया वे मरे मे न जिन्दो मे। [3]

---

[1] इदन्मम् पृ 254
[2] इदन्नमम पृ253
[3] वही पृ 304

यहाँ लेखिका की दृष्टि उन दलितो के प्रति सहानुभूति से भर उठती है तथा प्रश्न उठाती हैं कि अपनी योजनाओ के चलते विस्थापित हुए लोगो के स्थायी रोजगार के बारे मे गम्भीरता से सोचना और आवश्यक कदम उठाना क्या सरकार का कर्तव्य नही?

<u>परिवार के प्रति दृष्टिकोण</u>

परिवार हमारे समाज की आधारभूत इकाई है। इसमे स्त्री की भूमिका सर्वाधिक महत्वपूर्ण होती है। सच्चे अर्थो मे सामाजिक न्याय के लक्ष्य को तभी प्राप्त किया जा सकता है जब सामाजिक राजनीतिक एव आर्थिक प्रकिया मे स्त्री की भागीदारी सुनिश्चित हो सके। स्त्री विमुक्ति सामाजिक प्रगति का अनिवार्य हिस्सा है, यह केवल स्त्रियो का मामला नही है। स्त्रियो की अधिकार सम्पन्नता न केवल स्वय उसके जीवन को सकारात्मक रूप से प्रभावित कर सकती है बल्कि वास्तव मे पुरूषो और उनकी सन्तानो पर भी प्रभाव डाल सकती हैं। जिन पर हमारे परिवार समाज और राष्ट्र का भविष्य निर्भर करता है।

प्रश्न यह है कि स्त्री मुक्ति की दिशा या स्वरूप कैसा हो? क्या उसे पश्चिम की आजाद ख्याल स्त्रियो की तरह होना चाहिये, जहॉ परिवारिक विघटन ने वहॉ के समाज मे एक तरह की अफरा–तफरी दी? स्त्री–मुक्ति का पाश्चात्य स्वरूप हमारे परिवार का आदर्श नहीं बन सकता क्योकि इसकी परिणति अराजकता मे होनी सुनिश्चित है। तब हमे अपने अतीत और वर्तमान की वास्तविकता का सधान करते हुए एक ऐसी व्यवस्था का निर्माण करना होगा। जहॉ स्त्री पुरूष स्त्री की अस्मिता का सम्मान और उसके साथ–साथ चल सके। वीसर्वी सदी के अत मे भारतीय स्त्री का अधिकाश कुछ एक अतिवादो को छोडकर आज भी परिवार के प्रति सचेत और गभीर है समस्या यह है कि स्त्री जैसे–जैसे जागरूक होती जा रही है उस अनुपात मे पुरूष समाज उसकी चेतना को स्वीकार नही कर पा रहा है। स्त्री को आज भी पुरूष अनपढ गवॉर मध्य–कालीन स्त्री के रूप मे देख रहा है। और उसके सौन्दर्य को बाजार मे बेंच रहा है। पुरूष मनोवृत्ति का यहीं अन्त नहीं हो जाता। उसने बडे कौशल से

अपनी सोच को स्त्री चेतना मे उतार दिया है कि उसकी सोच की दिशा भी आम तौर से पुरूष–मनोवृत्ति का अनुसरण करती जान पडती है।

भारतीय स्त्री की आज भी परिवार मे आस्था बची हुई है तभी से प्रिया तो नरेन्द्र से पहले समझौता करने की कोशिश करती है। तब नरेन्द्र यहा कहता है कि यदि लन्दन गयी तो इस घर मे कभी मत आना' प्रिया अपने दु ख को दबाकर पूर्णत सयत होकर बात हल्की करनी चाही थी–

क्यो? यह घर क्या केवल तुम्हारा है' मैंने हॅसते हुए बात हल्की करनी चाहीं थी।[1]

प्रिया अपनी मित्र जूडी से कहती है कि नरेन्द्र के साथ मैंने हर समझौते की कोशिश की लेकिन हर कोशिश नाकाम हो गयी। धीरे–धीरे उसे समझ में आने लगा कि नरेन्द्र का ढॉचा बदलने वाला नही है और प्रिया भी नरेन्द्र के अनुसार ढल नही पाती सिर्फ अपना ही दोष मानती है। उसकी मॉ भाभियॉ और जीजी जिन्हे डर था कि कौन उससे शादी करेगा अब उसके भाग्य को सराहती है, फिर भी प्रिया खुश नहीं है– शिकायत तो नही होनीं चाहिए थी पर शिकायत थी मन मे। मैं किस आभाव से ग्रसित थी? हिचकियो मे रो–रोकर मैं खुद से कहती कोई तुम्हारा नही प्रिया। तुम अकेली हो विल्कुल अकेली। न अम्मा न भैया लोग, न जीजी लोग और न पति।[2]

कोई भी औरत अपनी खुशी से अपना परिवार, अपना बच्चा नहीं छोडती है तभी तो प्रभा जी ने एक स्थान पर प्रिया से कहलवाया है–

---

[1] छिन्नमस्ता
[2] वही पृ 187

नरेन्द्र । आदमी की भाषा मे बात करो। घर की जमीन कौन औरत छोडना चाहती है? और तुमने तो मेरा बेटा भी रख लिया है। [1]

आज की स्त्री परिवार मे अपने लिए भी पुरूष की बरबरी की जगह चाहती है। वह चाहती है कि परिवार के लोग उसकी भी सुने वह भी तो परिवार की सदस्य है। वाह्य सम्पर्क ने परिवार मे पुरूषो से औरत की अपेक्षा को भी बदला है। पारम्परिक सामाजिक ढॉचे मे औरत ज्यादा आजाद नही थी वह भूमिका उसके स्वतन्त्र व्यक्तित्व के विकास मे बाधा बन रही थी इस भूमिका से उसने इकार किया इससे एक हद तक पुराने भावनात्मक सम्बन्ध भी टूटे। पुरूष ने उसे सुरक्षा दी थी मगर साथ ही उसे उस सुरक्षित घेरे के अन्दर ही रहने को विवश भी किया। वह जब इस सुरक्षित घेरे मे जबरन बाहर चल आई तो वही पुरूष उसका प्रतिद्वन्दी बन कर खडा हो गया।

प्रिया के मन मे विरोधाभास शुरू हो गया उसे लगता है कि वह अपने परिवार के प्रति अपना कर्तव्य नहीं निभा पा रही है। परिवार मे जो उसे बचपन से मिला वह भी उपेक्षा। मॉ के घर भी वह सदैव उपेक्षित रहीं। एक स्थान पर वह नरेन्द्र से कहती है— नरेन्द्र। थोडे दिन का समय मुझे और दे दो । जिदगी का एक खास दौर है। मैं अपने को सम्भाल नहीं पा रही हूँ। घर मे आते ही मुझे लगता है, मै सासू जी की अच्छी बहू नहीं। तुम्हारी अच्छी पत्नी नहीं, सजू की अच्छी मॉ नहीं। आगे कहती है— क्योकि मेरे पास वक्त नहीं था और पत्नी की भूमिका मे असफल होना? तुम्हारे समाज की नजर मे मुझे औरत होना ही नहीं चाहिये था। उसने कब मुझे दोस्त बनाकरे स्वीकारा ? ' [2]

---

[1]वही पृ. 180
[2]छिन्नमस्ता पृ 180

स्त्री के अन्तर्मन को समझपाना किसी रहस्य लोक का साक्षात्कार करना है। वह क्या–क्या सोचती है इसे कोई स्त्री ही शायद समझ सकती है। स्त्री के भीतर प्रवेश कर उसके मनोलोक को टटोलना प्रभाखतान द्वारा पीली ऑधी मे सम्भव हुआ है। एक स्त्री स्त्रीत्वबोध लेकर अन्तत क्या चाहती है उसका अनावरण करती हुई लेखिका ने सामा के भीतर झॉकन का प्रयास किया है।

सामा का पति गौतम पौरूषविहीन है सोमा उसे छोडना चाहती है क्याकि वह मॉ बनना चाहती हैं। शूरू म सोमा जिस परिवार म साम्जस्य विठाने मे कठिनाई का अनुभव करती है लेकिन बाद मे वही परिवार उससे मिला स्नेह वह कभी नही भूलती उसे वह परिवार अपने मायके से भी अधिक प्रिय लगने लगता है–

'बच्चो से घिरी हुई सोमा को अपनी ससुराल ममता और अपनत्व से लबालब भरी हुई लगी। भरे–पुरे घर मे कितना प्यार और कितना स्नेह। ये लोग कितने सरल है। ठीक है दिल्लीवालो की तरह स्मार्ट नही है। तो न सही क्या फर्क पडता है? [1]

इस उपन्यास मे ताई और सोमा जैसे पात्र मारवाडी स्त्री समाज की नारीशक्ति के अलग–अलग दो छोर है। एक तरफ घर के बाडे मे कैद स्त्री और उस पर पुरूष के बर्चस्व का अवमूल्यन करने वाली पद्मावती (ताई) तो दूसरी ओर परिवार की मर्यादा का चौखट लॉघकर विवाह के प्रतिवद्ध रूप को चुनौती देने वली छोटी बहू सोमा है। स्त्री के परवश रूप को स्वाधीनता देने का काम प्रभा खेतान ने किया है। सहनशील नारी को कुछ कहने और आत्मनिर्णय करने की स्वतत्रता देता

---

[1] पिली ऑधी पृ 193

है यह उपन्यास। स्त्री के लिए परिवार की सब कुछ नही होता है वह घुट–घुट कर करने के लिए मजबूर नही की जा सकती।

स्त्री की सार्थकता सुख खोजने मे नही त्याग मे है परिवार की खुशी मे ही उसकी खुशी है। –ऐसा मानन वाले समाज क परम्परागत ढॉचे के बीच से उठा ताई का व्यक्तित्व व्यापार लेनदरी–देनदारी घर की जमापूॅजी शादी व्याह जेसे तमाम मसला मे निर्णायक होती हे।

प्रभा जी ने अपने इस उपन्यास के माध्यम से परिवार के सामन भी कई तरह के प्रश्न उठाय हैं जैसे–क्या काई सुन्दर आर्कषक देह वाला पुरूष किसी पत्नी के लिए योग्य पति है? क्या अपार धन सम्पदा की गद्दी पर बैठा कोई पुरूष किसी स्त्री की कामना का चरम है? क्या परिवार की मान–मर्यादा ही सब कुछ है और इस मर्यादा की रक्षा के लिए कोई स्त्री पौरूषहीनता को झेलने के लिए अभिशप्त बनी रहकर ढोती रहे? ऐसी तमाम प्रश्नो का उत्तर है सोमा सोमा नारी मुक्ति का एक नया अध्याय है। यद्यपि भारतीय इतिहास मे मुक्ति की अवधारणा कोई नयी साकेतिकता नहीं है परन्तु समय–समय पर स्त्रियॉ आत्ममुक्ति की अपनी–अपनी लडाइयॉ निजीतौर लडती रही है।

पीली आधी' मे सघर्ष दिखलाई पडता है। इस सघर्ष में अतीत और वर्तमान का सवाद उभरकर सामने आया है। एक ओर ताई जी हैं जो कि सयुक्त परिवार चाहती है। इसलिए गौतम बम्बई मे अकेले फ्लैट लेकर रहता है सोमा वहॉ नहीं जा सकती, क्योकि –'गॉव क्या कहेगा ? बेटे–बहू अलग बम्बई में रहने लगे। 'ताई जी का कहना था। और अकेली ताई जी क्या? बाकी सारे सदस्यो का भी यही मत था।' [1]

---

[1] पीली आधी पृ 219

स्त्री घर की मुखिया हो सकती है इसे प्रभा जी ने अपने उपन्यास मे अच्छी तरह दिखाया है।

इसी प्रकार इदन्नमम्' मे बऊ अपनी बहू को परिवार की मर्यादा तोडन पर माफ नही कर पाती है। उनकी बहू प्रेम विधवा होन के कुछ दिनो बाद अपने जीजा रतन यादव के साथ भाग जाती है। बऊ इसका विरोध करती है और विरोध की भावना इतनी तीव्र होती है कि वह भत्सर्ना मे बदल जाती है। वह उसे 'रण्डी' ठगिनी' छिनार' और न जाने क्या–क्या उपाधियॉ देती हैं। उनकी दृष्टि मे स्त्री का एकमात्र कर्तव्य एव आदर्श है पति के घर की मर्यादा की रक्षा भले ही पति की मृत्यु क्यो न हो जाये। विधवा के लिए उनकी दृष्टि मे अपने पति के घर मे तपस्विनी की भॉति बने रहने के अतिरिक्त और कोई विकल्प (दूसरी शादी) हो ही नही सकता। इसलिए अपनी बहू की भर्त्सना करती हुई कहती है– ज्वानी का जोस नही डाट पाई सो धर लिया बेडिनी का किसब तज गयी आदमी की देहरी अब सात जनम घर ले तबहूॅ नही हो सकती महेन्दर की चौखट जोग। [1]

देहरी परिवार की आन तोडने वाली ऐसी बेमरजाद' बहू को अपराधिन मानती है और अन्त तक माफ नहीं करती। बऊ निःसदेह भारतीय समाज मे दो पीढी पूर्व की नारी समुदाय की प्रतिनिधि है। जिनमे पुरूष सत्ता द्वारा नारी शोषण के लिए बनाये गये सारे उपकरण एव हथकण्डे, सस्कार विचार आदर्श रूप मे विद्यमान हैं। वे परिवार के आन को ठेस नहीं पहुॅचा सकती हैं। उनका आदर्श है कि इस घर मे डोली आई है अब अर्थी ही निकलेगी आधुनिक स्त्री इसका विरोध करती है तभी तो मन्दा को समझाते हुए कहती है– "रॉड विधवा तो हम भी हुए थे बेटा।

इदन्नमम् पृ60

और चढती उमर मे हुए थ। जना के लाने आसनाई करने वालो की कमी नही होती। पर हम जानते थे कि ऊँच –नीच। अरे ऐन वे मीत हमे जान–परान से चाउत धरती आकाश जोरते तो भी हम टीकमगढ रियासत के मसबदार और मरजाद मे दाग न लगने देते। सो विटिया गद्दर उमर का हीसा देह के तकाजे जरा डाटे जई देहरी के होम कुड मे। अब ते ही बता कैसे छुटैली कर देवे अपनी जज्ञसाला को।[1]

दो पीढी पूर्व स्त्रियॉ परिवार को तप स्थली और यज्ञशाला मानती है। और परिवार की मान मर्यादा के लिए मिट जाना ही अपना उद्देश्य । जब कि अब स्थिति बदल चुकी है। आधुनिक स्त्री की प्रतीक प्रेम जब देखती है कि पति के वगैर उसका भविष्य असुरक्षित है तथा सुख सुविधा से जीने की लालसा के चलत ही विधवा होने के कुछ दिनो बाद अपने जीजा के साथ रहने लगती है हलॉकि चुनाव गलत ही सावित होता है।

परिवार मे औरत अकेली होती गयी है इसका बडा कारण एक हद तक पुरूष का अह है। यह भी कहा जा सकता है कि वह उलझन की स्थिति मे है। जिस पारम्परिक ढॉचे के भीतर वह अपनी पत्नी अपनी बेटी की भूमिका को ऑकता है वहॉ से वक्त बहुत आगे चला गया है। इसलिए उसे कुछ खोने का एहसास हो रहा है। आर्थिक सत्ता के साथ–साथ तमाम दूसरे पारिवारिक निर्णयो और औरत के पूरे अस्तित्व पर अभी हाल तक पुरूष का नियन्त्रण था। अत अपनी सत्ता को पहचान कर उठ खडी इस औरत से पुरूष निकटता महसूस नहीं कर पा रहा है। यही अलगॉव उसे औरत की मदद् भी नहीं करने देता। उसे लगता है कि यह

---

[1] वही पृ. 288

बदली हुई औरत अपनी बुनियादी जिम्मेदारियो से इनकार कर रही है जब कि हुआ यह कि उसने कुछ जयाद ही उत्तरदायित्व ओढ लिये है। लकिन पुरूष उस समस्या को स्त्री के कर्तव्या और अपनी उम्मीदो के परिप्रेक्ष्य मे देख रहा है और औरत के मानसिक अतर्द्वद्व को नही समझ पा रहा है। खुद ओरत अपनी इस नई स्थिति के कार्य कारण सम्बन्ध स्थापित नही कर पा रही है। इसलिए वह निरन्तर मानसिक तनाव झेलती है। इस तरह का अपराध बोध उस पर हावी रहता है।

तमाम विरोधी परिस्थितियो के बीच खडे होना और अपनी जगह बनाना आसान नही है औरत के लिए तो यह सघर्ष दोहरा सघर्ष है। किसी भी सामान्य व्यक्ति की लडाई तो उसकी है ही औरत होने की वजह से एक दूसरे स्तर पर ही उसे निरन्तर मोर्चाबद्ध रहना होता है। इन दोनो मोर्चो पर सतर्कता से डटे रहने के लिए चाहिए ज्यादा तर्क सगत दृष्टिकोण सुलझा हुआ व्यक्तित्व तथा कुछ अन्य मानसिक और शारीरिक क्षमताए भी। जिससे वह परिवार समाज मे अपना अलग स्थान बना सके।

स्त्री के इस विशिष्ठ पारीवारिक योगदान को यो पहचान रहित छोड देना तथा परिवार को केवल पुरूष कर्ता द्वारा निर्धारित एकल सामाजिक सम्बन्ध के रूप मे स्थापित करना स्त्री के साथ अन्याय है।

सम्बन्धो के प्रति दृष्टिकोण

असूर्यपश्या वह औरत जिसका चेहरा परिवार के पुरूष सदस्‍ भी कम ही देख जाते थे घर की देहरी लॉघ कर जब वह वाहर' र्क दुनिया मे आयी तो पुरूष से उसके सम्पर्क को नये आयाम मिले। र सम्बन्ध पहले के उन सम्बन्धो से बहुत अलग है जहाँ माँ पत्नि बहु बेर्ट और भाभी जैसे रिश्तो से वह पुरूष से जुडी थी। अब वह एक व्यक्ति व तौर पर पुरूष के सम्पर्क मे आयी है।

घर से बाहर चले आने का अर्थ ही है ज्यादा से ज्यादा लोग के सम्पर्क मे आना। सकूल कालेज दफ्तर सडक बस और तमाम दूसरं सार्वजनिक जगहो पर अब तक पुरूष का एकाधिकार रहा है। उस एकाधिकार के टूटने से पुरूष हडबडाया भी है, दूसरी तरफ उसने बाहर आयी इस औरत को स्वीकार करने की कोशिश भी की है।

निश्चय ही यह औरत की उपलब्धि है। साथ ही यह भी रेखाकित करना जरूरी हैं कि स्त्री का यह सघर्ष पुरूष के खिलाफ सघर्ष नही है उसके साथ एक बराबर के व्यक्ति के तौर पर सम्बन्ध बनाने का प्रयास है। वस्तुत यह सघर्ष पुरूष के नही स्थिति के खिलाफ है इसलिए अपने स्वतन्त्र अस्तित्व की स्वीकृति की अपेक्षा पुरूष से उसे हमेशा बनी रहती है। आज इन बदली हुई परिस्थितियो मे पुरूष और स्त्री के सम्बन्ध ज्यादा उलझे हुए नजर आते है। इसलिए औरत कहीं ज्यादा अकेली पड गयी है। परिस्थितियो के खिलाफ इस सघर्ष में पुरूष अपने पूर्वग्रहो के कारण उसके साथ खडा नही हो पाता बल्कि उसके सघर्ष को और मुश्किल बना देता है।

प्रिया जिसको सारे सम्बन्धो से कडवाहट सी मिली वह सिर्फ दाई माँ को अपना मानती है उन्हीं से सारी बात कहती है। उसी दाई माँ से ही प्रिया को माँ का प्यार मिलता है अन्यथा वह उससे भी बचित हो

जाती माँ को सदैव उसने बीमार ही देखा था या फिर अपने ऊपर क्रोध करते हुए– और अम्मा के क्रोध का शिकार छोटे भैया और मैं सबसे अधिक होते। कभी मुझे लगता–स्त्री होना अम्मा की नजर मे पाप है एक हीन स्थिति है गुलामो का जत्था है जो विना मालिक के जी नहीं पायेगा। एक मालिक असमय चले गये। सिहासन खाली था। युवराज बडे भैया को युवराज के रूप मे ही सबके सामने रखा था। अम्मा को मेरा चेहरा मेरे लबे–लबे बाल मेरा बढता हुआ कद शरीर का उभार और दसवॉं लगते ही पीरियडस का शुरू हो जाना। [1] पलते और बढते हुए सिर्फ बाबूजी –पिता –ही थे जो उसे वट वृक्ष जैसे लगते थे।

प्रिया का अपना दाम्पत्य जीवन सुखी नही है। वह हर पुरूष मे बाबू जी को देखना चाहती है उसे अपने औरतपन से चिढ है। उसने मन ही मन निश्चय कर लिया है कि मुझे लडकी ही बने रहना है औरत नही बनना है। लेकिन अगले ही क्षण सोचती विचारती है सदियो की इस अमानवीय परम्परा को किस बीमारी का नाम दूॅं जहॉं मेरी जैसी विद्रोह लडकियॉं भी समर्पित पत्नी और मॉं बन जाने को विवश होती है। बडे भाई द्वारा बचपन मे यौन–शोषण के दहशत भरी स्मृतियो अधेरी सुरगो मे दिन–रात दर्द का बोझ लिए दौडती रही है। घर और बाहर पुरूषो का रूग्ण देखते सहते प्रिया फेसला करती है 'नही', मैं औरत नही बनना चाहती मैं कभी किसी से प्रेम नही करूगीं कभी शादी नही ।

ऐसी ही सोच के कारण वह नरेन्द्र के साथ समझौता नहीं कर पाती अपना सारा ध्यान वह अपने व्यवसाय मे लगाती है जिसके कारण नरेन्द्र अपनी अवहेलना समझ कर बहस करता है–

---

[1] छिन्नमस्ता गहरी असुरक्षा और उपेक्षा के बीच पृ44

यही तो मैं पूछ रहा हूँ कि तुम क्यो इतनी मशीन होती जा रही हो? व्यक्तित्व म जरा भी रस नही। जरा–सा शरीर पर हाथ लगाओ तो ऐसे विदकती हो मानो विजली का करट छू गया। एकदम फ्रिजिड होपलेस। तुमने कहा था नरेन्द्र मै। घर मे हर वक्त रहीं तो पागल हो जाऊगी

हॉ कहा तो था।

फिर अब क्या हुआ? कहॉ गये वे सब वायदे?

नरेन्द! वायदो पर क्या तुम भी चले? क्या कौन चल पाता हे? हम सभी तो अपनी–अपनी सुविधानुसार वायदो को तोडते मरोडते रहते हैं'

'यानी आपसी इमानदारी वफादारी प्यार समर्पण यह सब कुछ नही? [1]

प्रिया कहती है यह सब भ्रम है और औरत को यह सब इसलिए सिखाया जाता है कि वह इस शब्द चक्रव्यूह से कभी निकल न पाये और अपनी आहुति देती रहे।

बेलग्रेड मे एक वृद्ध दम्पति को देखकर प्रिया को लगता है कि प्रेम की कोई सीमा नही है। उस सुखी और भावात्मक दृष्टि से समृद्ध जोडे को देखकर उसे अपने दाम्पत्य सम्बन्धो का स्मरण हो आता है–

मैने दु:ख झेला है। पीडा और त्रासदी मे झुलसी हूँ। जिस दिन मैनें त्रासदी को ही अपने होने की शर्त समझ लिया उसी दिन उस उस स्वीकृत के बाद मैने खुद को एक बडी गैर जरूरी लडाई से बचा लिया। कुछ के प्रति यह मेरा समर्पण था। सारे जुल्मो के सामने सलीब

---

[1] छिन्नमस्ता पृ स 12

पर लटकते मैंने पाया कि अब पूरी तरह जिदगी की चुनौतियो का सामना करने लिए तैयार हूँ। [1]

पीली ऑधी' मे तो स्त्री–पुरूष सम्बन्ध को लेकर अधिक बहस की गयी है। पुरूष के बर्चस्व को तोडनो और स्त्री को अस्तित्व दिलाने की हिमायत की गयी है। स्त्री पुरूष के बारे मे बराबर सोचती रहे और पुरूष उसे भूख मिटाने का माध्यम मानता रहा ऐसा कब तक चलेगा? इस बात पर प्रभा खेतना ने कई बार विचार किया है तभी तो पीली ऑधी की सोमा पुरूष के इस बर्चस्व पर प्रहार करती हुई अपने पौरूष–विहीन पति से मुक्ति पाना चाहती है। इसीलिए वह दूसरे पुरूष से सम्बन्ध बनाती है। आज की स्त्री किसी भी सम्बन्ध को ढोने मे विश्वास नहीं रखती है। लेखिका ने सोमा के माध्यम से यही बात दर्शायी है–

सोमा समझ रही थी कि वह सुजीत के साथ काफी दूर चली आयी है। घर ऑगन की सीमा के पार और अब वापस बदीगृह मे लौटना सम्भव नही। सुजीत को छोडना या उसके बगैर जिदगी जीना असम्भव तो नहीं मगर मुश्किल जरूर है। गौतम? उसके साथ विताये गये क्षण। क्या कहा जाये गौतम की हरकतो के बारे मे जहॉ न कभी कोई कोमलता मिली और न जीवन का एहसास। गौतम अपनी भूख जो कभी– कभी जगती थी और उस इच्छा की सन्तुष्टि भी केवल गौतम की अपनी सन्तुष्टि थी। गौतम प्रेमी न ही मालिक था। सन्तुष्टि के लिए सोमा का उपयोग करने वाला। और शायद इसीलिए सोमा गौतम को भूलना चाहती थी, जिसको उसने केवल झेला या सहन किया था मगर जिसको कभी जीया नही था। [2]

---

[1] वही पृ10
[2] पीली ऑधी पृ 249
2 छिन्नमस्ता पृ189

स्त्री और पुरूष का सम्बन्ध कभी सामान्य व्यक्ति का नही हो सकता क्योकि पुरूष सदैव स्त्री को अपन से नीचा समझता है। इसी को लेखिका ने छिन्नमस्ता मे प्रिया से कहलाया है – यानी स्त्री–पुरूष का सम्बन्ध वही मालिक ओर गुलाम का? भोक्ता और भोज्या का ? व्यक्ति और वस्तु का ? कब तक यह द्वद्व चलगा?

तभी तो प्रिया के अपने अस्तित्व के सामने जो सम्बन्ध सकट पैदा करते है उसे वह तोडने को तैयार है यहॉ तक कि अपना इकलौता बेटा भी छोड देती है हर समझौता करके हार जाने के बाद यह निर्णय लेती है–

बौखलाओ नही। जो मैने कहा है आई मीन इट और सुनो नरेन्द्र। मुझे दो महीने का वक्त दो मै तुम्हारा आफिस घर तुम्हारे दिये हुए गहने कपड़े, हॉ और सजू को भी सब छोड दूँगी सब। [1]

अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाने के बाद भी कहीं उसके अन्दर कच्चा घाव था जो इतनी सफलता पाने के बाद भी रिसता रहता है वह कभी भी अपने बाबू जी को नही भूल पाती है– मैं बासी रोटी का टुकडा हूँ कि जिन्हे मैने अपना समझा था, वही अपने नही रहे। एक वक्त ऐसा भी आया जब समाज की हर नजर सलीब की ओर थी। वे चाहते थे कि ऐसी घरफोड औरत को सजा मिलनी चाहिये, क्योकि कहीं न कहीं उन्हे मेरी सफलताओ से भय था। शायद वे मठाधीश सोचते हो कि एक औरत लडकर कुछ हासिल कर लेती है तो दूसरी औरतें भी उन्हीं रास्तो पर चलेगी। और तमाम बाते शब्दो से ही नही कही जाती थी। बहुत कुछ

---

[1] छिन्नमस्ता पृ. 177

लोगो के हाव–भाव से मै समझ जाती थी। आगे कहती है – नरेन्द्र के भीतर एक छिपी हुई मिडियोकिटी थी स्वभाव से वह किसी पर विश्वास नही करने वाला पर वैसा क्यो बना? पापा तो ऐसे नही थे। खैर मुझे क्या करना? मुझे इस निषेधक सीमावद्धता से परे होना था। [1]

दरअसल स्त्री विमर्श के अन्तर्विरोधो से प्रभा खेतान का पूरा परिचय रहा है। स्त्री पुरूष के अनुकूल और प्रतिकूल दानो ही स्वरूपो स उनका साक्षात्कार हुआ है। उनका मानना है कि स्त्री पुरूष सम्बन्धो को लेकर उपलब्धि का हिस्सा पुरूष के खाते मे और जिम्मेदारी का हिस्सा स्त्री के खाते मे जाता रहा है। मगर वे यह भी मानती है कि कोई समाज पुरूष प्रधान क्यो न रहा हो किन्तु सारा दोष उसका नहीं। स्त्रियॉ भी कम दोषी नहीं रही है। पुरूष और स्त्री की बराबरी के लिए सघर्ष करने वाली प्रभा खेतान एक पक्षीय चितन मे ही अपनी प्रखरता नहीं दिखलाती अपितु उभयपक्षीय दृष्टिकोण की स्पष्टता भी सामने रखती है। अपने एक लेख मे उन्होने ऐसा ही सोचते हुए लिखा है– तब क्या सारा दोष पुरूष का है? स्त्री का कोई दोष नही? क्या वह इतनी मासूम है? मै यह मानती हूँ कि यह व्यवस्था हम स्त्रियो ने नही बनाई है लेकिन सच यह भी तो है कि अधिकाश पुरूषों को भी इस व्यवस्था के बारे मे अपनी कोई भागीदारी नही है। [1]

सोमा नारी मुक्ति की पक्षधर है। विवाह सम्बन्ध को वह बन्धन के रूप मे स्वीकारती है , जीवन सुख के रूप में नही। नारी का तो जीवन सुख अभीप्सित प्रेम सम्बन्ध है। इसलिए विवाह सम्बन्ध की पुनर्व्याख्या करती हुई वह कहती है – क्या यह जरूरी है कि कोई किसी को ताउम्र प्यार करता रहे। विकास की यात्रा मे जीवन के कालखण्ड मे कभी स्त्री

---

[1] छिन्नमस्ता पृ 206

तो कभी पुरूष का स्वभाव उसका मूल्यबोध जीवन दृष्टि बदल भी तो सकता है। और जब कोई बदल जाता है जब बची रहती है जडता। क्या इसी को वैवाहिक सम्बन्ध कहा जाय? शायद कह सकते हो। मगर सुजीत यह प्रेम तो नही। [2]

विवाह को एक सस्था मात्र मानने वाली सोमा प्यार या प्रेम को उससे अधिक सरस जीवन दर्शन मानती है। तभी तो सुजीत के भीतर के द्वन्द्व और अपने अडिग निर्णय का उदघाटन करती हुई दार्शनिक मुद्रा मे कहती है– सुजीत मैंने इस सबाल पर घटो सोचा है। मैने सात फेरे अग्नि के चारो तरफ लिए थे। मै जलती हुई उस अग्नि को देख रही थी। मैं पवित्र थी। सुजीत बिल्कुल पवित्र। गठबधन के समय मैंने यही सोचा था कि यह जो भी है जैसा भी है मेरा पति है। पति पत्नी के सम्बन्ध जन्म जन्मान्तर के होते है लेकिन सुजीत परम्परा भी तो वहीं ज्यादा गूँजती है जहॉ जिन्दगी खण्डहर होती है। एक भरी पुरी जिन्दगी मे समय कहा रहता है कि इन सारे विवादो मे उलझा जाये? परम्परा पर बहस तो बस सोच है। एक स्टेट आफ माइड । प्यार इससे ज्यादा गहरा है। मन पर बस नहीं रहता लेकिन शरीर ? शरीर बहुत कुछ ऐसा चाहता है जिससे मैं तुम्हारे सामने कहने मे हिचकती हूँ। [3]

सोमा निर्बन्ध नारी चरित्र है पर यह निर्बन्धता उच्च्व श्रृखलता नहीं है। अपने वर्तमान और भविष्य के प्रति सचेत निर्बन्धता है। वह प्रेम को ज्यादा सरस सम्बन्ध मानती है।

मन्दाकिनी अपने गॉव सोनपुरा मे बालसगिनी सुगना और स्यामली मे कुसुमा भाभी से अन्तरग रूप से जुडी रहती है। कुसुमा का

चरित्र आत्म निर्णय और दृढ सकल्पो से निर्मित नारी चरित्र है। इन्ही विशेषताओ के कारण ही वह (दाऊजू) अमर सिह से प्रेम सम्बन्ध बना पाती है और उस प्रेम के फलस्वरूप प्राप्त सतान पर गर्व भी करती है। ओर यह सब उसके पति के ऑखो के सामने होता है।

मैत्रेयी पुष्पा ने बीसवीं सदी के हिन्दी लेखन के अवलत्व और उसकी निरीहता को अद्यस्वीकार और वशर्त समर्पण का नकारते हुए राष्ट् कवि और प्रसाद को काफी पीछे छोड दिया है। यहॉ वह सम्बन्धो का नया दृष्टिकोण प्रस्तुत करती है। कुसुम और दाऊजू (अमर सिह) के अनैतिक सम्बन्धा के प्रसग मे मानसकार की बहुपरिचित पक्तियो – अनुजवधू भगिनी सुत नारी। सुनिसठ कन्या सम ये चारी। से भिडते और टकराते हुए जिस तरह के तर्क मदा और कुसुमा के बहाने दिये है। उससे सम्बन्धो की एक नयी व्याख्या सामने आती है–

'कुसुमा ने ही बीच मे ही रोक दिया–' विन्नू हमे एक बात समझाओं अरथाओ कि ये रिस्ते–नाते सम्बन्ध और मरजाद किसने बनाई? किसे सिरजी है बन्धनों की रीत? जो नाम लेती हो उनने ? मनुब्यास ने? रिसियो मुनियो ने देवताओ की राच्छसो ने?

मन्दाकिनी पढना रूककर भाभी को गौर से देखने लगी। क्या उत्तर दे इन सवालो का? भाभी ये रीति–रिवाज तो उन्होने ही बनाये है जिनने ये किताबे लिखीं है।

'गलत बनाई है मन्दा! एकदम पच्छपात से रची है।

'बताओ तो अग्नि साच्छी घर के गॉठ बॉधने का क्या मतलब?

'पति और पत्नी को साथी–सहचर कहे तो विरथा है कि नहीं?

'कितेक उलटा है बिन्नू , बेअरथ! यह सम्बन्ध बडा

थोथा है।

लो एक खूँटे से बधा पागुर दूसरा सरग मे उडता

पछी।

ढोर और पछी सहचर नही हो सकते मदा [1]

मन्दा अपने प्रेम की स्मृति मे ही जीवन विता देती है। सामाजिक सरोकारो से सम्बद्ध मन्दा से दूर एक और मन्दा है– प्रेमिका मन्दा। मन्दा का प्रेम सच्चा है और यही सम्बन्ध उसे जीवित रखता है। उसे एक क्षण के लिए भी मकरन्द नही भूलते। मकरन्द की चिठ्ठी आने पर वह स्वगतालाप करती हुई सी कहती है तुम्हारी बेचैनी, तुम्हारा प्यार ही जीवित रखे है मुझे। जीवन के अधेरो मे उजली लकीर की तरह प्रकाशमान हो तुम। निपट अकेली के साथ–साथ रहते हो हर पल हर स्थान पर। [2]

रामधारी सिह दिवाकर कहते है– मकरन्द के प्रति एक आत्म आकर्षण का ही एक पक्ष है, डा0 इन्द्रनील मे बार–बार मकरद की छाया का विभ्रम । [3]

मन्दा अपनी उत्पीडित अम्मा को लेकर जैसी जिरह अपनी बऊ से करती है वह बहस एक स्त्री के सन्दर्भ मे एक सामाजिक और सास्कृतिक दृष्टिकोण से और उदारता की मॉग करती है। साथ ही यह भी सकेत करती है कि यदि स्त्री के सम्बन्ध स्त्री से मधुर रहे ईर्ष्या की भावना न रहे तो भी स्त्री की दशा सुधर सकती है। बहु परम्परागत पुराने ख्यालो वाली है तो मन्दा स्त्री की ऐतिहासिक यातना सनातन निर्वासन

---

[1] इदन्नमम् पृ 83

[2] इदन्नमम पृ.238

[3] इदन्नमम' ऑचलिक सन्दर्भो में उभरती नारी चेतना का आख्यान, रामधारी सिह दिवाकर 'हस' अगस्त 94 पृ स 87

और पुरूष दिमाग की सास्कृतिक चालाकियो और सामाजिक बदमाशियो की पीडा और व्यथा से भरी–भरी और सचेत। उसमे अपार सहानुभूति और अपार करूणा है। अपने माँ से मिलने जाती है। और उसे दुदर्शाग्रस्त देख मदा की अतरग प्रतिकिया अत्यन्त विघलनकारी है – मै तो खडी–खडी जड हो गयी। पथरा गये होठ। जीभ पर लकवा मार गया। शरीर भी सुन्न वोलना चाहती हूँ मगर क्या बोलू? क्या कहूँ तुमसे ? कैसे ऊवारूँ तुम्हे? मदा का यह आखिरी वाक्य केवल अपनी माँ के लिए नही समुची स्त्री जाति के लिए है।

अन्तिम दशक की लेखिकाओ ने अपने कथा साहित्य मे स्त्री पुरूष के सम्बन्धो को नये रूप मे प्रस्तुत किया है। लगभग हर स्त्री का विवाह सस्था के बाहर पर पुरूष से सम्बद्ध है। चाहे वह छिन्नमस्ता की प्रिया हो या पीली ऑधी' की सोमा। इसी प्रकार 'चाक मे सारग भी मास्टर श्रीधर से प्रेम करती है वह कहती है – मेरा मन जिद्दी है श्रीधर। कहता है जिस मर्द के साथ मेरे पिता ने विदा कर दिया उस मालिक से वापस मॉग लो अपनी देह। कहने का अर्थ यह है कि मन और देह दोनो एक साथ रहे।

व्यक्तिगत स्तर पर रेशम की हत्या से प्रतिशोध की आग मे सुलगती हुई ग्रामीण समाज के मूल्य रहित बर्चस्ववाद के आतक से क्षुब्ध बेटे चन्दन की सुरक्षा के लिए चिन्तित सारग को शिक्षित पति रजीत ने भरपूर आश्वासन दिया था कि वह सारग की लडाई लड़ेगा। परन्तु पुरूष सत्ता किसी भी स्त्री को अपने से आगे नही देख सकता जिस दिन रजीत को अपने जाति मर्यादा की क्षति की आशका हुई वह सारग को उसकी औकात समझाने लगा। चन्दन की चिन्ता ही उसे श्रीधर के नजदीक नहीं ले गयी थी। श्रीधर को पाकर वह फूलों की डाल सी झूम

निकलता है कि आगे सारग का मन और शरीर दोनो रजीत के साथ रहेगे। यह पुरा प्रसग यानी रजीत और सारग का सम्बन्ध तथा सारग और श्रीधर का प्रेम स्त्री–पुरूष सम्बन्ध के साथ ही समाज मे स्त्री के स्थान और सामाजिक परिर्वर्तन मे स्त्री की भूमिका पर सोचने की सही दिशा देता है।

पुरूष मात्र के प्रति दृष्टिकोण

स्त्री को उपनिवेश बनाकर रखना पितृक समाज की नैतिक मर्यादा और बर्चस्व से जुडा हुआ है। पितृक नैतिकता सदा यही कहती आयी है कि पशु ढोल शुद्र नारी की ताडना अनिवार्य है अर्थात इन पर अपना नियत्रण बर्चस्व बनाये रखो। जहॉ तक पक्षपातपूर्ण सामाजिक व्यवहार का प्रश्न है हर शिक्षित प्रगतिशील समझे जाने वाले लोगो मे भी स्त्री को लेकर सामती मानसिकता मौजूद है।

बचपन मे बडे भाई द्वारा यौन शोषण के बारे मे चुप्पी और किसी से न कहने की सौगन्ध के साथ प्रिया को लगता है कि यह मेरा कलक है ।

गहरी असुरक्षा और उपेक्षा के बीच पलते और बढते हुए सिर्फ बाबूजी–पिता जी– ही थे जो उसे वट वृक्ष जैसे लगते थे और उनकी तुलना मे कालेज पहुँचने पर साथ और सम्पर्क मे आये लडके पिग्मी लगते थे। अपने मे डूबे हुए बढने के काण उसका आसाधारण मानसिक विकास भी इसका एक कारण हो सकता है। मेरे भीतर एक असुरक्षित लडकी थी जो खिडकी सलाखो से सिर टिकाए अब भी भी अपने बाबू जी के लौटने की राह देख रही थी। बाबू जी मेरे रक्षक थे। उनका दर्प उनका पौरूष उनका आदर्श– मेरे लिए उनका सब कुछ गौरव का विषय था। मैने पुरूष का निर्मम पक्ष नही देखा था क्योंकि मेरे पिता शाखा–प्रशाखाओ को फैलाए एक वटवृक्ष थे और हर पुरूष मे मैं उन्हे ही खोज रही थी। [1]

घर और बाहर पुरूषो का रूग्ण प्रदर्शन देखते–सहते प्रिया फैसला करती है, नही मै औरत नही बनना चाहती। मैं कभी किसी से प्रेम

---

[1] छिन्नमस्ता पृ 54

नही करूगी। कभी शादी नही। सेक्स से घृणा है मुझे बेहद घृणा। मै ठडी ओरत हूँ ठडी रहूँगी। पुरूष से बदला लेने का मुझे एक यही तरीका समझ मे आया।

बचपन मे अपने भाई द्वारा दिया जख्म वह भूल नही पाती यही कारण है उसे पुरूष से प्रेम से और सेक्स से घृणा है–

अरी दइया री ई का भइल ? ई खून कहा से ? अभई तो दसवॉ वरस लगा है अरे भगवान ! हमार विटिया का ई का किए?

दाई मॉ! यह अम्मा वाला खून नही है वह जो हर महीने होता है।

तब ? दाई मॉ की आवाज दहशत मे थी।

बडे भइया ने तब मुझे [1]

बचपन के हादसे से आहत प्रिया की सवेदना और अनुभूतियो से घृणा मे बदलती रहती है– छि! मुझे नफरत है इस पुरूष जाति से। नफरत है उससे जो मासूम, छोटी, नादान लडकी को भी नही छोडता। अब मुझे समझ मे आता है कि हर समाज मे इनसेस्ट प्रेम पर इतना भयानक टैबू क्यों है? क्यों सहज प्रकृति का मृत्यु धर्म इनसेस्ट प्रेम पर लागू होता है। नही तो जन्म से औरत असहाय औरत । उसे न पिता छोडता है न भाई। अपनी नारी देह मे स्वय क्षत–विक्षत होकर रह जाती है। वह कभी किसी पराए पुरूष को प्यार नही कर पाती और न ही सृजन के सबसे सुन्दर रूप किसी और के बीज की रक्षा अपने गर्भ मे कर पाती है। मानव जाति के लिए यह प्रसार जरूरी है। पर क्या समाज स्त्री की

---

[1] छिन्नमस्ता पृ 17–18

रक्षा करता है? क्या पुरूष भी कामुक हवस का शिकार होने से मासूम लडकिया बच जाती है। [1]

कालेज मे पढते समय कोई भी पुरूष उसकी ऑखो मे उतर नही पाया। कारण उसे अपने औरतपन से चिढ थी। लेकिन आगे ही– लेकिन सच मे अच्छा लगा था एक युवा शरीर का आलिगन उत्तेजित गर्म सॉसे गहरे चुम्बन शरीर मे होती हुई मीठी सिहरन। घर पहुँचते हुए रात के नौ बज गये बहुत डॉट पडी मै एक आजीबोगरीब नशे मे मदमस्त थी मेरा पोर–पोर कसमसा रहा था। एक मीठी पीड़ा। रात सपनो मे बीती।

परन्तु अगली सुबह अपने शरीर का यौ अवश हो जाना भी उसे अच्छा नही लगा था क्योकि उसे न प्रेम करना है न शादी। उसे पुरूष की आवश्यकता अपने जीवन मे लगती ही नही है। तभी तो वर्षो बाद लन्दन मे सेटिल हो चुका असीम उसे एक यात्रा मे मिला था। उसकी पत्नी होने पर भी उसने अपने लिए उसकी ऑखो मे वही परिचित प्यास देखी थी–

उन ऑखो मे फिर वही पुरानी प्यास ठहरी हुई नजर आयी और इतने वर्षो बाद उस दिन फिर मैने औरत का वह पक्ष नकारा जिसको लेकर मै बार–बार ठगी जाती रही हूँ कह नही सकी की असीम तुम भी शादी शुदा हो तुम मुझे क्या दे दोगे ? और मेरे पास बचा ही क्या है ? बहुत रो चुकी हूँ। प्रेम करके उस पुरूष के लिए आधी जिन्दगी रोती रही हूँ। नही असीम , मुझमे अब रोने की हिम्मत नही क्योकि मेरी सबसे बडी दिक्कत है कि मै भ्रमो मे नही जी सकती।"

---

[1] छिन्नमस्ता पृ 119
2 छिन्नमस्ता पृ 109–110

वह पुरूष के भ्रम मे नही आना चाहती क्योकि उसे पता है कि पुरूष से कुछ मिलने वाला नही है। तभी कहती है–सच कहूँ तो पुरूष की कोई भूमिका मुझे अब अपने जीवन मे लगती नही। वह क्या दे देगॉ। मै अहकार नही कर रही पर आज मै चाहे जो खर्च करू मुझे उसका हिसाब नही देना पडता नीना की शादी की मेरे अधुरे अरमान उसकी जिन्दगी मे पुरे हो। सवेदना दोस्ती प्यार यह सब पारस्परिक होते है मालिक गुलाम पर दया कर सकता है मगर प्यार नही। क्या नरेन्द्र मुझे यह सब करने देता ? उस करोडपति के घर मे मुझे पैसे–पैसे का हिसाब देना पडता था। पेट मे दो फुल्के तो समाएगे फिर खाने के लिए इतना ताम–झाम क्यो ? नही जो हुआ अच्छा हुआ। नरेन्द्र से चोट लगी अच्छा हुआ नही तो मै शायद कभी कोई प्रगति कर पाती? और सारे मुखौटो के भीतर हॉ इस्पात मे ढलाई किया मुखौटा और उसके भीतर मोम सी पिघलने को तैयार औरत।[1]

कालेज मे ही असीम से प्रेम के बाद प्रिया की जिन्दगी मे जो पुरूष आया वह एक सम्भ्रान्त का अकेला बेटा और कालेज मे लेक्चचर था जिससे बाते ऑखो मे शुरू हुई तो कल्पना के सोलह पखो पर सवार सपनो की दुनियॉ की सैर करने लगी। पुरूष ने कहा मेरे घर चलोगी' और स्त्री हॉ कहकर पीछे–पीछे चल दी। पुरूष ने कहा मैं तुमसे प्यार करता हूँ   केवल तुमसे और नायिका के कानो मे शब्द शहद से घुल गये और फिर जो होना था वह हुआ। देह ने अपना धर्म निभाया दिमाग ऐसे मे कब काम करता है।

उस दिन प्रिया को न कोई ग्लानि महसूस हुई और न हीं जुगुप्सा। यही नही उसे लगा– पुरूष का स्पर्श इतना मादक होता है

---

1 वही पृ 113

इतना सुखद। वह इतना कमनीय, इतना आकर्षक हो सकता है मुझे पहली बार पता चला। मे बाईस की उम्र मे पूरी औरत बन चुकी थी। वह बत्तीस का अनुभवी पुरूष था। सप्ताह मे दो–तीन दिन इसी प्रकार यह खल छ महीन तक चला। लकिन छ महीने तक 'खेल' खेलने–खलाने के बाद जब पता लगा कि वह शादी–शुदा इसान है तो चक्कर आने लगे। तब वही पुरूष निर्मम जालिम पढा–लिखा अमानुष और प्रेम इतना बडा झुठ धोखा दिखाई देने लगा–

मेरे साथ इतना बडा धोखा? क्यो ? किसलिए? मैने तुम्हारा क्या विगाडा था? तुम पढे–लिखे अमानुष।

वह आगे कहती है– इस घटना ने मेरे आत्मबल को, विश्वास को एक झटके मे तोड कर रख दिया था। अब मुझे पुरूष की जरूरत महसूस हो रही थी अब मुझे किसी की सुरक्षा चाहिये थीं। यह दुनियॉ दरिन्दो से भरी हुई है और जो हम देखते है वही वास्तव म नही हाता। [1]

इस घटना के पहले कभी किसी की ओर नजर नही उठाती थी और अब हिरण सी ऑखे चौकडी भरती रहती। विना शराब जैसे शराबी की हालत होती है मेरे भी वस वही हालत थी' स्पष्ट है सेक्स की जरूरत देह की मॉग है। जितनी पुरूष को है। उतनी ही स्त्री को भी। फिर यह कहने का क्या अर्थ है कि "उचित अनुचित के द्वन्द्व मे क्यो पडू? क्या दुनियॉ ने मेरे साथ इन्साफ किया? सुरक्षा की तलाश मे ही सही क्या देह को हथियार के रूप मे और अपने ठडेपन' को पुरूषो से बदला लेने के रूप में सोचती प्रिया ने जो कुछ भी किया उसे उचित और इसाफ कहा जा सकता है? अगर वह बदले की मानसिकता का मनोवैज्ञानिक अध्ययन करके अवचेतन मे गहरे बैठे अपराध–बोध और उसके परिणाम

---

[1] वही पृ 222

स्वरूप दूसरो पर लगातार मुकदमा चलाने और अपराधी ठहराते रहने का सच (या आत्म समर्पण) हे तो निश्चय ही नायिका स्वय को तलाश मे सफल कही जा सकती है। पीली ऑधी की सोमा यह जानती है कि एक सफल स्त्री को क्या चाहिय। क्या कोई सुन्दर और आकर्षक देह वाला पुरूष किसी पत्नी क लिए योग्य है? क्या अपार धन सम्पदा की गद्दी पर बैठा कोई पुरूष किसी स्त्री की कामना का चरम है? आज की स्त्री को सिर्फ यही नही चाहिए अगर वह इतने से ही सन्तुष्ट होती तो फिर सोमा विवाह सस्था के बाहर सम्वन्ध क्यो बनाती।

सोमा का पति है शेष भरा–पुरा परिवार है। उसके पति के पास अपार सपदा है। उसके परिवार की अपनी शान है। परन्तु स्त्री होने का पत्नी होने का सुख उसे प्राप्त नही है। एक स्त्री को चाहिये क्या? यही न पति का अक्षयपौरूष और अपनी सन्तति। सोमा को जीवन मे दोनो ही आभाव बराबर दहकाते है। उसे एक निर्णय मे अपने प्रेमी सुजीत को स्वीकार करना पडा, जो उसे सब सन्तोष देने मे सक्षम है पौरूष भी, सन्तान भी।

इसलिए सोमा चली जाती है सुजीत के साथ एक जगह गौतम को कहती है– ताई जी गौतम जानवर है। उसमे कोई मानवीयता नही।'[2]

परिवार के भीतर–बाहर सुरक्षा और सरक्षण की प्रकिया मे औरते पुरूषो के हाथो जब बार–बार छली जाती है, तो अपने–अपने मनचाहे या उपलब्ध रास्ते खुद चुनती हैं या कोई और रास्ता मिलने तक ही पुरूष के शरण मे रहती है। पुरूष स्त्रियो को सुरक्षा या सरक्षण देता है तो बदले मे स्त्री देह दाव पर लगाती है या उसकी सम्पत्ति।

---

[1]वही पृ 123
[2] पीली ऑधी पृ 267

कठगुलाब मे विपिन के मॉ–बाप मर चुके है। एक भाई था जो सन्यासी बन गया। विपिन महात्वाकाक्षीं मध्यम वर्ग का आम पुरूष नही बल्कि साहित्य इतिहास, दर्शन राजनीति मनोविज्ञान कानून वेदपुराण ओर न जान क्या–क्या न्यायशास्त्र पढ़ा लिखा महाज्ञानी विद्वान बुद्विजीवी है। विपिन स्वतत्र स्त्री को बहुत सूक्ष्मता से जानता समझता है। इसीलिए सबको अपने तर्क–जाल मे बॉध भी पाता है। क्या इसी पुरूष छवि' की तलाश मे स्वतत्र स्त्री सोचती कहती है– शायद हर औरत इस उम्मीद मे जीती है कि कहीं न कही ऐसा मर्द जरूर है जो उसके परिचित मर्दो से विल्कुल अलग है और उसका फर्ज है कि उसकी तलाश करे।[1]

अविवाहित असीमा की मॉ द्वारा विना विवाह किये विपिन के साथ रहने के सुझाव के बावजूद दोनो के सम्बन्ध विकसित नही हो पाते। इसका मुख्य कारण असीमा की मर्दो से नफरत' भी है और मॉ बनने की उम्र निकल जाना भी। असीमा को मर्दो से नफरत है क्योकि सब एक से बढकर एक हरामी' होते हैं। वह सबसे बडा हरामी अपने बाप और भाई को मानती है क्योकि बाप ने मॉ को छोडकर किसी अन्य औरत को रखैल बना लिया है और भाई सारी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी बन बैठा है।

स्मिता जीजा के हाथो बलात्कार का शिकार होती है लेकिन प्रतिरोध नही कर पाती। प्रतिहिसा के लिए ताकत और बल जुटाने के लिए अमेरिका जाकर समृद्ध होने का प्रयास करती है। परन्तु यहॉ बलात्कारी जीजा था वहॉ नये मेकप मे मनोविज्ञान का डाक्टर जिम–जारविस। वह पति मे पिता की सम्पुर्ण सुरक्षा पाना चाहती है। ऐसे समय मे जब पिता की सुरक्षा व्यवस्था भी धीरे–धीरे टूट रही हो और स्वय

---

[1] छिन्नमस्ता कठगुलाब' पृ 172–173

पिता बेटी से बलात्कार के मूकदमे मे अभियुक्त है। डाक्टर जारविस स्मिता की दह ही नही उसका मन स्मृति चेतना अर्द्ध चेतना' सबको निर्वसन कर रेशा–रेशा भोगता है। परिवार से बाहर आकर मारियान से भी यही सुनन का मिलता है मर्द जात को क्या दोष द कुतिया तो हमी है।

आवा' मे नमिता से प्रेम का स्वाग रचने वाले सजय कनोई को उसकी सुन्दर सुकुमार और पवित्र देह खीचती है जिसके गर्भ मे वह अपनी सतान की सपना देखता है। उसके नाटकीय प्रेम का खुलासा स्वय उसकी बातो से हो जाता है–'मुझे सिर्फ उस लड़की से औलाद चाहिए थी जो पेशेवर न हो पवित्र हो, जो मुझसे प्रेम कर सके। सिर्फ मेरे लिए मॉ बने। सिर्फ मुझसे सहवास करे। कैसी विडम्बना है कि पुरूष स्त्री से विश्वास और समर्पण चाहता है लेकिन बदले मे वह उसे देता है घृणा और अविश्वास अन्ना साहब की हत्या का समाचार सुन कर गर्भ पात हो जाता है और जब वह यह घटना सजय कनोई को बताती है तो वह इस पर विश्वास करने के लिए विल्कुल तैयार नही होता। फोन पर किसी की मौत की खबर सुनकर किसी का बच्चा गिर जाय। कभी समव है? पुरूष ने स्वय को सनातन पवित्रता के आवरण तथा स्त्री को हमेशा सदेह के घेरे मे रखा है स्त्री से पवित्रता की मॉग करने वाला पुरूष ही प्रलोभन द्वारा अथवा बलपूर्वक उसे अपवित्र भी करता है। किरपू दूसाध, मौसा जी, अन्ना साहब और सजय कनोई अपनी वासना की पूर्ति के लिए स्त्री देह का उपभोग अथवा उसकी कोशिश करते है। नमिता के मौसा का कहना है कि– अच्छा है वह मुॅह सिये रहे। यह भी नही कि उसके साथ ही ऐसो हो रहा है सभी लडकियों के सग यही होता है। बस किसी को किसी के विषय मे भनक नहीं लगती। चुप रहेगी तो अनेक फायदे है। स्त्री पुरूष को एक शोषक के रूप मे सामने पाती है। तभी तो उसे प्रत्येक स्त्री

रडी, व्याभिचारणी और पेशेवर मालूम होती है। अपनी पत्नी निर्मला से घृणा और नमिता से समर्पण की मॉग करने वाले सजय कनोई का यह कहना कि शादी मै तुमसे करूँ न करूँ मुझे बाप बनाकर तुम जीवन भर एशो–आराम स रह सकती थी क्यो कि मै तुम्हारे बगैर नही रह सकता ढोग के सिवाय और कुछ नही है।

सजय कनोई निर्मला की अपनी स्वतत्र पहचान को स्वीकार करने से कतराते है। पुरूष अपने समानान्तर स्त्री की स्वतत्र पहचान नहीं देखना चाहता वह अपने व्यक्तित्व मे उसकी समाहित चाहता है।

सजय मे पुरूष का अहकार और व्यवसायी का छद्म दोनो विद्यमान है। नमिता के गर्भवती होने की खबर सुनकर वे कहते है–
किसके नख–शिख लेगी ? देखो सुन्दर तुम मुझसे अधिक हो मगर हो वह विल्कुल मेरा प्रतिरूप मेरे खानदान की विरासत जिसे देखते ही एकदम से लोग कह पडे विल्कुल अपने बाप पर गयी है। यही पुरूष का यथार्थ है जिसमे एक स्त्री एक माध्यम भर है और पुरूष उस माध्यम का उपयोग करने वाला। लेखिका ने पुरूष की इसी उपयोगी मनोवृत्ति की ओर सकेत किया है।

विभिन्न सस्थानो के विषय मे दृष्टि

आमतौर पर जो औरते घरो की देहरी लॉघकर नौकरी करने बाहर निकलती हैं उन्हे तमाम दिक्कतो से जूझना पडता है। बलात्कार या यौन सम्बन्ध बनाना तो चरम है उससे पहले छेड–छाड आपत्ति जनक भाषा का इस्तेमाल अश्लील हरकते, बेहूदे मजाक से लेकर कुछ भी हो सकता है। वैसे भी पुरूष को अपनी पद–प्रतिष्ठा और गरिमा को अजमाने के लिए औरत की देह से अच्छा और क्या हो सकता है अपने अधिकारो का इससे घिनौना इस्तेमाल और क्या हो सकता है कि अपने अधीन काम करने वाली किसी भी औरत का शोषण किया जाय।

सिर्फ प्राइवेट सस्था ही नही स्कूल कालेज के शिक्षक भी लडकियो को बरगलाने मे माहिर होत है। यहॉ तक कि बडी कक्षाओ मे जहॉ वयस्क लडकिया रिसर्च या विशेष सत्र मे शामिल होती है शिक्षको के अनुचित व्यवहार का शिकार बन जाती हे। सिर्फ सार्वजनिक या नीजी क्षेत्रो मे काम करने वाली औरतो के खिलाफ ही अपराध नही हो रहे है बल्कि सच तो यह है कि जिस भी पुरूष को जहॉ भी मौका मिला वह ओरत के इस्तेमाल का प्रयास करता है। वह घर हो दफ्तर हो स्कूल कालेज या चलती हुई बस ही क्यो न हो।

यह समस्या एक दो स्त्रीयो की नही बल्कि पुरे स्त्री वर्ग की है उस वर्ग के खिलाफ जिसे औरतो का बराबरी का दर्जा देना ही नामजूर है। औरत को उसकी क्षमताओ उसके मेधा या मेहनत के बजाय लिग' के तौर पर देखता है।

यह कितनी बडी विडम्बना है कि एक सामान्य नारी हो दफ्तरो मे काम करने वाली हो सिर पर बोझ ढोने वाली मजदूर महिला हो स्कूल कालेज मे पढने वाली छात्रा या पढाने वाली अध्यापिका हो या अन्य किसी भी क्षेत्र की महिला हो पुरूष का रवैया उसकी दृष्टि उसका मानस जैसा होता है वैसा ही उस क्षेत्र मे भी कभी–कभी दिखाई पडता है जिसे सस्कृत अथवा साहित्य 'ससार' कहते है। यहॉ अपेक्षा यह की जाती है कि सस्कृत और साहित्यकर्मी व्यक्ति समाज के अन्य वर्गो की अपेक्षा अधिक सवेदनशील होते है ये उस सोच और विचार के सवाहक है जिनसे समाज के स्वस्थ मूल्य निर्मित होते है। ये लोग व्यक्ति के सम्मान उसकी गरिमा और उसकी स्वतत्रता के पक्षधर ही नहीं, उसके प्रहरी भी है।

किन्तु ऐसा नहीं है। आम औरत को अपने बॉस, अपने मालिक, अपने जीविका प्रदाता और बाजारू लफगो से अपनी रक्षा करनी पडती है,

जिनकी भूखी लोलुप ऑखे एक शिकारी की तरह उसके चारो ओर मडराती है। क्या लेखिकाओ ओर साहित्य कर्म से जुडी महिलाओ को भी उसी प्रकार की घिनौनी स्थितियो को झेलना पढता है? इस सम्बन्ध मे अनक लेखिकाओ के अपने अनुभव न केवल अचभित और आतकित करने वाले हैं बल्कि पुरूषो के उन सभी मुलम्मो को उतार देते हैं जिसे वह अपने आपको गौरवान्वित करने के लिए अपने ऊपर चढाये होता है। सम्पादको आलोचको प्रकाशको सहयोगी लेखको द्वारा साहित्य के क्षेत्र मे प्रवेश करने को उत्सुक उसमे अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने की आकाक्षी महिलाओ का किस प्रकार शोषण करने का प्रयास होता। सुनीता जैन ने ऐसी रूग्ण मानसिकता पर बडी बेवाक टिप्पणी करते हुए लिखा था' पुरूष आलोचको की शराबी–शामों का सरूर ही व्यर्थ हो जाय, यदि निदा पुराण मे किसी लेखिका को आडे हाथो न लिया जा रहा हो। या उससे भी आगे चलकर उसके निजी जीवन या उससे अपनी अपेक्षाओ को लेकर सीधे–सीधे निर्वसन न किया जा रहा हो'

यह तो तय है कि सामाजिक समानता और न्याय के लक्ष्य को पाने के लिए असली लडाई औरत को ही लडनी है। ऐसे मे 'नमिता' जैसी आत्मनिर्भर बनने की इच्छा रखने वाली स्त्रियो की परिणति पर गभीरता से विचार करना पडेगा। उसे आज के वैश्विक परिदृश्य को देखते हुए यह सोचना होगा कि कही वह पुरूष द्वारा सचालित बाजार–व्यवस्था की जकड मे तो नही आ रही है। बाजार उसके सौन्दर्य उसकी भावना और उसकी रागात्मक वृत्ति का इस्तेमाल करने के लिए तैयार बैठा है। आवॉ' इसका प्रमाण है। बाजार का तन्त्र उसे खचाखच भरी ट्रेन मे से ढूँढ निकालता है और अपने इस्तेमाल की चीज बनाने के लिए बहुत जतन से रखता है। उसकी कल्पना से परे वेतन और प्राचीन आभूषण कला मे महारत हासिल करने के लिए भरपूर सुविधाए देकर बाजार स्त्री का किस

तरह इस्तेमाल करता है। परिवार की आन्तरिक कलह और आर्थिक तगी से ऊबकर वह आत्मनिर्भर होने की कोशिश करती है। कामगार अधाडी कार्यालय मे पिता–तुल्य अन्ना साहब उसके साथ दुर्व्यहार करते है। स्त्री कही भी सुरक्षित नही है। पुरूष की गिद्ध दृष्टि उसके शरीर को तौलती रहती है।

इदन्नमम् मे शासन की दुर्व्यवस्था पर इस उपन्यास मे बहुत ही बारीकी से दृष्टिपात किया गया है। और यह सोच स्थापित की गयी है कि सरकार को अधिकाधिक ध्यान जनता को मूलभूत सुविधाये उपलब्ध कराने पर देना चाहिये।

विन्ध्य अचल के गावो का कितना विकास हुआ है इसका पता तो इन कथनो से ही चल जाता है– इस अधेरे को क्या करे कि सडक के आस–पास के गॉवो मे दो–दो स्कूल और अपने दूर–दराजी गॉव मीलो पर एक स्कूल के लिए तरसते हैं [1]

इदन्नमम् की लेखिका भ्रष्ट राजनीति की ओर भी इशारा करती हैं। नेतागण विकास के प्रति सच्चे मन से समर्पित नहीं होते है। वरन् वे तो केवल बोट–बैक सुदृढ करने की युक्तियो मे लगे रहते है। इस सच का बेवाक उदघाटन किया है लेखिका ने 'राजा साब के माध्यम से।

सोनपुरा के अस्पताल मे डाक्टर की नियुक्ति के सम्बन्ध मे भी राजा साहब लोगो को धोखा दिया। मन्दा के कहने पर डा (इन्द्रनील) की नियुक्ति तो हो गयी परन्तु जैसे ही 'राजा साब' को बोट की दृष्टि से कोई और गॉव सोनपुरा से अधिक महत्वपूर्ण लगा वैसे ही उन्होने इन्द्रनील की नियुक्ति वहॉ के अस्पताल मे कर दी। राजा सब की इन चालबाजियों का पर्दाफाश करते हुए, लभेरा, भलोटा दोनो गावो के प्रधान मन्दा से

---

[1] इदन्नमम प 249

कहते है– डाक्टर रहेगा रूकेगा इसमे हमे शक था मन्दा। काहे से कि जे ही राजा साब हमसे दगा कर चुके हैं। इन्होने ही पुलिया का एलान किया था। आनन–फानन मे सर्वे हो गया मजूर जुटने लगे। पर हमारा दुरभाग तो दस पेड आगे चल रहा था। उसी बखत चुनाव हो गया। वोट गिर गया। जीतने वाले जीत गये। उसके साथ ही मजूर अलहकार न जाने कहॉ विला गये। नाला जस का तस मुँह फाडे खडा था।[1]

ऐसे भ्रष्ट राजनेताओ के रहते नौकरशाही मे भ्रष्टाचार कैसे नही फैलता? सी0 एम0 ओ0 कार्यालय का एक बाबू मन्दा एव प्रधान जी को बताता है कि कैसे उनकी अर्जी (अस्पताल मे डाक्टर की नियुक्ति के सम्बन्ध में) आगे बढेगी– आप तो चाय–पानी का जुगाड बैठाओ फिर देखो तुम्हारा कागज पतग की तरह उडता चला जायेगा लखनऊ तक। और जब प्रधान काका इस बात पर बीस रूपया निकालते हैं तो वह बाबू कोधित हो उठता है भिखारी को दे देना प्रधान जी। सौ का पत्ता लगता है इस लेबिल पर'[2]

लेखिका की पैनी दृष्टि ने विभिन्न सस्थानो के शोषण भ्रष्टाचार और अन्याय की व्याप्ति को अच्छी तरह पकडा है। मकरन्द पत्र मे मन्दा को बताता है गॉव मे एक तरह का शोषण दोहन तो शहर मे दूसरे तरह की पैतरेबाजी। वह बताता है कि यहॉ कालेज जैसी सस्था मे भी राजनीतिं चलती है। प्रोफेसरो की औलाद राज करती हैं यहॉ' डोनेशन वाले मेहनत करने वालो से आगे हो जाते हैं।

---

[1] इदन्नमम् पृ 382–383
[2] वहीं पृ 181

देश की प्रगति की नीव है शिक्षा का प्रसार। जबकि भारत मे शिक्षा की स्थिति प्रत्येक दृष्टिकोण से सोचनीय है। आज भी भारत मे जहॉ एक ओर दूर–दराजी गॉव मीलो पर एक स्कूल के लिए तरसते है तो वही जहॉ शिक्षण सस्थाये हें वहॉ भ्रष्टाचार अनैतिकता एव दुर्व्यवस्था व्याप्त है। कुसुमा बताती है श्यामली के स्कूल की स्थिति अब तो है एक सराबी–कबावी (हेडमास्टर) नासिया को तन–बदन की ही सूरत नहीं रहती पढायेगा क्या? कहे की पढाई–मढाई। नकलकर आये और आन बैठे घरे। एक मोडा इन्त्यान को जाता है तो सग मे चार नकल करइया। [1]

ऐसी शिक्षा व्यवस्था देश को को कभी प्रगति के पथ पर अग्रसर नहीं होने देगीं

---

[1] वहीं पृ 272

छठा अध्याय

उपन्यासो मे स्त्री–विमर्श के निष्कर्ष

इस शताब्दी मे स्त्री–विमर्श और दलित–विमर्श दो ऐसे विमर्श उभरे है। जो प्रथम दृष्टया सामाजिक विमर्श है पर अपने आन्तरिक स्वरूप मे सास्कृतिक विमर्श भी है जब भी विकास होता है तो कुछ के साथ अन्याय और कुछ के साथ न्याय स्वाभाविक है। सृष्टि किसी गणित के हिसाब से नही चलती पर एक चीज अवश्य है कि शक्ति के गणित का सिलसिला प्राय अजेय बना रहता है। नारी और दलित जातियो के उत्पीडन की कहानी सभ्यता के शुरूआत से ही परिलक्षित होती है क्यो कि आदमी का स्वभाव शक्ति पाना और शक्ति पाने की कोशिश में वह वर्चस्व का आकाक्षी होता है और इसमे कमजोर शासित होता है मजबूत शासक। इस बुनियादी प्रवृत्ति ने स्त्री का शोषण का शिकार बनाया। सयुक्त परिवारो मे बीस–पच्चीस लोगो के लिए रोटी पकाने की जद्दोजहद से लेकर आर्थिक रूप से स्वतत्र न होने के कारण वस्तु की तरह प्रयुक्त होने वाली नारी जाति का अद्यावधि इतिहास सामन्ती युग से लेकर आज के लोकतत्र तक कमोवेश दोहराया जा रहा है।

नारी सम्बन्धी आचार–विचार मे अभी भी मूलभूत अन्तर उपस्थिति नही हुआ हैं लेकिन नारी–सम्बन्धी समस्याओ ने अपनी ओर सभी का ध्यान अवश्य आकर्षित किया है। न स्त्री स्वातन्त्र्य मर्हति (स्त्री स्वतन्त्र न रहे अथवा स्त्रियो को स्वतन्त्रता की योग्यता नही है) कहने वाले मनु और 'जिमि सुतत्र भये विगरहिं नारी' कहने वाले गोस्वामी तुलसीदास के इस देश मे भी नारी स्वतन्त्रता की आवाज बुलन्द हुई है। कहा जाता है कि वैदिक एव औपनिषदिक काल मे भारत मे नारियो की स्थिति अत्यन्त सराहनीय रही है। ब्राह्मण काल से उत्तरोत्तर उनकी स्थिति मे ह्रास होता गया।

सवैधानिक एव कानूनी सरक्षण ने भारतीय समाज मे स्त्रीयो के लिए अनेक वर्जित क्षेत्रो मे प्रवेश को सुगम बनाया है लेकिन साथ ही साथ आये दिन अखवारो मे स्त्रिया की अनेक कारणो से हत्या और उनके दहन उनके साथ बलात्कार सामूहिक बलात्कार जैसी घटनाए भी हो रही है। आधुनिक समाज ने स्त्री शिक्षा और नारी स्वाधीनता के बहाने स्त्रियो को और भी कठिन परिस्थितियो के बीच ला कर खडा कर दिया है और यह स्थिति भारत मे ही हो ऐसा नही है। स्वतत्र स्त्री आज भी अपनी वास्तविक जिन्दगी की समस्याओ को कार्य जगत एव पेशेगत रूचियो के बीच एक द्वन्द झेलती है। उसके लिए इन विकल्पो का सन्तुलन करना कठिन होता है। किसी एक के चुनाव के कारण जो कीमत वह चूकाती है और जो तनाव वह झेलती है उसके परिणाम स्वरूप उसे दुर्वलता और कमजोरियो का शिकार होना ही पडता है। कहने का तात्पर्य यह है कि गुल्थी सुलझने के बजाय और उलझती जाती है।

उच्चमध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की स्त्रियॉ स्वतन्त्र दिखाई पडती है। वोउवार कहती है उच्च मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग की महिलाओ ने अपने वर्ग की स्वार्थो की रक्षा पतियो से अधिक की है। वे अपने सभी भावो विचारो और वर्गो को त्याग देती है। वे अन्य के विचारो को ग्रहण कर लेती है। पुरूष के थोपे गये विचारो को वे आदर्श मान बैठती है'। मतलब यह कि फिर वहीं अन्या' की अन्या गौण' की गौण। वस्तुत' वर्गो मे विभक्त समाज मे नारी कोई स्वतत्र समष्टि नही है वह भी अपनी वर्गगत आकाक्षाओ और सिमाओ मे बधी रहने के कारण स्वतत्रता की वर्गगत अवधारणा की शिकार होती है।

इसमे दो राय नही कि स्त्री स्वतत्रता की पहली शर्त है आर्थिक स्वाधीनता। फिर यह आर्थिक स्वाधीनता वेमानी हो जाती है, जब उसके अनुरूप सामाजिक स्वाधीनता स्त्रियो को नहीं मिलतीं। इस

सामाजिक स्वाधीनता के अभाव मे कई बार उसकी आर्थिक स्वाधीनता छलावा ही सिद्ध नही होती बल्कि उसके दोहरे शोषण का कारण भी बनती है।

समाज की मूलभूत ईकाई परिवार है और परिवार विवाह नामक सस्था से बधी इकाई है। विवाह स्वतत्रता को बाधित करने वाली सस्था है। आज की विवाह सस्था के बारे में स्वय एगेल्स से लेकर अत्याधुनिक विचारको तक ने अनेक तरह की राय व्यक्त की है। द सेकेड सेक्स' की लेखिका ने विवाह को अपनी स्वतत्रता में वाधक मानकर विवाह नही किया था। वे कहती भी है कि विवाह' अश्लील केवल इस रूप मे है कि स्वाभाविक इच्छा पर आधारित आपसी सम्बन्धो को अधिकार और कर्तव्य मे बदल देता है। विवाह मानव यान्त्रिक या अपमान जनक रूप देकर दो शरीरो को व्यक्ति रूप नही बल्कि साधारण शरीर रूप मानने को बाध्य कर देता है।

इस विवाह सस्था के साथ मातृत्व का सवाल जुडा हुआ है। स्त्री विमर्श मे यह बहस का मुद्दा रहा है कि मातृत्व स्त्री की स्वाभाविक वृत्ति है या अपने लाभ के लिए उस पर पुरूषो द्वारा थोपी गयी वृत्ति? वोउवार अनेक साक्ष्यो के हवाले से कहती है मातृत्व नामक किसी भावना का अस्तित्व नही है।

नारी स्वतन्त्रता के प्रश्न को जब तक सभ्यता के मूलभूत सकटो से जोडकर नही देखा जायेगा तब तक वह अँधेरी गली मे भटकने को विवश है। शिक्षा के प्रचार–प्रसार ने जहॉ समाज के हर एक दबे–कुचले वर्ग के बीच स्वतत्रता की बलवती आकाक्षा पैदा की है, वही स्वतत्रता को उत्तरदायित्व के रूप मे न ग्रहण किये जाने के कारण आज ऐसे सकट पैदा हो गये है जिससे मनुष्य की सभ्यता का उबरना मुश्किल मालूम पडता है। उपभोक्ता वादी सस्कृत के इस दौर मे स्त्री पुन' नयी

सज–धज के साथ भोग्या के रूप मे उपस्थित की जा रही है। शिक्षा और उसमे विशेषत नारी शिक्षा का सवाल वर्तमान भोगवादी सस्कृत का विकल्प खडा करने के सवाल से जुडा है। जब तक इसका समाधान नही हो जाता सही अर्थो मे स्त्री स्वतत्रता पर विचार करना सम्भव नही हो सकता।

स्त्री समस्या आज भी हमारे सामने भयावह है। देश की अस्सी प्रतिशत महिलाए अशिक्षित है। बाल–विवाह अनमेल विवाह वाल विधवा परिवारो मे सामन्ती अत्याचार पर्दा मारपीट तथा चारदीवारी तक सीमित रखने जैसे अन्धविश्वास आज भी वैसे है। महानगरो मे जिन पढी लिखी महिलाओ ने नौकरी और व्यवसाय को अपने जीवन का अनिवार्य अग बनाकर घर की चारदीवारी छोडी है वे वाहर आकर पुरूष मानसिकता को देख रही है कि उनकी दृष्टि मे स्त्री आज भी वैसी यौनरूपा है उसका भोग उनकी जीवन की सार्थकता है। शिक्षा का पहला और आखिरी काम आत्म विश्वास जगाना होना चाहिए–लेकिन यह नही हो पा रहा है। शिक्षित स्त्रियॉ और अधिक डिप्रेशन की शिकार है घर और बाहर दोनो जगह पिस कर भी वे कोई स्वतन्त्र पहचान नही बना पा रही हैं। स्त्री से जुडी समस्याओ को महिमा मदित करने की नहीं बल्कि उन्हे उसके यथार्थ रूप मे चित्रित करने की आवश्यकता है। आज लेखन के क्षेत्र मे जिस प्रकार महिलाए आगे आ रही हैं– उन्हे यह साहस दिखाना चाहिये और अपनी मध्यमवर्गीय दुनिया से बाहर निकलकर बहुजन महिलाओ को नजदीकी से देखना चाहिये।

शदी के अन्तिम वर्ष शिखर पर खडे होकर देखने से हिन्दी साहित्य के सौ वर्षो मे स्त्री मे स्त्री के अस्तित्व का धारदार सकट स्पष्ट दिखाई देता है। स्त्री आजादी की लडाई साहित्य ने तटस्थ भाव से स्त्री के हमकदम होकर लडी है। जिसका नतीजा है कि स्त्री कमोबेश कुछ

प्रतिशत मे अपने स्त्रीत्व के साथ उपस्थित है। लेकिन पिछले दो दशको मे स्त्री की स्थिति तुलनात्मक दृष्टि से भोग्या के रूप मे अधिक उभर कर आई है। जिसमे महत्वपूर्ण भूमिका मीडिया की भी रही है।

महिलाए पुरूषो के विराध मे नही बल्कि अपने अन्यायपूर्ण अत्याचारी अतीत के विरूद्ध है। उन्हे पुरूषो से नही पुरूषो के सामतवादी और पूजीबादी रवैये से मुक्ति चाहिये। वे बौद्धिक स्वतन्त्रता की आकाक्षा से भरी बैठी है। स्त्री केवल बच्चो को जन्म देने मे ही समर्थ नही है वह स्वय को भी एक सत्यान्वेषी के रूप मे जन्म देने मे सक्षम है। वह प्रतिकियावादी ताकतो के खिलाफ है और अगर इन ताकतो मे स्त्री शामिल है तो वह उन समुदाय विशेष के भी विरोध मे है। एक स्त्री दमन का विरोध वस्तुत इसलिए भी करती है कि वह और उसके भीतर मॉ है सृजन की मॉ है। इस अस्तित्व और अस्मिता की रक्षा मे वह बौद्धिक आवाज उठा रही है।

स्त्रीत्व मातृत्व और शील जैसे बडे–बडे शब्दो के आडम्बर ने स्त्री को शारीरिक मानसिक भावनात्मक और आत्मिक बन्धनो मे ऐसा जकड रखा है कि अपनी घुटन को चुपचाप पीते रहने के अतिरिक्त उसके पास कभी कोई उपाय नहीं रहा है। स्त्री मुक्ति की इतनी बाते और आन्दोलन होने के बावजूद भी मनुष्यता का यह आधा हिस्सा अभी भी उसी घुटन मे जी रहा है। सिर्फ बराबरी का अधिकार मॉगने या पुरूष जैसा बनने का प्रयास एक प्रतिक्रिया मात्र है। सैद्धान्तिक स्तर की समानता के बावजूद व्यवहारिक स्तर की समानता का अभाव है। इसलिए अब बुद्धिजीवियो को समानता लाने के लिए दूसरे रास्ते तलाशने होगे जो समानता की ओर जाते हो।

मानवता के इस घोर सकट काल मे पुरूष को चाहिये कि वह अपने को पुरूष से पहले एक मनुष्य समझे और स्त्री होने से पहले एक

मनुष्य माने। समाज का शोषक वर्ग अपनी आवश्यकताओ की तरह ही स्त्री की जरूरतो की मौलिकता को पूरी सवेदना के साथ समझे। मात्र मादा क रूप मे उपभोग नही करना चाहिये। स्त्री की गर्दन से ऊपर सजग ज्ञानेन्द्रियो से सम्पन्न व्यक्ति के रूप मे देखना और समझना चाहिये।

इक्कीसवी सदी के द्वार पर खडा हमारा समाज एक तरफ जहॉ लडकियो को बराबरी का दर्जा देने का दावा और बादा कर रहा है। वही उन्हे दूसरी ओर जन्म लेने के अधिकार से वचित भी कर रहा है। समाज मे स्त्री के प्रति शोषण और उपेक्षा के रवैये से आतकित होकर स्त्रियॉ स्वय अपनी भ्रूण कन्या की हत्या के लिए प्रस्तुत हो जाती है।

स्त्री–विमर्श के सामने सदा से दुविधा रही है कि वह विद्यमान सामाजिक पारिवारिक यथार्थ को स्वीकारते हुऐ उसमे अधिक अधिकार पाने के लिए प्रयत्न करे या लिगो को वर्तमान रिश्तो को नकारते हुऐ नये प्रकार के विल्कुल परिवर्तित रिश्तो वाले समाज को स्थापित करने के लिए सकिय हो। अब तक स्त्री मुक्ति की कामना इन्ही दो ध्रुवो से टकराती रही है।

स्त्री आज जो भी है पुरूष के दमन चक के बावजूद है। उसकी पचहत्तर प्रतिशत शक्ति अपने अवरोधो को पिघलाने मे व्यय होती है। समाज स्त्री के विकास मे अगर सोचता है तो सिर्फ इतना ही वह कैसे कमाऊ हो जाय। स्त्री होने के साथ–साथ वह पूँजी का प्रतीक है या पूँजी का माध्यम। जन्म से मृत्यु तक सारे कर्तव्य स्त्री के कधो पर हैं। मानवाधिकार से पहले मानव के रूप मे अपने अस्तित्व को अपनी जरूरत को खोलकर प्रकट करना होगा तब अधिकार की गुजाइश होगी।

स्त्री शक्ति है, यह औरत से अधिक बेहतर ढग से पुरूष जानता है इसीलिए वह अपने द्वारा रची व्यवस्था मे या तो स्त्री शक्ति का

उपयोग करता है या दमन परन्तु आश्चर्य तब होता है जब स्त्री द्वारा मानवाधिकार की गुहार लगान पर लोग चौंकते है।

स्त्री शक्ति है—सृजन की श्रम की सवेदना की। स्त्री शक्ति है पुरूष की। शक्ति का खतरा और शक्ति से खतरा जिन्हे भी महसूस होता है वह दमन नीति अख्तियार कर लेते है। आज की स्त्री स्वरक्षित व सुरक्षित नही है। वह कोख मे स्थापित होने से लेकर मृत्यु तक विवशता और मजबूरी की जिन्दगी जी रही है। घर से लेकर बाहर तक उसे अपनी इच्छा से शिक्षा कैरियर यहॉ तक कि जीवन साथी चुनने का भी अधिकार नही है। समानता की लडाई शोषित वर्गो द्वारा सत्ता पर अधिकार जमा लेने से ही नही समाप्त हो जाती है बल्कि सत्ता पर अधिकार के बाद पूर्ण समाज के प्रभावो के विरूद्ध लम्बी लडाई लडनी होती है। इसमे नारी मुक्ति ही नही दलितो की मुक्ति का भी प्रश्न इस लडाई से जुडा है।

समानता वर्तमान युग का बहुप्रचलित शब्द है। समाज की उन्नति का पैमाना समानता को स्वीकार किया गया। सैद्धान्तिक स्तर की समानता के बावजूद आचार या व्यवहारिक स्तर की समानता इस देश की स्त्री को हासिल नही हुई है। निहित स्वार्थ इस सन्दर्भ मे निरन्तर अपनी भूमिका निभा रहे हैं। जिस ढग से स्त्री पुरूष की समानता विरोधी शक्तियो एकजुट हैं उस ढग से समानता की पक्षधर शक्तियो मे एकजुटता नहीं दिखाई पडती है। स्त्रियो के साथ जो दोहरे मानदण्ड अपनाये जाते हैं उनको लेकर इस देश मे व्यापक जन आन्दोलन का अभाव है। विकास के नाम पर स्त्रियो को नसीब हुआ है कार्य की अधिक मार लाक्षन, कलक अपमान अन्याय उत्तरदायित्व के निर्वाह पर भी तिरस्कार। जब भी स्त्री को सशक्त करने के मामले मे सही मायने मे कोई योजना बनती है तो उसके मार्ग मे असख्य बाधाये आ जाती है। घर के बारह के समाज से तो दूर उसे अपने घर के पहले पुरूष पिता हो या

पति से ही सघर्ष करना पडता है सबसे पहला दमन उसे परिवार मे ही झेलना पडता हे।

दुनियॉ के इतिहास मे आज भी औरत वह चाहे पश्चिम के विकसित राष्ट्रो की हा या पूरब के विकासशील दश की पितृसत्तात्मक समाज मे वह उपनिवेष ही है। स्त्री को उपनिवेश बनाकर रखना पितृक समाज की नैतिक और वर्चस्व से जुडा हुआ है। पितृक नैतिकता सदा यही कहती आई है कि पशु ढोल शुद्र नारी की ताडना अनिवार्य है अर्थात इन पर अपना नियन्त्रण बर्चस्व बनाये रखो। जहॉ तक पक्षपातपूर्ण समाजिक व्यवहार का प्रश्न है तो हर शिक्षित प्रगतिशील समझे जाने वाले लोगो मे भी स्त्री को लेकर सामती मानसिकता मौजूद है।

वास्तविकता यह है कि पुरूष स्वभावत अहकारी है। वह अपनी सामाजिक स्थिति को सर्वोच्चता मे रखकर देखता है कि ैर स्त्री को निम्नतर मे। यदि स्त्री अधिक पढी–लिखी जागरूक तर्कशील बुद्धिमान है तो उसकी सर्वोच्चता को शायद खतरा पैदा हो जायेगा और झूठे अहकार बाद का शिकार व्यक्ति यह सब कैसे सहन कर लेगा कि स्त्री की सामाजिक स्थिति आर्थिक स्थिति उससे अधिक की हो जाय और उसकी निम्न या स्त्री के बारबर।

सच तो यह है कि यह पितृसत्तात्मक समाज का खोखला अहकार है कि स्त्री को दबाकर कुचल कर निम्न स्थिति मे रखो और उस पर अपनी आर्थिक सामाजिक सास्कृतिक राजनीतिक श्रेष्ठता वर्चस्व स्थापित करो। आज तक यहीं होता आया है और आज भी उसके भीतर यही सोलहवीं शताब्दी की सोच काम रही है कि सत्री उसकी निजी सम्पत्ति है।

इक्कीसवीं सदी मे भी उसका स्त्री के प्रति दृष्टिकोण इना अनुदार, सकीर्ण, अमानवीय एव हिंसक है, यही कारण है कि आज भी

स्त्री पूरी प्रतिभा योग्यता के साथ भी अपनी पहचान नही बना पा रही है।

स्त्रीवादी विमर्श ने स्त्री मुक्ति के प्रश्नो को विभिन्न कोणा स उठाया है। पहली बार स्त्रियॉ देह और नैतिकता से जुडे सवालो पर खुलकर साचन लगी हैं क्योकि उनका सर्वाधिक उत्पीडन उनके देह के सतर पर ही हो रहा है। सबसे पहला प्रश्न तो यह उठा है कि क्या स्त्री की देह पुरूष की निजी मिल्कियत है? देह की पवित्रता मर्यादा शील और नैतिकता होना स्त्री के लिए हीं क्यो जरूरी है? स्त्री विमर्श ने समाज के भयकर अन्तर्विरोधो को सामने रखा है।

जब से यह विमर्श सामने आया है तभी से भारतीय वर्चस्ववाद के मूल मे छिपी स्त्री विरोधी मानसिकता अन्तर्विरोधो का स्पष्ट ज्ञान हमे मिलना शुरू हुआ है कि कैसे सत्री विरोध का अभियान सदियो से चलता आया है। स्त्री विरोध का अभियान सदियो से चलता आया है। स्त्री विमर्श पितृसत्ता के लिए सबसे गभीर चुनौती है क्योकि वर्चसववाद के विरोध मे ही इसका जन्म और विकास हो रहा है। आज तक स्त्री ने पितृक वर्चस्व को आत्मसात किया हुआ था वह उस प्रभुत्त्व द्वारा अनुकूलित और नियन्त्रित थी। परन्तु इस विमर्श ने स्त्रियो के भीतर यह चेतना पैदा की कि उनको वाणीहीन, स्वत्वहीन क्यो किया जा रहा है? उनका सवतन्त्र अस्तित्व क्यो नही है? परिवार का अनुशासन उन्हे ही क्यो अनुशासित करता रहा है? स्त्रियॉ आर्थिक स्तर पर आत्मनिर्भर होकर भी परिवार मे दबी कुचली क्यो हैं? अब स्त्री लेखिकाए अपने अस्तित्व और अस्मिता के बारे मे सोचने लगती हैं। भारतीय सास्कृतिक वर्चस्व के मूल मे छिपी हुई है नारी के जबर्दस्त शोषण की स्थिति कहीं वह सूक्ष्म रूप मे है तो कही प्रचड रूप मे । आज भी इस आधुनिक उत्तर आधुनिक युग में सूक्ष्मरूपो मे उसकी प्रताडना जारी है। नारी की स्थिति आज भी पूरी तरह से नहीं

मनुष्य बनना इतना सरल नही है क्योकि सदियो से लडकियो को ऐसी सस्कारो की घुटटी दी जाती है कि वह उनसे चाहते हुए भी मुक्त नही हो पाती। परत–दर–परत पितृक सस्कारो की परते इतनी गहरी जमी हुई है कि उनको तोड पाना असम्भव नही तो कठिन अवश्य है। आज के समय मे वह घर और बाहर कार्यालय सस्थानो मे दाहरा सघर्ष कर रही है। अत्याधिक कर्तव्यो के भार से वह इतनी बोझिल और अलगावग्रस्त हो गयी है कि सबसे अधिक शोषण की शिकार है।

नारी पर आज बहुत कुछ लिखा जा रहा है लेकिन देखने वाली महत्वपूर्ण बात तो यह है कि इस लेखन मे नारी की स्थिति क्या हैं? नारीवादी लेखिकाओ का तो यहॉ तक स्वीकारना हैं कि पुरूष की कलम को गहरे सदेह से देखना चाहिये उसक प्रत्येक शब्द को परखने की जरूरत है। स्त्री–विमर्श के सम्बन्ध मे एक लेखिका का कहना है कि अब तक औरत के बारे मे पुरूष ने जो कुछ भी लिखा है उस पर तनिक शक सन्देह किया जाना चाहिये। क्योकि लिखने वाला न्यायधीश और अपराधी दोनों हैं। सीमोन ने बिल्कुल सही और सार्थक प्रश्न उठाया है कि आज तक पुरूष ने नारी के बारे मे जो कुछ भी लिखा है उसे गहरी सन्देह की दृष्टि से परखा जाना इसलिए जरूरी है क्योकि वह उत्पीडित के बारे मे उत्पीडक की दृष्टि है।

आज के समय मे नारी की उत्पीडन की स्थिति को स्पष्ट करती हुई सीमोन कहती हैं आज हम एक सकमण के दौर से गुजर रहे है इस दुनिया मे आज भी सारी सत्ता, सारे मूल्य और सस्थाये पुरूषो के हाथो मे है। यदि स्त्रियो को कुछ अधिकार दिये भी गये है तो वे अमूर्त रह गये है। वे रूढियो और पूर्वाग्रहो के कारण व्यवहारिक जगत मे लागू नही किये जा सकते। इसलिए अब भी स्त्री की पूरी पकड दुनियॉ पर नही हैं कहने को तो स्त्री और पुरूष समान हैं किन्तु वास्तव मे इन

दोनो मे बहुत बडा भेद कायम है। आज भी औरत के दिये जाने वाले अधिकार केवल सविधान की धाराओ ससद भवन की घोषणाआ क शोरगुल मे खोयें हुए है। वास्तविक जिदगी मे सारी सत्ता सम्पत्ति पर अधिकार मूल्यो और सस्थाओ अनुशासनो नियमो पर पुरूषो का एकाधिकार है। सविधान की धाराए भले ही स्त्री के लिए प्रगतिशील से प्रगतिशील विचार धारा रखती हो लेकिन वास्तविक जिदगी मे उनकी कैसी धज्जियॉ उडती हैं उस पर सविधान ससद की घोषणाये कानून कानूनविद् क्या कहते हैं इससे सभी परिचित हैं। आज भी स्त्री पुरूष के बीच बहुत बडा भेद है– उत्पीडन और उत्पीडित का , और इस दूरी को मिटाया नहीं जा सका है। स्त्री अब भी पूरी तरह से अधीनस्थ है स्वतन्त्र नहीं है। वस्तुत' स्त्री समस्या को केवल स्त्री के आइने मे देखने से काम नही चलने वाला है। जब तक कमजोर को सताने की प्रवृत्ति सभ्य कहलाने वाले ससार में किसी चमत्कार या व्यवस्था के तहत खत्म नही होती तब तक स्त्री विमर्श और दलित विमर्श का निष्कर्ष भी नही निकल सकता। प्रकृति पर विजय पाने की अदम्य आकाक्षा से भी विश्व मानवता यदि स्त्री को पूरक और जन्मदात्री माने तो समस्या का समाधान हो सकता है। दुर्भाग्य से अहकार ग्रस्त सभ्यता अपने भीतर के पशु से ठीक से लड नहीं रही है न ही उसका मानसिक तापमान आभ्यान्तर के उदय के प्रति जागरूक हैं, यही इस समस्या के जडमूल मे है।

सन्दर्भ ग्रन्थ

(1) स्त्री उपेक्षिता — अनुवाद प्रभाखेतान
(2) नारीवाद विमर्श — राकेश कुमार
(3) औरत अस्तित्व और अस्मिता — अरविद जैन
(4) स्त्रीत्व का मानचित्र — अनामिका
(5) उपन्यास का पुनर्जन्म — डा परमानन्द श्रीवास्तव
(6) उपन्यास की शर्त — जगदीश नारायण श्रीवास्तव
(7) स्त्री के लिए जगह — राजकिशोर सिह
(8) कथा प्रसग–यथा प्रसग — निर्मला जैन
(9) परिधि पर स्त्री(समीक्षात्मक लेख) — मृणाल पाण्डेय
(10) स्त्री–विमर्श के अन्तर्विरोध(लेख) — बच्चन सिह
(11) स्त्री–विमर्श इतिहास मे अपनी जगह — प्रभा खेतान
(12) सोवियत नारी की कहानी — राज्यम् सिन्हा
(13) नारी स्थिति सर्वेक्षण और मूल्याकन — प्रदीप सक्सेना का लेख
(14) बेघर — ममता कालिया
(15) हम हशमत —कृष्णा सोबती
(16) मित्रो मरजानी —कृष्णा सोबती
(17) ए लडकी —कृष्णा सोबती
(18) जिदगीनामा —कृष्णा सोबती
(19) यारो के यार —कृष्णा सोबती
(20) सूरजमुखी अधेरे को —कृष्णा सोबती
(21) रूकोगी नही राधिका —उषा प्रियवदा
(22) पचपन खम्भे लाल दीवारे — उषा प्रियवदा
(23) आपका बटी —मन्नू भडारी

(23) आपका बटी —मन्नू भडारी

(24) परछाई —क्षमा शर्मा
(25) जो कहा नहीं गया —कुसुम असल
(26) स्त्री देह की राजनीति से देश की राजनीतिक(लेख) — मृणाल पाण्डे
(27) दिलोदानिश —कृण्णा सोबती
(28) हम पुरबिया और हमारा स्त्री विमर्श (सन्दर्भ और विचार) — अनामिका
(29) आधुनिक सस्कृति के निर्माण की की कथा(लेख) — खवेन्द्र ठाकुर
(30) अनारो — मुजुल भगत

आधार-ग्रन्थ

(1) इदन्नमम – मैत्रेयी पुष्पा

(2) चाक – मैत्रेयी पुष्पा

(3) झूलानट – मैत्रेयी पुष्पा

(4) कठगुलाब – मृदुला गर्ग

(5) आवा – चित्रा मुद्गल

(6) पीली आँधी – प्रभा खेतान

(7) छिन्नमस्ता – प्रभा खेतान

(8) कलिकथा वाया बाईपास – अलका सरावगी

(9) हमारा शहर उस बरस – गीताजलिश्री

(10) मुझे चाँद चाहिए – सुरेन्द्र वर्मा

(11) पहला गिरमिटिया – गिरिराज किशोर

(12) सात आसमान – असगर बजाहत

(13) मुखडा क्या देखे – अब्दुल विस्मिलाह

(14) थकी हुई सुबह – राम दरश मिश्र

(15) नर–नारी –कृष्ण बलदेव सिह

(16) अर्द्धनारीश्वर – विष्णु प्रभाकर

(17) दास्तान–ए–लापता – मजूर– एहतेशाम

पत्र पत्रिकाए

(1) कथाक्रम
(2) हस
(3) दस्तावेज
(4) कसौटी
(5) साक्षात्कार
(6) तद्भव
(7) पहल
(8) कथादेश
(9) समीक्षा
(10) राष्ट्रीय सहारा
(11) दैनिक जागरण
(12) दिनमान